PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor :

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSHA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

SHODH SAMALOCHAN Jan-March : 2026

Dr. Versha Rani,
Dr. Naresh Sihag, Adv.

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा भारत-नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Vol. : 13, Issue : 1

Jan-March : 2026

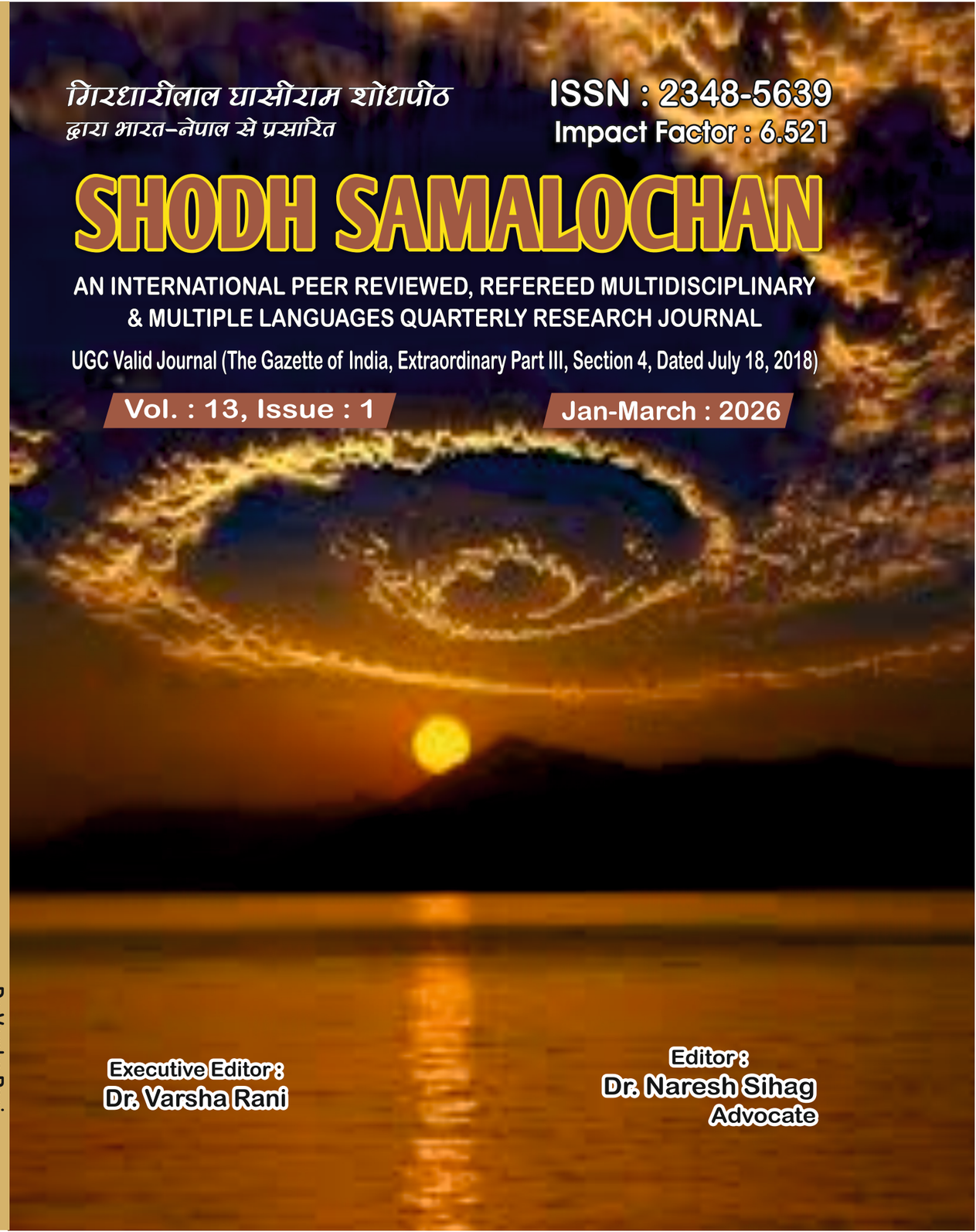

Executive Editor :
Dr. Varsha Rani

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-1 जनवरी-मार्च / 2026 (भाग-3) आईएसएसएन : 2348-5639

संरक्षक
• डॉ. इस्पाक अली, बैंगलुरु

संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
• डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक
• डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक
• डॉ. लता एस. पाटिल,
• डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक मंडल

• आशीष कुमार, गाजियाबाद
• डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर
• श्री शियोन छन श्यू, चीन
• डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. सुनीता शर्मा, ऑस्ट्रेलिया
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति वार्षिक 2500/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **PRINCE KUMAR**
  UGC NET-JRF, History, Senior Researcher, University History Department, B.R.A.Bihar University Muzaffarpur, Bihar
- **Dr Kanta Verma**
  Assistant professor, Political science, Govt College Lanji Balaghat, District Balaghat, M.P.
- **Dr. Sainath Kabade**
  Assistant Professor, Department of Educational Social Sciences, NIE, NCERT, New Delhi.
- **Mr. Sagar Gopal Rathod**
  Assistant professor, School of Social Science, Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University, Maharashtra.
- **Dr (Smt.) Manjulata Kashyap**
  Professor (Economics),Govt.T.C.L.P.G. College Janjgir, Chhattisgarh
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi, Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **Dr. Tikaram Sarthi**
  Hasmukh, Lecturer, Govt H.S.S.Churteli, Dist. Sakti (Chhattisgarh)-495688
- **Dr. Atul Chand**
  Hod Defence & Strategic Studies/ ex Principal in-charge "Government Degree college Baluwakote Pithoragarh "Uttarakhand
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **Sneha Deepak Wankhede**
  Assistant professor Hindi Department, Rajkumar Kewalramani College Jaripatka Nagpur, Maharashtra
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वा.सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड

- **डॉ. मीरा चौरसिया,** चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ., आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. श्रीकांत राठोड**
  सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, श्री शांतेश्वर शिक्षा संस्थान, श्री जी.आर. गांधी कला, श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम पी दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, जिला विजयपुर, कर्नाटक
- **डॉ. मंजू देवी**
  सहायक आचार्य श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुनीता सारस्वत**
  सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी झुंझनू, राजस्थान
- **प्रा. डॉ. बोईनवाड कृष्णा बाबुराव**
  सहा. प्रा. दिगंबरराव बिंदू कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भोकर. जिला नांदेड, महाराष्ट्र
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **श्रीराम**
  एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, बीकानेर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :
सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094
मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय

प्रिय पाठको,

शोध, समालोचना और विचार—ये तीनों किसी भी सशक्त बौद्धिक परंपरा के आधार स्तंभ हैं। शोध समालोचन त्रैमासिक पत्रिका का जनवरी-फरवरी-मार्च 2026 अंक इन्हीं स्तंभों को केंद्र में रखकर पाठकों, शोधार्थियों और विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। यह पत्रिका केवल शोध आलेखों के प्रकाशन तक सीमित नहीं, बल्कि ज्ञान की आलोचनात्मक परख, वैचारिक संवाद और समकालीन यथार्थ की गहन समझ को विकसित करने का सतत प्रयास है।

आज का समय तेज़ी से बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिदृश्य का समय है। एक ओर तकनीक और सूचना क्रांति ने ज्ञान को सुलभ बनाया है, तो दूसरी ओर सतही अध्ययन, जल्दबाज़ी में निष्कर्ष और शोध की औपचारिकता जैसे खतरे भी सामने आए हैं। ऐसे समय में शोध समालोचन जैसी पत्रिकाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जो शोध को केवल सूचना-संग्रह न मानकर, विवेकपूर्ण विश्लेषण और आलोचनात्मक दृष्टि से जोड़ती हैं।

शोध का वास्तविक उद्देश्य सत्य की खोज, समाज की समझ और मानवीय मूल्यों की रक्षा है। समालोचना इस प्रक्रिया को संतुलन प्रदान करती है। बिना समालोचना के शोध दिशाहीन हो सकता है और बिना शोध के समालोचना आधारहीन। शोध समालोचन पत्रिका इन दोनों के संतुलित समन्वय को अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता मानती है। इस त्रैमासिक अंक में प्रकाशित आलेख इसी समन्वय का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

जनवरी-फरवरी-मार्च 2026 के इस अंक में साहित्य, समाज, संस्कृति, इतिहास, शिक्षा, मीडिया और समकालीन विमर्श से जुड़े विविध विषयों पर केंद्रित शोध आलेख शामिल हैं। हिंदी साहित्य की आलोचना परंपरा, आधुनिक और उत्तर-आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित चेतना, लोक-संस्कृति, पर्यावरणीय प्रश्न तथा डिजिटल युग में साहित्य और आलोचना की बदलती भूमिका जैसे विषयों पर गंभीर और विचारोत्तेजक लेख इस अंक को वैचारिक गहराई प्रदान करते हैं। इन आलेखों की विशेषता यह है कि वे केवल सैद्धांतिक बहस तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ से गहरे जुड़े हुए हैं।

शोध समालोचन शोध की गुणवत्ता, मौलिकता और संदर्भ-सटीकता को सर्वोपरि मानती है। आज जब शोध प्रकाशन की संख्या बढ़ी है, वहाँ यह आवश्यक हो गया है कि शोध नैतिकता, उद्धरण-पद्धति और बौद्धिक ईमानदारी पर विशेष ध्यान दिया जाए। इस पत्रिका में अपनाई गई पियर-रिव्यू प्रक्रिया इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है, जिससे प्रकाशित सामग्री अकादमिक दृष्टि से विश्वसनीय और उपयोगी सिद्ध हो सके।

यह पत्रिका अनुभवी विद्वानों के साथ-साथ नवोदित शोधार्थियों को भी समान मंच प्रदान करती है। नव शोधकर्ताओं की नई दृष्टि और वरिष्ठ विद्वानों के अनुभव का संगम ही किसी भी अकादमिक परंपरा को जीवंत और गतिशील बनाता है। इस अंक में यह संतुलन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, जो शोध समालोचन की समावेशी और लोकतांत्रिक सोच को रेखांकित करता है।

समकालीन समय में भाषा और संस्कृति के प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गए हैं। भारतीय भाषाओं में गंभीर शोध और आलोचना को बढ़ावा देना आज की आवश्यकता है। शोध समालोचन हिंदी भाषा के माध्यम से न केवल राष्ट्रीय, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श को सशक्त करने का प्रयास कर रही है। यह प्रयास भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक संदर्भों में पुनःस्थापित करने की दिशा में एक सार्थक कदम है।

यह भी उल्लेखनीय है कि यह पत्रिका विचारधारात्मक संकीर्णता से बचते हुए विविध दृष्टिकोणों को स्थान देती है।

स्वस्थ वैचारिक असहमति और तर्कपूर्ण संवाद किसी भी बौद्धिक समाज की पहचान होते हैं। शोध समालोचन इस लोकतांत्रिक बौद्धिक संस्कृति को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है, जहाँ शोध और समालोचना संवाद के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, न कि टकराव के माध्यम से।

अंततः, हम जनवरी-फरवरी-मार्च 2026 के इस अंक में योगदान देने वाले सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय सहयोगियों और पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। उनके विश्वास, परिश्रम और वैचारिक सहभागिता के बिना यह यात्रा संभव नहीं होती। हमें पूर्ण विश्वास है कि शोध समालोचन का यह त्रैमासिक अंक पाठकों को गहन चिंतन, विवेकपूर्ण विश्लेषण और सार्थक संवाद के लिए प्रेरित करेगा तथा शोध और समालोचना की परंपरा को नई ऊर्जा प्रदान करेगा।

सादर,

संपादक

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय 6

ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ 11
Palvi Joshi
Veenu Verma

भारतीय मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था का अनुशीलन 16
डॉ. यतीन्द्र सिंह कुशवाहा

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा-उपन्यास में किन्नर त्रासदी का चित्रण 22
डॉ. हरिकृष्ण आचार

तुलसीदास के साहित्य में आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 27
डॉ. मीना शर्मा

Awakening to Selfhood: A Study of Shashi Deshpande's That Long Silence 31
Dr. Pritam Singh

Philosophical Foundations of Indian Ancient Education 36
Dr. Tanuja Melkani
Dr.Savita Bhandari

Role of moral values in the development of students life 45
Dr. Manju

A Study On Various Performance Between Male And Female Volleyball Players 48
Swapnil Suresh Deshmukh

Mobile Cyber Attacks and Countermeasures: A Comprehensive Review 54
Mr. Naveen Dewra
Miss. Anjali Kawadiya
Miss. Rashi Soni

भारतीय राजनीति में जाति एवं वंशवाद 65
डॉ. दिनेश कुमार चौधरी

भारतीय ज्ञान परंपरा और नैतिक शिक्षा : आधुनिक शिक्षण में प्रयोग 69
डॉ. अलका सक्सेना
भास्कर शुक्ला

21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में सामाजिक बदलाव : एक समालोचनात्मक अध्ययन 75
डॉ. बनुजा मेहेर

झारखंड राज्य के राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का अध्ययन 80
डॉ. सुबोध कुमार

A Study Of Problems Of Children With Special Needs In Accessing The Education In Delhi Ncr 89
Dr. Krishan Kant
Vikas Kumar Tiwari
भाषाया: व्यवहारे सरलताया: उपयोग: 93
Dr. P. SRIVALLI
भारतीय शिक्षा प्रणाली में असमानता एवं आर्थिक गतिशीलता 100
डॉ. राजकुमारी परिहार
व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के बीच संघर्ष, कारण और समाधान 104
पवन कुमार
प्रो. (डॉ.) रमेश चन्द्र राय
मुर्दहिया' का पुनर्पाठ : दलित आत्मानुभूति, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विडंबनाओं का विस्तृत विश्लेषण 109
प्रिंस गुप्ता
Tariff Wars and the Crisis of Multilateral Trade Law 115
Dr. Sureshwer Tiwari
संसद से पंचायतों तक भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता : एक अध्ययन 124
सरिता
भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में मुण्डकोपनिषद में वर्णित परा एवं अपरा विद्या की अवधारणा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कौशल विकास एवं आध्यात्मिक बोध के सन्दर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन 130
निष्ठा श्रीवास्तव
सागर सिंह सिरोला
Teacher's Attitude Towards Teaching Profession & Their Self Concept 137
Dr. Monika Sahai
'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में युद्ध, राजनीति और मानवता का संघर्ष 141
डॉ. जिनु जॉन
नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भारतीय शिक्षा में नवयुग की शुरुआत 144
सुनील
आधुनिक लोक साहित्य : आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव 148
सत्येन्द्र कुमार
Impact of AI and internet in educational research 154
Dr. Ankit Goyal
PARENTS REGARDING EMPOWERMENT OF CHILDREN WITH DISABILITY 160
Dr. Vikas Kumar
Purushottam Singh
रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना-दृष्टि और सांस्कृतिक चेतना 164
डॉ. लक्ष्मण

A Study Of Career Decision-making Skill Among Secondary School Students In Relation To Their Gender And Type Of School 168
Pragya Chaubey
Dr. Tanuja Melkani
शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन 179
प्रियंका भंवरिया
डॉ. मंजू देवी
Shifting the Game: India's Bold New Move to Regulate Online Gaming 185
Mr. Prince Chaudhary
The Status of the Women's Reservation Bill in Indian Parliament: Analyze the current status of the Women's Reservation Bill in the Indian Parliament. Investigate the reasons for delays, opposition, or support from different political parties 187
Dr. Vinita Sharma
लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में राजनीतिक दलों का महत्व 200
योगिता शर्मा
डॉ. मंजू सोलंकी
भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका 204
डॉ. नवनाथ गाडेकर
Indian Initiatives to Combat Economic Offenders: A Critical Appraisal 209
Dr. Ashutosh Singh
Role of Women in Indian Freedom Struggle 217
Dr. Shruti

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ

PALVI JOSHI

(ASSISTANT PROFESSOR) ARYA COLLEGE,LUDHIANA

Palvijoshi87@gmail.com
Phone number -9814977975

VEENU VERMA

ASSISTANT PROFESSOR,

SRI AUROBINDO COLLEGE OF COMMERCE AND MANAGEMENT, LUDHIANA

Veenuverma701@gmail.com
Phone number -9041083440

ਔਰਤ ਦਾ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ, ਆਪਣੇ ਹੱਕਾਂ ਪ੍ਰਤੀ ਜਾਗਰੂਕ ਹੋਣਾ ਅਤੇ ਆਪਣੇ ਉਪਰ ਹੁੰਦੀਆਂ ਵਧੀਕੀਆਂ ਖਿਲਾਫ਼ ਆਵਾਜ਼ ਬੁਲੰਦ ਕਰਨਾ ਨਾਰੀ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਘੇਰੇ ਵਿਚ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਔਰਤ ਦਾ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਲਈ ਕੀਤਾ ਸੰਘਰਸ਼ ਲੰਮੇ ਕਾਲਕ ਵਕਫ਼ੇ ਵਿਚ ਫੈਲਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਮਾਨਵੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਵਿਕਾਸ ਪੜਾਵਾਂ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਮਾਜਕ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਜਾਣਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਏਂਗਲਜ ਨੇ ਮਾਰਗਨ ਦੀ ਖੋਜ਼ ਦੇ ਆਧਾਰ ਉਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਤਿੰਨ ਪੜਾਅ ਦੱਸੇ ਹਨ। [1]

1. ਜੰਗਲੀ ਯੁੱਗ 2. ਜਹਾਲਤ ਦਾ ਯੁੱਗ 3. ਸਭਿਅਤਾ ਦਾ ਯੁੱਗ

ਜੰਗਲੀ ਯੁੱਗ ਮਾਨਵੀ ਵਿਕਾਸ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਪੜਾਅ ਹੈ। ਇਸ ਪੜਾਅ ਉਤੇ ਮਨੁੱਖ ਜੰਗਲਾਂ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਾ ਸੀ ਅਤੇ ਜੰਗਲੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਇਸਤਰੀ-ਪੁਰਸ਼ ਨੂੰ ਲਿੰਗ ਸੰਬੰਧਾਂ ਦੀ ਖੁੱਲ ਸੀ। [2] ਇਸ ਪੜਾਅ ਉਤੇ ਟੋਲੀ ਵਿਆਹ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਸੀ। ਬੱਚੇ ਦੀ ਪਹਿਚਾਣ ਮਾਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਸੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਸਨਮਾਨ ਜਨਕ ਸੀ।

ਮਾਨਵੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਦਾ ਦੂਜਾ ਪੜਾਅ ਜਹਾਲਤ ਦਾ ਯੁੱਗ ਸੀ। ਜਿਸ ਵਿਚ ਟੋਲੀ ਵਿਆਹ ਦੀ ਜਗ੍ਹਾ ਜੋੜਾ ਵਿਆਹ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਹੋਇਆ। ਇਸ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਬੱਚੇ ਦੇ ਪਿਤਾ ਦੀ ਪਹਿਚਾਣ ਸੰਬੰਧੀ ਜਾਣਨਾ ਸੰਭਵ ਹੋ ਗਿਆ। ਔਰਤ ਅਤੇ ਮਰਦ ਦੇ ਕੰਮਾਂ ਵਿਚ ਵੰਡ ਹੋ ਗਈ। ਰੋਜ਼ੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਅਤੇ ਉਸ ਲਈ ਸੰਦ ਬਣਾਉਣ ਦਾ ਕੰਮ ਮਰਦ ਦੇ ਹਿੱਸੇ ਆਇਆ ਅਤੇ ਔਰਤ ਘਰ ਤੱਕ ਸੀਮਤ ਹੋ ਕੇ ਰਹਿ ਗਈ। ਉਤਪਾਦਨ ਦੇ ਸਾਧਨਾਂ ਉਤੇ ਮਰਦ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਹੋਣਾ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਦੂਜੈਲਾ ਕਰਦਾ ਰਿਹਾ। ਨਾਰੀ ਦੀ ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਏਂਗਲਜ ਨੇ 'ਮਰਗ;ਦ .ਜਤਵਰਗਜਫ ਦਕਕਿ਼ਵ ਰਾਂ ਵੀਕ ਕਠ;ਕ ਛਕਘੋ ਕਿਹਾ ਹੈ। [3]

ਸਭਿਅਤਾ ਦਾ ਯੁੱਗ ਮਨੁੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਪੜਾਅ ਦਾ ਤੀਜਾ ਪੜ੍ਹਾਅ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਗੁਲਾਮਦਾਰੀ, ਸਾਮੰਤਸ਼ਾਹੀ ਅਤੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਵੰਡਿਆ ਗਿਆ। ਸਭਿਅਤਾ ਦੇ ਯੁੱਗ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲੇ ਪੜਾਅ ਗੁਲਾਮਦਾਰੀ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਪਹਿਲਾਂ ਨਾਲੋਂ ਬਹੁਤ ਵੱਡੀ ਪੱਧਰ ਉਤੇ ਅੰਤਰ-ਆਇਆ। ਉਹ ਆਪਣੇ ਮਾਲਕ ਦੀ ਗੁਲਾਮ ਬਣ ਕੇ ਰਹਿ ਗਈ। ਸਾਮੰਤਵਾਦੀ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਬਾਲ

ਵਿਆਹ, ਸਤੀ ਪ੍ਰਥਾ ਆਦਿ ਸਮਾਜਕ ਬੁਰਾਈਆ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਸਨ। ਇਸ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਔਰਤ ਨੂੰ ਵਸਤੂ ਜਾਂ ਜਗੀਰ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਹੋਰ ਵੀ ਤਰਸਯੋਗ ਹੋ ਗਈ। ਸਭਿਅਤਾ ਦੇ ਯੁੱਗ ਦਾ ਤੀਸਰਾ ਪੜਾਅ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਹੈ। ਆਧੁਨਿਕ ਯੁੱਗ ਦੇ ਇਸ ਪੜਾਅ ਉਤੇ ਔਰਤ ਦਾ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਜਾਰੀ ਰਿਹਾ। ਔਰਤਾਂ ਦਾ ਇਕ ਹਿੱਸਾ ਸਿੱਖਿਅਤ ਹੋ ਕੇ ਪੁਰਾਣੀਆਂ ਕਦਰਾਂ ਦਾ ਭਾਵੇਂ ਤਿਆਗ ਕਰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਬਹੁਤ ਘੱਟ ਸੀ। ਅਨਪੜ੍ਹਤਾ ਅਤੇ ਆਰਥਿਕ ਪੱਖ ਤੋਂ ਮਰਦ 'ਤੇ ਨਿਰਭਰਤਾ ਔਰਤ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਦਾ ਕਾਰਨ ਬਣੀ। ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਮਾਜਕ ਢਾਂਚੇ ਤੋਂ ਅਗਲਾ ਪੜਾਅ ਸਮਾਜਵਾਦੀ ਸਮਾਜਕ ਢਾਂਚੇ ਦਾ ਹੈ, ਅਨੁਮਾਨ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਪੜਾਅ ਉਤੇ ਔਰਤ-ਮਰਦ ਬਰਾਬਰ ਦੇ ਸਾਂਝੀਵਾਲ ਹੋਣਗੇ।

ਔਰਤ ਨੂੰ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਤੱਕ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸਮਾਜਕ ਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚੋਂ ਗੁਜਰਨਾ ਪਿਆ ਜਿਸ ਆਧਾਰ ਉਤੇ ਔਰਤ ਸੰਬੰਧੀ ਦੋ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ 1. ਪੁਰਾਤਨ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ 2. ਨਵੀਨ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਸਾਹਮਣੇ ਆਏ ਹਨ।

ਪੁਰਾਤਨ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਔਰਤ ਨੂੰ ਨਿੰਦਦਾ ਹੈ ਇਸ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਦੂਜਾ ਦਰਜਾ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਅਤੇ ਮਰਦ ਦੀ ਪ੍ਰਧਾਨਗੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਔਰਤ ਨੂੰ ਸਮਾਜਕ-ਆਰਥਕ ਸਥਿਤੀ ਉਤੇ ਮਰਦ ਤੋਂ ਘੱਟ ਆਂਕਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਤੋਂ ਵੀ ਔਰਤ ਦੀ ਦੁਜੈਲੀ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਪਤਾ ਲੱਗਦਾ ਹੈ।

ਨਵੀਨ ਜਾਂ ਆਧੁਨਿਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੇ ਹੱਕਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਨਾ ਮੁੱਖ ਮਕਸਦ ਸੀ। ਨਾਰੀਵਾਦ ਦੀ ਲਹਿਰ ਪਹਿਲਾਂ ਸੱਠਵਿਆਂ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ ਪੱਛਮ ਵਿਚ ਇਕ ਸਿਆਸੀ ਲਹਿਰ ਪਹਿਲਾਂ ਸੱਤਵਿਆਂ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ ਪੱਛਮ ਵਿਚ ਇਕ ਸਿਆਸੀ ਲਹਿਰ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸੁਰੂ ਹੋਈ ਸੀ। ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਔਰਤ ਦੀ ਸਮਾਜਕ-ਆਰਥਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਸੁਧਾਰ ਦੀ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਇਸ ਵਿਚ ਕੋਈ ਅਤਿਕਥਨੀ ਨਹੀਂ ਕਿ ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਵੀ ਔਰਤ ਨੂੰ ਆਤਮ-ਨਿਰਭਰ ਜਾਂ ਸਿੱਖਿਅਕ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਹੀਣਤਾ ਝੱਲਣੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ ਉਸ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਮਰਦ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਦੀ ਨਹੀਂ, ਦੁਜੈਲੀ ਹੀ ਬਣੀ ਹੋਈ ਹੈ।

ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਸਿੱਖਿਆ ਰੁਜ਼ਗਾਰ ਦੇ ਮੌਕੇ ਤਾਂ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੇ ਪਰ ਉਸ ਦਾ ਸਰੀਰਿਕ ਅਤੇ ਮਾਨਸਿਕ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਆਤਮ ਨਿਰਭਰ ਹੋਣ ਦੇ ਬਾਵਜੂਦ ਵੀ ਜਾਰੀ ਰਿਹਾ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਢਾਂਚਾ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਹੈ ਪਰ ਪੰਜਾਬੀਆਂ ਦੀਆਂ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਜਾਂ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਜਾਗੀਰਦਾਰੀ/ਸਾਮੰਤਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਵਾਲੀ ਹੀ ਬਣੀ ਰਹੀ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਸਾਂਸਕ੍ਰਿਤਕ ਸੰਸਥਾ 'ਪੁਰਸ਼ ਪ੍ਰਧਾਨ ਸੰਯੁਕਤ ਪਰਿਵਾਰ' ਦੀ ਸੰਸਥਾ ਰਹੀ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਪਦਾਰਥਕ ਆਧਾਰ ਸਾਮੰਤੀ ਉਤਪਾਦਨ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਸੀ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਇਹਨਾਂ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਵਿਚ ਪੁਰਸ਼ ਦੀ ਪ੍ਰਧਾਨਗੀ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਘਰ ਦਾ ਮੁਖੀ ਪਰਿਵਾਰ ਦਾ ਵੱਡਾ ਪੁਰਸ਼ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਵਡੇਰਾ ਹੋਣ ਦੀ ਹੈਸੀਅਤ ਕਾਰਨ ਘਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਨਿਰਣੇ ਖੁਦ ਲੈਣ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਰੱਖਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਘਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਜੀਅ ਉਸ ਦਾ ਫੈਸਲਾ ਮੰਨਣ ਲਈ ਪਾਬੰਦ ਸਨ। ਪੰਜਾਬੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਕਰਤਾ-ਧਰਤਾ ਪੁਰਸ਼ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਅਤੇ ਮੁੱਖ ਧੰਦਾ ਖੇਤੀ ਵੀ ਪੁਰਸ਼ ਕੇਂਦਰਿਤ ਹੋਣ ਕਾਰਨ, ਪੂਰਬੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਦੁਜੈਲੀ ਹੀ ਰਹੀ। ਸਾਮੰਤੀ ਕਦਰਾਂ ਅਤੇ ਪਰਿਵਾਰਾਂ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਜ਼ਮੀਨ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਰਹੀ ਅਤੇ ਔਰਤ ਵਾਰਿਸ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਦਾ ਸਾਧਨ ਹੀ ਬਣੀ ਰਹੀ।

ਪੱਛਮੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਬਣਤਰ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਜੀਵਨ-ਸ਼ੈਲੀ ਅਧਾਰਤ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਪੱਛਮੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਹਰ ਵਿਅਕਤੀ ਦੀ ਆਪਣੀ ਆਜ਼ਾਦ ਹਸਤੀ ਹੈ, ਉਥੇ ਨਿੱਜਮੁਖੀ ਪ੍ਰਵਿਰਤੀ ਭਾਰੂ ਹੈ। ਸਾਮੰਤੀ ਮਾਨਸਿਕਤਾ ਵਾਲੇ ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਨੇ ਜਦੋਂ ਪੱਛਮੀ ਮੁਲਕਾਂ ਵਿਚ ਪੈਰ ਧਰਿਆ ਤਾਂ ਜਾਗੀਰੂ ਸੋਚ ਵੀ ਉਹ ਨਾਲ ਹੀ ਲੈ ਗਏ। ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਮਰਦ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਪੱਛਮੀ ਮੁਲਕਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦੇਣ ਦੀ ਬਜਾਇ ਸਾਮੰਤੀ ਕਦਰਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਆਜ਼ਾਦੀ ਦਿੱਤੀ। ਪਰ ਜਦੋਂ ਸਾਮੰਤੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਜੰਮੀ ਪਲੀ ਔਰਤ ਨੇ ਪੱਛਮੀ ਮੁਲਕਾਂ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦ ਸ਼ੈਲੀ ਵਿਚ ਪੈਰ ਧਰਿਆ ਤਾਂ ਉਸ ਨੇ ਸਾਮੰਤੀ ਕਦਰਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਔਰਤ ਦੀ ਇਸ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਪਰਵਾਸੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰਾਂ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿਚ ਬਾਖੂਬੀ ਚਿਤਰਿਆ ਹੈ।

ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਕਹਾਣੀਕਾਰ ਜਰਨੈਲ ਸਿੰਘ ਦੀ ਕਹਾਣੀ 'ਦੋ ਟਾਪੂ' ਦੀ ਪਾਤਰ ਪਾਸ਼ੀ (ਐਮ ਐਸ. ਸੀ) ਕੈਨੇਡਾ ਵਿਚ ਪੱਕੇ ਦਸਵੀਂ ਪਾਸ ਬਲਰਾਜ ਨਾਲ ਵਿਆਹੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਕੈਨੇਡਾ ਆ ਕੇ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੀ ਨਵੀਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕਰਦੇ ਪਾਸ਼ੀ ਅਤੇ ਬਲਰਾਜ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਜਦੋਂ ਲੀਹ ਉਤੇ ਆਉਣੀ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋਈ ਤਾਂ ਬਲਰਾਜ ਨੂੰ ਪਾਸ਼ੀ ਦਾ ਅੱਗੇ ਨਿਕਲ ਜਾਣਾ ਕਿਧਰੇ ਨਾ ਕਿਧਰੇ ਆਪਣੇ ਹੀਣ ਹੋਣ ਦਾ ਅਹਿਸਾਸ ਕਰਵਾਉਂਦਾ। ਜਦੋਂ ਪਾਸ਼ੀ ਦੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੇ ਬਲਰਾਜ ਦੇ ਭਤੀਜੇ ਨਾਲ ਪਾਸ਼ੀ ਦੀ ਭੈਣ ਦਾ ਸਾਕ ਕਰਨ ਤੋਂ ਮਨਾ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਤਾਂ ਬਲਰਾਜ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਗੁੱਸਾ ਆਇਆ। ਗੁੱਸੇ ਵਿਚ ਆਇਆ ਬਲਰਾਜ ਪਾਸ਼ੀ ਦੇ ਮਾਪਿਆਂ ਨੂੰ ਘਰੋਂ ਨਿਕਲ ਜਾਣ ਲਈ ਆਖਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਉਤੇ ਪਾਸ਼ੀ, ਬਲਰਾਜ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਘਰ ਉਤੇ ਆਪਣੇ ਅਧਿਕਾਰ ਸੰਬੰਧੀ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ:

> ਇਹ ਘਰ ਤੁਹਾਡਾ 'ਕੱਲਿਆ ਦਾ ਨਹੀਂ। ਇਹਦੇ 'ਚ ਮੇਰਾ ਵੀ ਅੱਧ ਐ। ਤੇ ਤੁਸੀਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਐਂ ਘਰੋ ਕੱਢ ਦਿੱਤੇ ਜਿੱਦਾ... ।' ਭਰੀ ਪੀਤੀ ਪਾਸ਼ੀ ਦਾ ਗਲਾ ਭਰ ਆਇਆ।
>
> ''ਜੇ ਏਨਾਂ ਈਂ ਦੁੱਖ ਲੱਗਾ ਆ ਤਾਂ ਨਾਲ ਹੀ ਚਲੇ ਜਾਣਾ ਸੀ।''
>
> ''ਜਾਵਾਂ ਜਾਂ ਨਾ ਜਾਵਾਂ, ਇਹ ਤੁਹਾਡੀ ਨਹੀਂ ਮੇਰੀ ਮਰਜ਼ੀ ਆ।''[4]

ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤ ਦੁਆਰਾ ਘਰ ਉਤੇ ਅਧਿਕਾਰ ਜਤਾਉਣਾ ਉਸ ਦੀ ਜਾਗਰੂਕਤਾ ਦਾ ਸੰਕੇਤ ਹੈ ਅਤੇ ਇਹ ਚੇਤੰਨਤਾ ਉਸ ਵਿਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਖੁੱਲ੍ਹੇ ਮਾਹੌਲ ਕਾਰਨ ਹੀ ਸੰਭਵ ਹੋਈ ਹੈ।

ਇਸੇ ਪ੍ਰਕਾਰ ਜਰਨੈਲ ਸਿੰਘ ਰਚਿਤ ਇਕ ਹੋਰ ਕਹਾਣੀ 'ਪਰਛਾਵੇਂ' ਨੂੰ ਵੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। 'ਪਰਛਾਵੇਂ' ਕਹਾਣੀ ਦੀ ਪਾਤਰ ਬਲਬੀਰ ਨੇ ਆਪਣੇ ਮਿਹਨਤੀ ਸੁਭਾਓ ਅਤੇ ਦ੍ਰਿੜਤਾ ਨਾਲ ਸਹੁਰੇ ਪਰਿਵਾਰ ਵਿਚੋਂ ਆਲਸ ਨੂੰ ਕੱਢ ਦਿੱਤਾ ਅਤੇ ਗਹਿਣੇ ਵੇਚ ਪਤੀ ਨੂੰ ਚੰਗੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਲਈ ਕਨੇਡਾ ਭੇਜ ਦਿੱਤਾ। ਪਰ ਕੈਨੇਡਾ ਵਿਚ ਵਸਦਿਆਂ ਜਦੋਂ ਬਲਬੀਰ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਪਤੀ ਦੇ ਦੂਜੀ ਔਰਤ ਨੀਲੂ ਵੱਲ ਝੁਕਾਅ ਸੰਬੰਧੀ ਪਤਾ ਲਗਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਪਤੀ ਦੀ ਹਸਤੀ ਵਿਚੋਂ ਮਨਫ਼ੀ ਹੋਏ ਆਪੇ ਦੀ ਪੀੜ ਵਿਚ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਬਲਕਿ ਉਹ ਪਤੀ ਨੂੰ ਸਵਾਲ ਕਰਦੀ ਹੋਈ ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਵਿਵੇਕ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸ਼ਬਦਾਂ ਨਾਲ ਸਿਰਜਦੀ ਹੈ:

> ਮੈਂ ਜੱਜ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਪਰ ਮੈਨੂੰ ਆਪਣੀ ਗੋਲੀ ਵੀ ਨਾ ਸਮਝ ਰੱਖਿਓ। ਤੁਹਾਡੇ ਬਰਾਬਰ ਦਾ ਦਰਜ਼ਾ ਰੱਖਦੀ ਆਂ। ਤੇ ਤੁਹਾਨੂੰ ਪੁੱਛਣ ਦਾ ਹੱਕ ਵੀ... ।[5]

ਆਪਣੀ ਹੋਂਦ ਪ੍ਰਤੀ ਸੁਚੇਤ ਭਾਰਤੀ ਔਰਤ ਪਤੀ ਨੂੰ ਸਵਾਲ ਕਰਦੀ ਹੈ ਉਸ ਦਾ ਜਵਾਬ ਮੰਗਦੀ ਹੈ। ਪੱਛਮੀ ਮੁਲਕਾਂ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਖੁੱਲ੍ਹਾ ਮਾਹੌਲ ਦਿੱਤਾ, ਪੱਛਮੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਵਿਚਰਦੀ ਔਰਤ ਤਲਾਕ

ਲੈ ਕੇ ਨੌਕਰੀ ਕਰਦੀ, ਬੱਚੇ ਪਾਲਦੀ, ਵਿਆਹੁੰਦੀ ਤੇ ਹੋਰ ਸਮਾਜਕ ਜਿੰਮੇਵਾਰੀਆਂ ਨਿਭਾਉਂਦੀਆਂ ਹੈ। ਮਰਦ ਦੇ ਧੋਖੇ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋ ਕੇ ਵੀ ਉਹ ਸੰਭਲਦੀ ਆਪਣੀ ਸਖ਼ਸੀਅਤ ਦਾ ਵਿਕਾਸ ਕਰਦੀ ਅਗਾਂਹ ਵਧਦੀ ਹੈ।

ਇਹ ਪਰਵਾਸੀ ਸਮਾਜਕ ਯਥਾਰਥ ਦਾ ਸੱਚ ਹੈ ਕਿ ਪੱਛਮੀ ਸਮਾਜ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਸੁੰਤਤਰ ਪਹਿਚਾਣ ਲਈ ਧਰਤੀ ਦਿੱਤੀ ਪਰ ਇਸ ਖੁੱਲ੍ਹ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦਾ ਸਰੀਰਿਕ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਵੀ ਕੀਤਾ। 'ਪੱਤਿਆਂ ਨਾਲ ਢਕੇ ਜਿਸਮ' ਕਹਾਣੀ ਰਾਹੀਂ ਜਰਨੈਲ ਸਿੰਘ ਨੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਸਮਾਜ ਦੁਆਰਾ ਸੁੰਤਤਰਤਾ ਹੇਠ ਚਲਾਏ ਜਾ ਰਹੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਪਾਰ ਤੰਤਰ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਉਸਾਰਿਆ ਹੈ। ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਔਰਤ ਦੀ ਜਿਸ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਨੂੰ ਨਾਰੀ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਕਹਿ ਕੇ ਸਰਾਹ ਰਿਹਾ ਹੈ ਉਹ ਨਾਰੀ ਦੀ ਦੇਹ ਉਪਰ ਉਸਰ ਰਿਹਾ ਵਪਾਰ ਤੰਤਰ ਹੈ। ਔਰਤ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਨਾ ਤਾਂ ਸਾਮੰਤਵਾਦੀ ਢਾਂਚੇ ਵਿਚ ਆਜ਼ਾਦ ਸੀ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਢਾਂਚੇ ਵਿਚ ਆਜ਼ਾਦ ਹੈ।

ਸਾਮੰਤੀ ਅਤੇ ਪਿਤਰੀ ਅਵਚੇਤਨ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤ ਲਈ ਘਰ ਦੀ ਸਾਂਭ-ਸੰਭਾਲ ਅਤੇ ਬੱਚਿਆਂ ਦਾ ਪਾਲਣ ਪੋਸ਼ਣ ਕਰਨ ਤੱਕ ਦਾ ਦਾਇਰਾ ਮਿਥਿਆ ਹੈ। ਪੱਛਮੀ ਮੁਲਕਾਂ ਵਿਚ ਵੀ ਪਹਿਲਾਂ ਪਹਿਲ ਗਈਆਂ ਪਰਵਾਸੀ ਪੰਜਾਬੀ ਔਰਤਾਂ ਨੂੰ ਮਰਦ ਨੇ ਘਰ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਜਾ ਕੇ ਕੰਮ ਕਰਨ ਦੀ ਇਜ਼ਾਜਤ ਸਿਰਫ਼ ਉਦੋਂ ਤੱਕ ਦਿੱਤੀ ਜਦੋਂ ਤੱਕ ਆਰਥਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਸੁਧਾਰ ਨਾ ਹੋ ਗਿਆ। ਆਰਥਿਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਸੁਧਾਰ ਨੇ ਔਰਤ ਨੂੰ ਘਰ ਅਤੇ ਬੱਚਿਆਂ ਤੱਕ ਸੀਮਤ ਕਰ ਕੇ ਰੱਖ ਦਿੱਤਾ। ਰਵਿੰਦਰ ਰਵੀ ਰਚਿਤ ਕਹਾਣੀ 'ਦੋਗਲੇ' ਵਿਚ ਗੱਜਣ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀ ਆਰਥਕ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਸੁਧਾਰ ਹੋ ਜਾਣ ਦੀ ਸੂਰਤ ਵਿਚ ਉਸ ਦੀ ਪਤਨੀ ਘਰ ਵਿਚ ਬੱਚਿਆਂ ਤੱਕ ਹੀ ਸੀਮਤ ਹੋ ਕੇ ਰਹਿ ਜਾਂਦੀ ਹੈ :

> ਮੁਢਲੇ ਸੰਘਰਸ਼ ਦੇ ਦਿਨਾਂ ਵਿਚ ਉਸ ਦੀ ਪਤਨੀ ਦੇਬੋ ਨੇ ਵੀ ਉਸ ਨਾਲ ਬਰਾਬਰ ਮੋਢੇ ਨਾਲ ਮੋਢਾ ਡਾਹ ਕੇ ਕੰਮ ਕੀਤਾ ਸੀ। ਉਸ ਉਪਰੰਤ ਉਸ ਦਾ ਮੁੱਖ ਕੰਮ ਘਰ ਅਤੇ ਬੱਚਿਆਂ ਦੀ ਸੰਭਾਲ ਹੀ ਰਹਿ ਗਿਆ ਸੀ। [6]

ਵੀਨਾ ਵਰਮਾ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਵਿੱਚ ਅਕਸਰ ਮਰਦ ਪਾਤਰ ਔਰਤ ਨੂੰ ਮੁੜ ਮੁੜ ਧੋਖਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ। ਉਹ ਉਸਦੀ ਸਾਫ਼ਦਿਲੀ ਅਤੇ ਭੋਲਾਪਣ ਨੂੰ ਅਣਡਿੱਠਾ ਕਰਕੇ ਉਸਨੂੰ ਮਜਬੂਰ ਕਰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਸਮਾਜ ਵੱਲੋਂ ਲਾਏ ਗਏ ''ਬਦਚਲਣ'' ਦੇ ਝੂਠੇ ਦਾਗ ਨੂੰ ਸਹੇ। ਉਹ ਉਸਦੀ ਪਵਿੱਤਰਤਾ ਨੂੰ ਮੈਲਾ ਕਰਨ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਵੀਨਾ ਵਰਮਾ ਦੀਆਂ ਨਾਇਕਾਵਾਂ ਇਸ ਵਿਸ਼ਵਾਸਘਾਤ ਦਾ ਜਵਾਬ ਆਪਣੀ ਆਤਮਿਕ ਪਵਿੱਤਰਤਾ, ਅੰਦਰੂਨੀ ਸਚਾਈ ਅਤੇ ਮਨ ਦੀ ਸਾਫ਼ਗੋਈ ਨਾਲ ਦਿੰਦੀਆਂ ਹਨ ।

> **"ਔਰਤ ਤਾਂ ਹਰ ਮਹੀਨੇ ਪਾਕ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਰਜ਼ੀਆ ਬੇਗ਼ਮ |ਕੁਦਰਤ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਬੇਹਤਰੀਨ ਨਿਆਮਤ ਨਾਲ ਨਿਵਾਜ਼ਿਆ ਏ|ਵਰਨਾ ਮਰਦ ਤਾਂ ਉਸ ਨੂੰ ਨਾਪਾਕ ਨਾਪਾਕ ਆਖ ਕੇ ਜੀਣ ਹੀ ਨਾ ਦੇਵੇ |" 7**

ਸਮਾਜਕ ਰਸਮਾਂ-ਰਿਵਾਜਾਂ ਅਤੇ ਰਿਵਾਇਤੀ ਪਾਬੰਦੀਆਂ ਕਰਕੇ ਔਰਤ ਅਕਸਰ ਆਪਣੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਆਪਣੇ ਮਨਮੁਤਾਬਕ ਨਹੀਂ ਜੀ ਸਕਦੀ। ਬਚਪਨ ਵਿੱਚ ਉਹ ਪਿਤਾ ਦੇ ਅਧੀਨ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ, ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪਤੀ ਦੀ ਮਰਜ਼ੀ ਉਸਦੀ ਰਹਿਨੁਮਾਈ ਬਣ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਬੁਢਾਪੇ ਵਿੱਚ ਪੁੱਤਰ ਦੀ ਸੋਚ ਉਸਦੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਫੈਸਲੇ ਨਿਰਧਾਰਤ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਸਮਾਜ ਉਸਨੂੰ ਖੁੱਲ੍ਹੇ ਆਕਾਸ਼ ਹੇਠ ਸੁਤੰਤਰ ਪੰਛੀ ਵਾਂਗ ਆਪਣੇ ਸੁਪਨਿਆਂ ਦੀ ਉਡਾਣ ਭਰਨ ਦੀ ਆਜ਼ਾਦੀ ਨਹੀਂ ਦਿੰਦਾ।

ਵੀਨਾ ਵਰਮਾ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ ਦੀਆਂ ਇਸਤ੍ਰੀਆਂ ਕਈ ਵਾਰ ਹਾਲਾਤਾਂ ਅੱਗੇ ਸਮਰਪਿਤ ਹੋ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ, ਪਰ ਕਈ ਵਾਰੀ ਉਹ ਆਪਣੇ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਲਈ ਡਟ ਕੇ ਖੜ੍ਹਦੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਦੀ ਧੁਨੀ ਉੱਚੀ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਉਸ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਦੀ ਨਾਇਕਾ ਵੀ ਬਗਾਵਤੀ ਰੂਪ ਅਪਣਾ ਕੇ ਆਪਣੇ ਵਿਚਾਰ ਨਿਡਰਤਾ ਅਤੇ ਦ੍ਰਿੜ ਨਿਸ਼ਚੇ ਨਾਲ ਸਾਹਮਣੇ ਰੱਖਦੀ ਹੈ।

ਔਰਤ ਦੇ ਜੀਵਨ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਫੈਸਲੇ ਲੈਣਾ ਮਰਦ ਆਪਣਾ ਅਧਿਕਾਰ ਸਮਝਦਾ ਹੈ।ਔਰਤ ਨੂੰ ਕੁੱਟਣਾ-ਮਾਰਨਾ, ਜਲੀਲ ਕਰਨਾ ਮਰਦ ਨੂੰ ਮਰਦਾਨਗੀ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।ਪਰ ਪੱਛਮੀ ਸਮਾਜ ਦੀ ਜੰਮਪਲ ਔਰਤ ਇਸ ਦਾ ਵਿਰੋਧ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ ਜੋ ਔਰਤ ਦੀ ਚੇਤੰਨਤਾ ਦੀ ਹਾਮੀ ਭਰਦਾ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਅਤੇ ਟਿਪਣੀਆਂ

1. The Origin of The Family, Private and The Stage,Page 23
2 Ibid, page 32
3. Ibid, page 57
4 ਜਰਨੈਲ ਸਿੰਘ, ***ਦੋ ਟਾਪੂ***, ਪੰਨਾ 22
5. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 130
6. ਰਵਿੰਦਰ ਰਵੀ, ***ਮੇਰੀਆਂ ਸਾਰੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ***, ਪੰਨਾ 42
7 **ਵੀਨਾ ਵਰਮਾ , ਮੁੱਲ ਦੀ ਤੀਵੀਂ ,ਪੰਨਾ--188**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था का अनुशीलन

डॉ. यतीन्द्र सिंह कुशवाहा
हिन्दी विभाग, सहायक आचार्य
डी.ए.वी.कॉलेज, कानपुर

इस्लाम का उदय समानता और भाईचारे की आधारभूमि पर हुआ किन्तु भारत में जिस आशा और अपेक्षा के साथ निम्न वर्ग ने धर्म परिर्वतन किया किन्तु जाति व्यवस्था और भेदभाव ने उनका साथ नहीं छोड़ा। अनेक समितियों और विद्वानों ने भारतीय मुस्लिम समाज के सम्बन्ध में जातिगत व्यवस्था को स्वीकार किया है। मुस्लिम कथाकारों ने इस जाति व्यवस्था को अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति प्रदान की। मुस्लिम कथाकार अनेक घटनाओं और पात्रों के माध्यम से भारतीय मुस्लिम समाज के जातिगत भेदभाव को व्यक्त किया है।

बीज शब्द : इस्लाम, समानता, अशराफ, अज़लाफ, अरज़ाल, जाति, बिरादरी।

जाति-प्रथा की उत्पत्ति ऋग्वेद में वर्ण शब्द का उल्लेख किया गया। जिसका तात्पर्य रंग से लिया जाता है। आर्य का अर्थ गोरे वर्ण से और दास से आशय काले रंग से है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऋग्वेद में ब्राह्मण या क्षत्रिय का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। किन्तु गुप्तकाल तक आते आते इस जातीय व्यवस्था में कठोरता आ गई। भारतीय समाज अनेक उपजातियाँ प्रचलित हो गयीं। जिसने जातिगत नियमों का उल्लंघन किया, उन्हें जाति बहिष्कृत किया जाने लगा। शनैः शनैः जाति व्यवस्था भारतीय समाज के अभिन्न अंग के रूप में स्थापित हो गयी।

इस्लाम की स्थापना एवं प्रारंभिक लोकप्रियता का मूल कारण समानता एवं बंधुत्व की अवधारणा थी। समानता एवं बंधुत्व के भाव के साथ सामाजिक सदभाव की व्याप्ति प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध थी। इसमें जातिवाद जैसी संकीर्ण धारणाओं के लिए कोई स्थान नही था किन्तु इस्लाम अपने प्रचार प्रसार के क्रम में इस्लाम भिन्न भिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क में आया। इसी क्रम में भारत में इस्लाम के आगमन के साथ ही भारतीय समाज तथा इस्लामिक समाज एक दूसरे के सम्पर्क में आये। इन दोनों संस्कृतियों के सम्मिलन के परिणाम स्वरूप परस्पर विशेषताओं का आदान प्रदान हुआ। समानता की अवधारणा इस्लाम तथा मुस्लिम समाज का मूल आधार थी जबकि भारतीय सामाज में वर्गीय धारणा के साथ-साथ आधुनिक जातिगत विभाजन भी विद्यमान था अतः इस शोध की परिकल्पना है कि भारतीय मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था विदयमान नहीं है।

इस्लाम की स्थापना समानता का आधार लेकर की गई। भारत में इस्लाम आगमन पर अनेक निम्न जाति के हिन्दुओं ने इस आशा के साथ इस्लाम अपना लिया कि वे अपनी परिस्थिति में सुधार कर सकेंगे क्योंकि इस्लाम में जातिगत भेदभाव नहीं पाया जाता था। इस्लाम के भारत आगमन पर दोनों धर्मी तथा संस्कृतियों ने परस्पर प्रभाव डाला। श्रीनिवासन तथा कामथ जैसे समाजशास्त्रियों का मत है कि हिन्दू समाज को घोर जातिवादी बनाने में इस्लाम परोक्ष रूप से उत्तरदायी है। दूसरी ओर प्रो० इम्तियाज अहमद का मानना है कि भारतीय मुसलमानों में जाति-व्यवस्था सीधे-सीधे हिन्दू प्रभाव की देन है। हिन्दू और मुसलमान भारतीय समाज के अभिन्न अंग है। त्रिस्तरीय व्यवस्था का उद्भव हिन्दूओं में हुआ, यद्यापि आधुनिक युग में जाति

व्यवस्था के अन्दर अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। भारतीय संविधान में यह व्यवस्था गई कि धर्म, जाति अथवा वंश के आधार किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं जायेगा। जातीय भेदभाव पर सामाजिक विधानों, शिक्षा, नगरीकरण, रोजगार के चयन की स्वतन्त्रता, विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्धों में परिवर्तन पाश्चात्य प्रभाव परिणाम स्वरूप वर्तमान में जातीय अवधारणा परिवर्तित हुई है।

मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में समय समय पर अनेक आयोग तथा समितियों ने समय समय पर अपने प्रतिवेदन दिये। 1901 की भारतीय जनगणना रिपोर्ट में कहा गया है कि ''मुस्लिमों में भी तीन वर्ग हैं—1. अशराफ (नोबेल) 2. अज़लाफ (मीन) तथा 3. अरज़ाल (लोवेस्ट) तीसरे वर्ग को मस्जिदों में जाने पर पाबन्दी थी।''[1]

मुस्लिम समाज की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध सर्वाधिक चर्चित सच्चर समिति ने मुसलमानों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सुझाव दिये। "यू.पी.ए.सरकार ने भारत में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति पर उच्च स्तरीय समिति वर्ष 2005 में प्रधानमंत्री द्वारा न्यायामूर्ति रजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता में गठित की गयी। इस समिति ने 2006 नवम्बर को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इस समिति ने मुस्लिम अल्पसंख्यकों की अत्यधिक निर्धनता के साथ निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति क्रम सहायता एवं शैक्षिक उपलब्धियों, उच्चतर बेरोजगारी दर अवसंरचना की क्रम उपलब्धता तथा पुलिस न्यायपालिका व चुनावी निकायों सहित सेवाओं में कम प्रतिनिधित्व पर चिन्ता व्यक्त की। इसके अलावा सच्चर समिति ने मुसलमानों में जाति व्यवस्था को भी स्वीकार किया है। अध्याय 10 में पृष्ठ 189 से 216 तक 'द मुस्लिम ओ0बी0सी0 एण्ड अफेरमेटिव एक्सन' नामक शीर्षक में ओ0बी0सी0 व अनुसूचित जाति मुस्लिमों की चर्चा की गई है।"[2]

इस समिति के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भारतीय मुस्लिम समाज में उच्च निम्न वर्ग के साथ साथ जाति व्यवस्था भी विद्यमान है ''समिति अपनी रिपोर्ट में कहती है कि अशराफ बड़े लोग, अज़लाफ व्यवसायिक जातियां जिसे मध्यम जातियां कहते हैं और अरजाल निम्न जाति है। अरज़ाल जाति हिन्दूओं के अनुसूचित जातियों के समकक्ष प्रतीत होती है। यह विश्वास किया जाता है कि अछूत हिन्दू ही अपना धर्म परिर्वतन करके मुस्लिम अरजाल बने। लेकिन इनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति धर्म के परिर्वतन के साथ कोई बदलाव नहीं आया। और ये सामाजिक विभेद का भी शिकार लगातार होते रहे हैं। क्योंकि इनके समक्ष हिन्दूओं को एस0सी0 का दर्जा दिया गया लेकिन इन्हें नहीं दिया गया। जबकि 1936 के इम्पीरियल (एस0सी0) आदेश के तहत ईसाइयों व बौद्धों को एस0सी0 की लिस्ट में शामिल नहीं किया गया लेकिन मुस्लिम हलाल खोर को इस लिस्ट में शामिल किया गया था। लेकिन 1950 के राष्ट्रपति के आदेश में गैर हिन्दू जातियों को एस0सी0 लिस्ट से बाहर कर दिया गया। लेकिन 1956 तथा 1990 में क्रमशः सिख तथा नव बौद्धों को 1950 राष्ट्रपति आदेश में संशोधित करके एस0सी0 दर्जा दे दिया गया लेकिन अभी तक मुस्लिम व ईसाई को इससे वंचित रखा गया है। समिति ने स्वीकार किया कि 1950 का राष्ट्रपति आदेश संविधान के अनुच्छेद 16 तथा 25 के खिलाफ है क्योंकि यह अनुच्छेद धर्म के आधार पर भेदभाव को निषेध करता है।[3]

जब भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ तो भारतीय संस्कृति के प्रभाव से अछूते नहीं रहे इस सम्बन्ध में हट्टन सही कहते हैं कि जब मुस्लिम और ईसाई भारत आये, तो जाति इस देश के वातावरण में व्याप्त थी और इन समतावादी विचारधाराओं के अनुयायी भी जाति रूपी रोग से अपने आपको न बचा सकें। इसके अलावा भारतीय मुस्लिम जनसंख्या का बड़ा हिस्सा हिन्दुओं की निचली जातियों से आता है, जो इस्लाम इसलिए कबूल करते रहे ताकि सामाजिक भेद और दमनकारी सामाजिक व आर्थिक अक्षमताओं से बच सकें। वे इस्लाम के समतावादी समाजिकता के प्रति आकर्षित हुए और उन्हें आकर्षित किया भी गया लेकिन बराबरी की तलाश मृगतृष्णा ही साबित हुई। बहुत से मामलों में उनकी सामाजिकआर्थिक दशा में सुधार करने के बावजूद इनसे सामाजिक समता की मंजिल उनसे दूर रही। इसके अलावा बहुत से मामलों में जिन लोगों ने इस्लाम कबूल किया, उन्होंने अपनी धार्मिक आस्था को त्याग दिया, लेकिन जाति नहीं और वे जाति को अपने नये सामाजिक-धार्मिक दायरे में भी ले आये। इसलिए यह कहना सही होगा कि इस्लाम में भले ही जातियां या जाति जैसे ग्रुप न हों, लेकिन भारतीय मुस्लिमों में ऐसा है।[4]

जात या जाति-शब्द का उपयोग स्थानीय मुसलमानों और हिन्दुओं में उपसास्कृतिक समूहों के लिए किया जाता है। सामान्यतः इसका प्रयोग वैवाहिक सम्बन्धों में किया जाता है। लेकिन अपने समाज के उपसांस्कृतिक तत्त्व तथा एक व्यापकतर क्षेत्र में फैले बृहत सात्कृतिक समूहों को स्थानीय इकाइघ्यों दोनों के लिए मुसलमान बिरादरी का प्रयोग अधिक करते है। गांव के अदर और बाहर पूरे मुस्लिम असुदाय लिए मुसलमानों में प्रचलित एक और शब्द कोम है। प्रो० इम्तियाज अहमद के अनुसार बिरादरी शब्द के अर्थ को ठीक ठीक जाति का पर्यायवाची नहीं माना जा सकता है।[5] फिर भी उसकी संरचना तप्रथा की बुनियादी विशेषताएं दिखाई देती है जन्म के आधार पर सदस्यतो निर्धारण सजातीय विवाहों द्वारा समूह की सीनाओं की रक्षा और समूह की गायत तथा पेशेवर विशेषीकरण सभी मौजूद है।

भारत में इस्लाम के आगमन पर अनेक निम्न जाति के हिन्दुओं ने इस आशा के साथ इस्लाम धर्म को स्वीकार किया था कि वे अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार कर सकेंगे क्योंकि मुस्लिम समाज समानता पर आधारित है। भारतीय मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था विद्घ्मान नहीं है। यही शोध की परिकल्पना है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थितियों को व्यक्त करने का वांछित सशक्त माध्यम है। साहित्य समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, तिहास, आदि सभी विषयों को किसी न किसी रूप में समाविष्ट करता है। मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था के शोध हेतु मुस्लिम कथाकारों द्वारा रचित कथा साहित्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। मुस्लिम कथाकार गुलशेर खान शानी, मेहरुन्निसा परवेज, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिलाह, नासिरा शर्मा आदि का कथा साहित्य मुस्लिम समाज की महत्वपूर्ण एवं प्रामणिक अभिव्यक्ति है।

इस सन्दर्भ में अली अनवर एक घटना का उल्लेख करते हैं जो मुस्लिम समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था का जीवन्त चित्रण है "यहाँ छह दिसंबर २००७ को पूर्वी चंपारण के केसरिया थाना के रामपुर नैरिया गांव में घटी एक घटना की चर्चा करना चाहूंगा। गांव में एक टोला है अल्लाहपुर। टोला जुलाहा, कुरैशी, धोनी और नाई का है। गांव के मीर और पठान बिरादरी के लोगों ने टोले में आग लगा दी। ज्यादातर घर फूस के थे। सभी जलकर राख हो गए। आग में माल-असबाब के ही साथ कई बकरियां और मुर्गे भी जल गए। बात सिर्फ यह थी कि टोले के लोगों ने मीरों और पठानों के यहाँ बेगारी करने से इंकार कर दिया था। साथ ही विवाद एक मस्जिद को लेकर भी था। गाँव में एक मस्जिद थी। टोले के लोग मस्जिद में ही नमाज पढ़ने जाते थे। पर उन्हें आगे की पंक्तियों में बैठकर नमाज पढ़ने की इजाजत नहीं थी। यदि टोले के लोग आगे बैठते भी तो उन्हें धकिया कर पीछे कर दिया जाता। बाद में टोले के लोगों ने टोले में ही एक फूल की मस्जिद बना ली। पर गांव के मीर और पठान लोगों को यह गवारा नहीं था। उन्होंने टोले के लोगों पर मुकदमा कर दिया कि मस्जिद उनके बाप-दादों की जमीन पर बनाई गई है। टोले के लोग जब इसकी शिकायत करने थाने में गए तो थानेदार सुहेत खाँ ने टोले के लोगों को ही डराया-धमकाया। अल्लामा इकबाल का एक चर्चित शेर है :

"एक ही सफ में खड़े हो गए महमूद ओ अयाज
ना कोई बंदा रहा और ना कोई बंदानवाज"[6]

इकबाल इंसाफपसंद शायर थे और अभिव्यक्ति की आसमानी ऊँचाइयों को छूने वाले इस शेर की जमीन निश्चित रूप से यह है कि इस्लाम जात-पांत मानने की इजाजत नहीं देता। उसकी नजरों में सभी बराबर हैं। इसलिए मस्जिद में नमाजी जन सफ (कतार) में खड़े होते हैं तो पता नहीं चलता कि कौन महमूद सरीखा बादशाह है और कौन अयाज की तरह गुलाम। मगर रामपुर नैरिया गांव के मीर और पठानों ने इस्लाम के इस आदर्श का भी ख़याल नहीं रखा। अल्लाहपुर टोले में हुए आगजनी की इस घटना के खिलाफ किसी मुस्लिम संगठन ने या मुसलमानों की नुमाइंदगी करने वाले किसी तथाकथित नेता ने एक लफ्ज भी नहीं कहा। यही घटना यदि किसी हिंदू गांव में होती तो काफी हाय-तौबा मचता।[7]

प्रो० मुबारक अली जाति व्यवस्था के दुष्प्रभाव का वर्णन करते समय कहते हैं, कि ष्मुस्लिम सम्प्रदाय विभिन्न जातियों में बैंटा हुआ था। इसके कारण समाज की एकता तथा सौमनस्य नष्ट हो गया। हालाँकि हमेशा कहा जाता रहा कि सभी मुसलमान बराबर और भाई-भाई हैं परन्तु बराबरी की अवधारणा चरितार्थ न हो पाई।[8] मुस्लिम कथाकारों ने भी इन दुष्प्रभावों को विना किसी लाग लपेट के प्रस्तुत कर दिया है। असगर वजाहत सात आसमान इत्त भेदभाव को इस प्रकार व्यक्त करते

है। असगर वजाहत सात आसमान इस भेदमाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं ष्औरतें या छोटी जाति के वन जब किसी काम से अब्बा मियाँ के पास आते थे तो कुछ फासले पर बाप खड़े हो जाते थे। वामन बुआ जात की फकीर थी और उनकी बिरादरी अब्बू साब की शादी को न्योता नहीं दे रही थी। बिरादरी का कहना था कि अब्बू साब पाँच घंटों में भीख मांगकर फकीर बिसदरी में आ जाये तो उनकी बात बन सकती है।[9]

इसी प्रकार मुखडा क्या देखें में अब्दुल बिस्मिल्लाह बयान करते हैं एक मुस्लिम जनमानस भी ऊँच नीच के भेदलाव झूठे ढंग से ग्रस्त है तभी पडित जी से बुधुआ रफी के विषय में कहता है कि देखिए पंडित जी, - ऐसी गाली तो न दीजिए। ऊ चुड़िहार है और हम तुरक। एक जात बिरादरी के कैसे हुए।''[10] इसी उपन्यास का एक अन्य पात्र जब्बार मौलवी अपने जातीय अहं से ग्रस्त है। उसे अपनी पत्नी का निम्न जाति के लोगों से सम्पर्क उचित नहीं प्रतीत होता है। बह कहता है कि देखी सत्तार की माँ, मैं कहे देता हूँ इन धुनियों चुडिहारों के घर तुम न आया जाया करो। इन्हें सिर पर चढ़ाने की जरूरत नहीं है। इसी उपन्यास में दलित जाति की लड़की की माँ से विवाह करने के कारण जब्बार मौलवी की पत्नी और सत्तार अपना विरोध प्रकट करते हुए कहती है- फिर यही सब करना था तो क्या पासिन ही मिली थी? तौबा तौबा बदजनावर चराने वाली अउर बदजानवर को खाने वाली या अल्ला माफ कर....''[11]

जाति प्रथा भारतीय जनमानस के लिए अभिशाप है। जातिगत आधार राजनीति, जातिगत आधार पर नियुक्तियाँ, विवाह सम्बन्ध आदि ऐसी प्रथा जो भारतीय समाज को छिन्न-भिन्न कर रही है। राही मासूम रजा इसका मर्मस्पशी चित्र प्रस्तुत करते है। उनका स्पष्ट मत है कि जाति का भेद समाज में एक जोंक की तरह है जो चिपक जाता है और तब तक नहीं छोड़ता जब तक उसका खून निचोड़ नहीं लेता। रजा के आधा गाँव उपन्यासों में जुलाहों के लड़के मीर साहब के लड़कों के साथ कबड्डी खेल रहे थे। इस पर अहीर कहता है- ''अब तुह लोगन अइसन लाट साहेब हो गइल बाड़ा का।''[12]

किन्तु साठोत्तर मुस्लिम कथाकार अपनी सपाट बयानी से यह नहीं बयान नहीं करते हैं कि किसी भी व्यवस्था के दोनों पक्ष होते है। नकारात्मक पक्ष वर्णन उनके द्वारा नहीं किया गया है अपितु वे जाति प्रथा के सकारात्मक उपयोग का संकेत भी करते है। अब्दुल बिस्मिल्लाह झीनी झीनी बीनी चदरिया में दहेज के प्रसंग पर लिखते हैं 'एक बिरादरी के बारात दिनै की है। बारिश बुन्नी भी है। पता नहीं कब मौसम खराब हो जाए? वैसे बिरादरी के बियाह में कोई लफड़ा नहीं है। न बाजा न गाजा। बारातियों खाना खिलाना भी जरूरी नहीं है। जाड़ा हैं तो चाय और गमी है तो उतने से काम चल सकता है। पाँच बर्तनों से ज्यादा दहेज नहीं। न ले सकते न दे सकते हैं। वरना सरदार महतों बिरादरी से बाहर कर देंगे। साढे दस रूपये से ज्यादा मेहर नहीं बांध सकते हैं। एकदम शरई उसूल।'[13]

यद्यपि सकारात्मक पक्ष पर सकेंत मात्र हीं है। कुछ मुस्लिम उपन्यासकार इस्लाम के मूल सिद्धान्तों का हवाला देकर मुस्लिम समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। अतिथि देवो भव कहानी संग्रह की कहानी अलिया और पाव भर गोश्त में अब्दुल बिस्मिल्लाह इस्लाम के मूल सिद्धान्त को नसीम नामक पात्र के माध्यम से व्यक्त करते है- "दोस्तो। नाम वह मजहब है जिसे हर मुसलमान मानता है, और इस्लाम ने हमें मसावत की नसीहत दी है। मसावत यानी बराबरी। हर आदमी बराबर है कोई न बड़ा है न कोई छोटा। लेकिन दोस्तो हम देखते हैं कि अमल में ऐसा है। जो शेख है, जो सैयद और जो सिद्दिकी और खान है वे नाइयों, जुलाहों, और धुनियों से नफरत करते थे। दोस्तो इस मुल्क के शूद्रों से मिलिए तो इस्लाम कबूल किया था कि उन्हें यहाँ बराबरी का दर्जा मिलेगा, वह नहीं हुआ। बराबरी सिर्फ मस्जिद तक महदूद है। हमारे गांव में तो बहुत है। इसमें शक नहीं कि ये मुसलमान है। कलमगो है। लेकिन चारपाइयों पर नहीं बैठ सकते। हम इनके यहाँ खाना नहीं खा सकते हैं।"[14] नसीम के उपयुक्त कथन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था भारतीयता की देन है। किन्तु सर्वाधिक निराशाजनक यह है कि नसीम द्वारा इस्लाम के मूल सिद्धान्त की दुहाई जब मस्जिद में दी जाती है तो उच्च वर्ग द्वारा उसे रोक दिया जाता है।

नामदेव अपनी पुस्तक भारतीय मुसलमान हिन्दी उपन्यासों के आईने व्यष्ठ बयान करते है कि मुस्लिम समाज में बिरादरी संरचना में आय यह और शुद्धता की प्रचल भावना अस्तित्वमान है।[15] प्रो० इम्तियाज अहमद भी नामदेव के समर्थन में ही

अपना मत प्रस्तुत करते हैं। वह स्पष्ट रूप से कहते है। कि ष्भारतीय मुसलमानों में जाति व्यवस्था सीधे-सीधे हिन्दू प्रभावों की देन है।''

प्रो. इम्तियाज़ अहमद ने कहा कि दलित मुस्लिम की अधिक स्पष्ट परिभाषा की जरूरत है। अंसारी का सुझाव है अशरफ और अज़लाफ में संबंध और दूसरी तरफ अरज़ल से संबंध सामाजिक फासले को लेकर हुआ था, जो कि अस्पृश्यता के आधार पर था। अंसारी का कहना है कि अरज़ल वर्ग में लोगों को दोनों, शारीरिक व सामाजिक तौर पर अलग कर दिया। अरजल लोग बस्तियों से अलग रहने के लिए मजबूर हो गए और वे अशरफ़ और अजलफ वर्गो से संपर्क नही बना सकते थे। जहाँ तक सामाजिक मेल मिलाप का प्रश्न है तो अरजल समूहों के लोगों को सामाजिक फासला बनाए रखना होता था दूसरे समूहों के लोगोंसे इसलिए दलित मुस्लिम उन्हीं को बोला जाना चाहिए, जिनका सम्बन्ध अरज़ल जातियों से हो।[16]

मुस्लिम समाज की जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में डॉ. अंबेडकर का कथन महत्वपूर्ण है। उन्होंने बहुत गंभीर प्रश्न खड़ा किया है, वह मुस्लिम समाज में सुधार आन्दोलनों के अभाव को प्रमुख कारण स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि ''मुस्लिम समाज में बुराइयों (जाति व्यवस्था) का अस्तित्व अत्यधिक खेद जनक है। इसमें भी अधिक कष्टदायक बात यह है कि आज तक मुसलमानों में संगठित रूप से समाज सुधार का कोई आंदोलन नही चला, जिससे समाजिक बुराइयों का अंत हो सके। हिन्दू समाज की कुछ बुराईयाँ हैं। परन्तु उनसे छुटकारा की शक्ल नजर आती है। क्योंकि कुछ लोग उनके बारे में जागरूक हैं तथा कुछ लोग उनको दूर करने हेतु प्रयासरत् हैं। दूसरी तरफ मुसलमान जाति-व्यवस्था की बुराई का एहसास ही नहीं करता है।''[17]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था विद्यमान है। मुस्लिम समाज में इस जाति व्यवस्था के नकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होते हैं किन्तु जाति व्यवस्था एक गतिशील व्यवस्था है और परिवर्तनशील है। यह भी महत्वपूर्ण है। हिन्दु धर्म की निम्न जातियों ने जिस समानता आधारित समाज की आशा में इस्लाम स्वीकार किया था वह पूर्ण नहीं हो सकी है। मुस्लिम समाज में जाति व्यवस्था विद्यमान होने की पुष्टि होने के उपरान्त शोध की अनेक सभावनाएँ भी जन्म लेती हैं। मुस्लिम समाज पर जाति व्यवस्था कारणों, प्रभाव एवं मुस्लिम समाज के भारतीय हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था के प्रभाव का भी अध्ययन करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अशफाक हुसेन अंसारी, बेसिक प्राबलम ऑफ ओ0बी0सी0 एण्ड दलित मुस्लिम सिरियल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007, पृष्ठ 226
2. https://www.apnimaati.com/2023/09/blog-post-30-html (प्रदर्शित दिनांक 05/02/2026)
3. संविधान समिक्षा आयोग प्रतिवेदन 2002
4. नदीम हसनैल, एच0एस0वर्मा के संपादन में, दि ओ0बी0सी0 एण्ड दी रूलिंग क्लासेस इन इण्डिया, जयपुर रावत पब्लिकेशन 2005, पृष्ठ 84-97
5. जे० इम्तियाज अहमद, भारत के मुसलमानों में जाति व्यवस्था और सामाजिक स्तरीकरण, ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्रा० लि०, दिल्ली, 2003, पृष्ठ 37
6. अली अनवर, असलियत के शोर में गुम होते पसमांदा, जाति का जंजाल, संपा. डॉ. रणजीत, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2013, पृष्ठ 133-134
7. असगर वजाहत सात आसमान राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1996, पृष्ठ
8. मुबारक अली इतिहासकार का मतान्तर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2002 पृष्ठ 50-53
9. असगर वजाहत सात आसमान राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1996 पृष्ठ 104

10. अब्दुल बिस्मिल्लाह मुखड़ा क्या देखे राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1996 पृष्ठ 142
11. वही, पृष्ठ 32
12. राही मासूम रजा, आधा गाँव राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1984 पृष्ठ 34-35
13. अब्दुल बिस्मिल्लाह, झीनी झीनी बीनी चदरिया राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1986 पृष्ठ 489
14. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अतिथि देवो भव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1986 पृष्ठ 10
15. नामदेव, भारतीय मुसलमान हिन्दी उपन्यासों के आईने में, अनामिका पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 138
16. गौस अंसारी, मुस्लिम कास्ट इन उत्तर प्रदेश ए स्टडी ऑफ कल्चर कैन्टैक्ट, फोल्क कल्चर सोसाइटी, यू0पी0 लखनऊ, 1960
17. बी0आर0 अम्बेडकर, पाकिस्तान आर द पारर्टीशन ऑफ इंडिया, पृष्ठ 223

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा-उपन्यास में किन्नर त्रासदी का चित्रण

डॉ. हरिकृष्ण आचार
सहायक प्रध्यापक, दयानंद सागर बिसेनेस अकाडमी,
उदयपुरा, बेंगलूरु

समकालीन हिंदी स्त्री उपन्यासकारों में चित्रा मुद्गल का नाम बहुत चर्चित है। चित्रा मुदगल का चौथा उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं.203 नालासोपारा है। इस उपन्यास को 2018 के साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। मुंबइ के एक इलाके का नाम को उपन्यास का शीर्षक के रूप में रखा गया है। यह उपन्यास रचना शैली से भी विशेष है। लेखिका इस पूरे उपन्यास को पत्रात्मक शैली में लिखी है। इस उपन्यास में लेखिका त्रतीय लिंगीयों के समस्याओं को अत्यंत सशक्त रुप से चित्रित की है। चित्राजी किन्नरों के पारिवारिक, सामाजिक तथा राजकीय क्षेत्रों के समस्याओं को नैज रूप प्रधान करने में सफल हुई है। उपन्यास का प्रमुख पात्र विनोद उर्फ बिमली अपनी प्यारी माँ को पत्र के जरिए घर से बिचडने के बाद का हर छोटे बडे विषय को, अपने मन के गहरे दर्द को लिखता है। उपन्यास का पहला पत्र विनोद उर्फ बिमली अपनी माँ को दिनांक 23. 07.2011को लिखता है और 24.12.2011को अंतिम पत्र लिखता है।

उपन्यास का प्रमुख पात्र विनोद उर्फ बिमली त्रतीय लिगिंयों के सुख, दुख का बयान करते हुए अपनी माँ के नाम पत्र लिखता है। उन सभी पत्रों में भी किन्नरों के वेदना का अनावरण है। विनोद त्रतिय लिंगीयों के घेरे में आने से पहले उसका बचबन का जीवन सामान्य रहा। बचपन में विनोद फुर्तीला और बहुत नटकट लड़का था, जैसे-जैसे उसका उम्र बढ़ते गया वैसे-वैसे उसके शरीर में बदलाव होने लगे। कुछ दिनों के बाद घर वालों को पता चलता है कि विनोद जननांग दोषी है। विनोद के परिवार के लोग उसके शरीरिक बदलाव को समाज की दृष्टि से बचाने केलिए बहुत कोशिश करते हैं। परंतु यह खबर किन्नरों के मुखिया चंपाबाई को पता चल जाता है। एक दिन वह साथियों के साथ आकर विनोद को जबरदस्ती उठा कर ले जाते हैं। विनोद के पिता समाज से अपने परिवार के मर्यादा को बचाने के लिए उनका पुत्र एक कार दुर्घटना में मर गया कह कर स्कूल में तथा रिश्तेदारों में अफवाह फैला देता है।

चंपाबाई के कोठे पर विनोद उर्फ बिमली की जिंदगी का दूसरा पड़ाव आरंभ होता है। उस नरक में विनोद का साथ देनेवाला एक मात्र साथी पूनम जोशी है। विनोद वहाँ से अपनी माँ को पहला पत्र लिखता है। जिसमें अपनी वेदनाओं को कुछ इस तरह अक्षरों का रूप देता है–

"बा, वह कोशिश शुरू कर दी है, रोज नहाने के बाद मैं ध्यान मुद्रा में बैठ जाता हूँ पर विचित्र है बा ध्यान में तू आ जाती है तेरे कृष्ण नहीं। तेरे कृष्ण को कहीं इस जगह से तो परहेज नहीं आया आधे-अधूरे मुझसे? रोज नहाने की आदत पर मेरे संगी-साथी उपहास करते हैं। ताली बजाकर तल्ख टिप्पणियाँ करते हैं। किन्नर दूसरों की पूजा अर्चना नहीं करते। अपनी बिरादरी के कायदे-कानून भूलकर मरी तू संत महात्माओं जैसा व्यवहार क्यों कर रही है? 'क्यों कर रहा हूँ, मैं उन्हें सुधारने की हर बार कोशिश करता हूँ। उनके लात, घूंसे, थप्पड़ और कानों में गर्म तेल सी टपकती किसी भी संबंध को न

बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक-मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न मलमे-सितारे दाली साडियां लपेट लिपस्टिक लगा कानों में बंदे लटकाने को।"[1]

विनोद चंपाबाई के अड्डे में किन्नरों के साथ रहकर बहुत तनाव,मानसिक वेदना को अनुभव करता है। किन्नरों के साथ रहकर भी वह उनके जैसे व्यवहार करना या साडि लपेटना नहीं सीखता है। वह आगे पढना चाहता है और एक अच्चे नौकरी कर के स्वावलंबी जीवन जीना चाहता है।

विनोद दूसरे पत्र में लिखता है की - "वैसे तो सुबह नौ साढे नौ बजे के करीब खाली हो जाता हूं। दो ढई घंटे सुस्ता लेता हूं। तडके उठाना भारी लगता है मगर सुबह पाँच बजे निकल देना पडता है। फरिदाबाद केलिए। वहं की उमंग सोसाइटी में घाडी दोने का काम मिल गया है। ठिकाने पर सबलोग गहरी नींद सो रहे होते हैं मना करने के बावजूद पूनम उठ जाती है मेरे निकलने से पहले चाय का प्ला मुझे थमाकर वापस जाकर सोजाती है। पूनम हमारे किन्नर दल की कुशल नचनियां है। बाईल्या हाव-भाव और अटक-मटक से भरी हुई।

कल जिद्द ठान ली एक नहीं सुनेगी। मुझे भी साथ चलना होगा। पूनम की छिछोरी अटक मटक से मुझे चिढ़ है मगर उसका अतिरिक्त ख्याल रखना अक्सर उसका जिद्द मनवा लेता है।

बरदपुर मेट्रो स्टेशन से हम सब ढोलक और गुंगरु के साथ सरिता विहार बैंक मैनेजर खन्ना साहब के घर बदवा के अनुष्ठान केलिए निकले।

हमेशा की भांती मैंने पैंट और टी-शर्ट पहन रखी थी। मेरे मर्दों वाली पहचान से अब उनको आदत होगइ है। मैंने मजाक किया था उन्हें छेडने की खातिर....हम औरतों के डिब्बे में छढ़े या मर्दों के?

मंजू बाई ने आंख दबाकर मंह मटकाया था, हम तो भई किसी भी डिब्बे मे चढ़ सकते हैं पर चडेंगे मर्दों के। हाथ पसारो तो मरद बेझिझक अपनी अंटि खोल देते हैं।साली औरतें नकचढी होते हैं।

मां .....भूल जोते हैं पैदा हमें उन्हीं सालियों ने किया है।"[2]

विनोद दूसरे पत्र में किन्नरों के जीवन शैली तथा मानसिकता को चित्रित करता है। अपने प्रिय साथी पूनम जोशी के बारे में भी लिखता है। स्वावलंभी विनोद अपार्टमेंट निवासियों के गाड़ियों को धोकर पैसे कमाने लगता किन्नरों के झुंड में रहकर विनोद यह समझ लेता है की उनके जीवन विधा को असानी से बदल नहीं सकता है। ताली पीटकर पुरुषों से पैसे वसूल करने में उनको कोई जिझक नहीं है। विनोद उर्फ विमली के सह किन्नर स्त्रीयों के जैसे कपडे पहनकर मेकप करके शादी, गृहप्रवेश समारोह, सालगिरह में नाचकर ताली पीट-पीटकर लोगों का मनोरंजन कर पैसे कमाकर अपने जीविका चलाते हैं। उनके यह जीवन शैली को विनोद नकारता है।

"एक अनुमती चहता हुँ बा, तुझसे।

उपकार करेंगी न अपने इस बेटे पर?"

'इंदिरा गांदी ओपन युनिवर्सिटी से मैं पत्राचार कोर्स के माध्यम से बोर्ड की परिक्षा में बैठना चाहता हूं। तेरे बेटे के रूप में अपना नाम भरलूं'?

"वैसे राइट टू एजुकेशन ने पढ़ने की इच्छा रखने वालों केलिए अनेक रास्ते खोल दिए हैं।"[3]

"सरिता विहार में इग्नू का रिजिनल सेंटर है। मैं वहिं से फार्म भर सकता हूं।

फार्म मैंने देखने केलिए मांग लिया था बा।

मेल, फीमेल के खाने में तो मेल ही टिक करूंगा, बा। सरकार बी अजीब है न बा।

कंप्यूटर का कोर्स पूरा करते ही मैं विधायक जी के दफ्तर में काम करने लगूंगा। उनके पी.ए.तिवारी ने मुझे बता दिया है। तनख्वा लगबग सात हजार रूपया होगी।"[4]

शिक्षा के महत्व को विनोद जानता है वह अपनी पढ़ाई को आगे बढाने केलिए अनेक कोशिश करता है। सिक्षा के बिना किन्नर सामाज के प्रमुख धारा से जुडने में वंचित रहजाते हैं। विनोद में पढकर कोई नौकरी पाने की जिद्द ठानकर इंदिरा

गांधी विशवविद्लय से आगे कि पढाई करना चहता है और कंप्यूटर सीखकर विधायकजी के दप्तर में काम करना चहता है। विनोद का शिकायत यह है की युनिवर्सिटी के फार्म के खाने में भी केवल दोही लिंग प्रकार है, तीसरा लिंग का खाने में कोई उल्लेख ही नहीं है। विनोद उर्फ बिमली जैसे हजरों लोग इस खाने में क्या टिक करे मेल या फीमेल। त्रतियलिंगियों के समस्या को पाटक और सरकार तक लेखिका पहुंचाने की कोशिश करती है।

"किन्नरों को सरकार 0 अदर्स में न रखे तो कहां रखें लिंग से तो वर्गीकरण किया गया है।

पिछड़ा वर्ग को रखा है।

विकलांगों को रखा है।

और बहुतों को रखा है

ये सब समाज से घोर वंचित वर्ग हैं। लिंग दोषी नहीं। बाकायदा स्त्री-पुरुष हैं।

'लिंग दोषी सभी लिंग से स्त्री-पुरुष नहिं है तो क्या मनुष्य नहीं है?'

पेशाब भी करते हैं, पाखाने भी जाते हैं।

हां उन सबकी तरह वीर्य नहिं उगल सकते। मैथुन नहिं कर सकते।

इसका मतलब यह नहीं, ये मनुष्य हैं?'

किन्नर बिरादरी का संघर्ष उन्हें मनुष्य माने जाने का है।

फिर 0 अदर्स में उनको क्यों ढकेला जा रहा है

मेरा मानना यह है, अपना लिंग उन्हें चुनने की स्वतंत्रता दीजिए।

यही मैं सोचता रहा हूं मानता आया हूं। आज आप सबके सामने वहीं दोहरा रहा हूं। विमर्श कीजिए इस मुद्दे पर. ....."[6]

किन्नर समस्याओं के साथ-साथ लेखिका राजनैतिक मुद्दे पर भी अपना कलम चलाई है। राजनेता किस प्रकार संवेदन शून्य हो गए हैं की उनको किसी की पीडा तथा व्यथा कुछ नहीं दिखता, दिखता है तो केवल अवसर, उनके राजनैतिक फायदे, किस तरह ज्यादा से ज्यादा वोट बटोरें यही उनका मंत्र है। विनोद सरकार के सामने किन्नरों के लिए सामाजिक,राजनैतिक और शिक्षा के क्षेत्रों में समानता तथा अधिकार के लिए आवाज उठाता है।

"किन्नरों का मुद्दा अब तक अनछुआ है।

मंडल-कमंडल.....

आदि-आदि मुद्दे अब खो चुके हैं।

किन्नरों का आरक्षण मामला उठेगा, लपटें आसमान छुएंगी।

गलत कह रहा मैं बेदी साहब?'

प्रत्युत्तर में बेदी साहब मुस्करा दिए।

उनके खिचडी दाढी में दबे हुए मुस्कराते होंठ, मुझे लगा बा, सिर्फ मुझे दिखाई दिए।

हां तो मैं कह रहा था विनोद जी .....

लिंग पूजक मसला जरूर उठाइएगा। आगे में घी का काम करेगा।

प्रो.वर्मा ने सुनते ही विरोध किया। अति संवेदनशील मुद्दा है। लिंगपूजक विपक्ष के ही वोट बैंक नहीं है शर्मा जी। हमारा भी वोट बैंक है। भावुकता और जल्दबाजी रणनीती के लिए घातक सिद्द होगी।

मुद्दा समाज की मुख्यधारा में किन्नरो को शरीक करने का है। उनके प्रती करुणा जगाने का है। बहुत बड़ा मानवीय मुद्दा है। फूंक-फूंक कर कदम रखना होगा।

दांव उलटा पड़ गया तो समाज उनके प्रति संवेदनशील होने की बजाय विरोध में जा खडा होगा।

लिंगपूजा के गूढ़ दर्शन को आप समजने से रहे। धर्म को पनी राजनीती महत्वा कांक्षाओं की पूर्ती का चारा बनाना

किसी भी पार्टि के लिए दुनिया का सबसे बड़ा अपराध है"[7]

विनोद सरकार से अपील करता है की किन्नरों को शिक्षा क्षेत्र में और सरकारी नौकरी में आरक्षण दिया जाए। सरकार यदि किन्नरों को आरक्षण दिया तो उनका जीवन में बदलाव अवश्य होगा। विनोद के इस विचार को प्रो.वर्मा और सरकारके कई मंत्री विरोध करते हैं। विनोद दिल्ली, मुंबई,चंढीगढ जैसे अनेक महानगरों के किन्नरों को संगठित करने में जी-जान लगा देता है। उसका विश्वास है की किन्नर शिक्षित हो और सरकार के आरक्षण नीती से सरकारि नौकरियां उन्हें भी मिले तथा वे समाज के मुख्य धारा से जुड़े।

"क्षुब्ध तिल मिलाहट को रह-रहकर कस उठती मुट्ठी में चांप।

सोच रहा हूं लगातार सोच रहा हुं चंद्रा।"

मेरे हाथ में कट्टा क्यों नहीं है। ठिकाने पर पहुंच मुझे कट्टा ढूंढ लेनी चाहिए। बिना रामपुरी और कट्टे के ठिकाना सांसे नहीं बर सकता।

लेकिन पोर-पोर टूट जाने के बाद भी लड़ाई के मेरे हथियार जुदा हैं।

इस लोमहर्षक घटना के भाद भी उन हथियारों से मेरा भरोसा उठा नहीं। आवेश और विवेक गुत्थमगित्था होरहे हैं मेरे भीतर।"[8]

उपन्यास के अंतिम भाग में विनोद के प्रिय साथी लिंगदोषी पूनम जोषी पर विधायक के भतीजा और उनके दोस्त अत्याचार करते हैं। उस पर जानवरों से भी बत्तर रूप से व्यवहार करते हैं। विधयकजी अपने भतीजा और उनके दोस्तों को घटना स्थल से भगा देते हैं। खूनसे लत पत पूनम के हस्पताल दाखिल किया जता है। विधायकजी के डर से पूनम के कोई भी साथी पोलिस कंप्लेंट नहीं देते। जब विनोद को यह भयानकता का पता लगता है वह आग बबुला हो जाता है विधायक का खिलाफ लड़ने का अर्थ है पूरे सरकार से लड़ना तबी विनोद में छिपे असहायता को उपर्युक्त बातों से प्रकट करती है। विनोद विधायक के भतीजा और उसके दोस्तों को जान से मारना चाहती है। परंतु व्यवस्था के शिकार होकर वह हथियार नहीं उठाता है। व्यवस्था के खिलाफ अकेला वह कितना लड उसी समय विनोद को मुंबइ से खबर मिलती है की उसकी माँ का हालत बहुत नाजूक है उसे तुरंत माँ को देखने मुंबइ जाना होगा। वह दुविदा में पढ जाता है, एक तरफ उसके प्रिय साथी दूसरी तरफ प्यारी माँ। विधायकजी विनोद को अपनी जादुवी बातों में फसाकर खुद फ्लैट टिकट बनवाकर मुंबै को भेजते हैं। मगर विनोद मुंबै नहीं पहुंचता है।

उपन्यास को चित्राजी एक अखबर के मुख्य समाचार से अंत करते हैं। कुछ दिन बाद टाइम्स आफ इंडिया में एक समाचार छपता है। समाचार का विषय निम्नांकित है–

"मुंबइ 27 नवंबर। कुर्ला, कालीना कॉम्प्लेक्स से लगी हुई मिठी नदी में पुलिस ने एक किन्नर की फूली लाश को बरामद की है। शव की शिनाख्त नहीं हो पाई है। सिर बूरी तरह कुचला हुआ। पुलिस इस वारदात को आपसी रंजिश का नतिजा मान रही है। उसका अनुमान है, हत्या का संबन्ध अंडरवल्ड में इन दिनों सक्रीय 'मुन्ना भाई' किन्नर गिरोह से हो सकता है।"[9]

लेखिका चित्रा मुद्गल उपन्यास के अंत में विनोद की मां वंदना बेन शा विनोद को घर वापस पाने के लिए सभी प्रमुख पत्रिकाओं में माफिनामा छपवाती है। 27 नवंबर को टाइम्स आफ इंडिया पत्रिका में एक समाचार छपता है की मुंबई के मिठी नदी में एक किन्नर की फूली लाश बरामद हुआ है। यह समाचार विनोद का दुखद अंत का बयान करता है जो अपने अंतिम सांस तक किन्नरों के हित के लिए उनके सामाजिक अधिकार केलिए लडकर अपना जीवन को सार्थक बनाता है। लेखिका इस उपन्या में किन्नरों की अस्मिता के लिए लड़नेवाले विनोद के जरिए लेखिका समाज को किन्नरों के दुखद जीवन पर पटकों को सोचने के लिए मजबूर करती है। इस बात को कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी की किन्नरों की जीवन संघर्ष को समकालीन विमर्श के रूप में तब्दील करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ

1. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ.सं-09
2. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुदगल, पृ.सं-17
3. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुदगल, पृ.सं-37
4. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुदगल, पृ.सं-46
5. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुदगल, पृ.सं-195
6. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ.सं-196
7. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ.सं-172
8. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ.सं-206
9. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ.सं-223

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

तुलसीदास के साहित्य में आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मीना शर्मा
सहायक आचार्य शिक्षा संकाय, आ.ई.एस.ई.
मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर (चुरू)
मो.- 7297017193

सारांश

तुलसीदास हिन्दी साहित्य के ऐसे महान कवि है जिनका साहित्य मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का मार्गदर्शन करता है। उनके साहित्य में आदर्श व्यक्तित्व निर्माण से संबंधित नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय दिखाई देता है।

रामचरितमानस, विनय पत्रिका, कवितावली आदि ग्रंथों के माध्यम से तुलसीदास जी ने मानव को धर्म, मर्यादा, करुणा, सेवा, त्याग एवं भक्ति की शिक्षा दी है। प्रस्तुत शोधपत्र में तुलसीदास के साहित्य में निहित आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है तथा समकालीन शिक्षा व्यवस्था में इसकी प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है। यह अध्ययन मूल्य-आधारित शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा तथा नैतिक विकास की अवधारणा को सुदृढ़ करता है।

कुंजी शब्द - तुलसीदास, रामचरितमानस, आदर्श नागरिक, रामराज्य, लोकमंगल, समन्वयवाद, कर्तव्यनिष्ठा, सामाजिक मूल्य, धर्म, विनय पत्रिका, नेतृत्व, त्याग, मर्यादा।

शोध उद्देश्य- तुलसीदास के साहित्य में आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की शिक्षा का अध्ययन।

शोध-पद्धति- इस अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति अपनाई गई है। प्राथमिक स्त्रोत में तुलसीदास के मूल ग्रंथ, द्वितीय स्त्रोत में आलोचनात्मक ग्रंथ, शोधपत्र एवं संदर्भ पुस्तकों से अध्ययन किया गया है।

तुलसीदास का साहित्य- तुलसीदास हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के एक प्रमुख कवि थे। इनका साहित्य मुख्य रूप से रामभक्ति, आदर्श जीवन, नैतिक मूल्यों एवं लोक मंगल की भावना पर आधारित था। इन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक विषमता और धार्मिक द्वन्द्व जैसी स्थितियों में अपने साहित्य के माध्यम से लोक मंगल, नैतिक पुनर्जागरण और सांस्कृतिक समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया।

आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की अवधारणा

1. तुलसीदास का युग और लोकमंगल की आवश्यकता- तुलसीदास का काल भारतीय इतिहास में संक्रमण और संघर्ष का दौर था। एक ओर मुगल सत्ता का प्रसार हो रहा था, वहीं दूसरी ओर समाज में धार्मिक कटुता, जातीय भेदभाव, और नैतिक मूल्यों का ह्रास चरम पर था। ऐसे समय में, तुलसीदास ने संस्कृत के क्लिष्ट पांडित्य मार्ग को छोड़कर जनभाषा

अवधी में 'रामचरितमानस' की रचना की। उनका उद्देश्य केवल ईश्वर भक्ति का प्रचार करना नहीं था, बल्कि 'स्वांतः सुखाय' के साथ-साथ 'लोकमंगल' (सार्वजनिक कल्याण) को साधना था। तुलसीदास ने देखा कि समाज का विघटन केवल तभी समाप्त होगा जब प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह शासक हो या शासित, अपने 'धर्म' एवं कर्तव्यों का पालन करे। इन्ही विचारों से उनकी आदर्श नागरिक की संकल्पना का उदय होता है। उन्होंने रामकथा को मर्यादा, त्याग और समन्वय का प्रतिरूप बताते हुए भारतीय जनमानस के समक्ष एक पूर्ण जीवनद-शैली और आदर्श समाज (रामराज्य) की अवधारणा प्रस्तुत की।

रामचरितमानस में आदर्श व्यक्तित्व निर्माण- तुलसीदास के अनुसार, एक मजबूत समाज की नींव दृढ़ परिवार के माध्यम से स्थापित होती है। आदर्श नागरिक बनने की पहली शिक्षा व्यक्ति को पारिवारिक संबंधों के निर्वहन से प्राप्त होती है।

आदर्श पुत्र, पिता और पति (मर्यादा पुरुषोत्तम राम)- राम का चरित्र आदर्श नागरिक का केंद्रबिंदु है।

पुत्र धर्म : पिता दशरथ के वचन को निभाने के लिए राम का चौदह वर्षों का वनवास सहर्ष स्वीकार करना, नागरिकों में आज्ञाकारिता और बड़ों के प्रति सम्मान का भाव भरता है। वे कहते हैरू "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्रान जाई पर बचन न जाई।" यह व्यक्तिगत इच्छाओं पर पारिवारिक मर्यादा को प्राथमिकता देने की शिक्षा है।

पति धर्म : राम का एक पत्नीव्रत (एक ही पत्नी का व्रत लेना) सामाजिक संबंधों में निमठा और पवित्रता का सर्वोच्च आदर्श है। यह आधुनिक नागरिक को यौन शुचिता और पारिवारिक संस्थाओं के प्रति जिम्मेदारी सिखाता है।

आत्म-संयम और धैर्य : राम का वनवास के दौरान या सीताहरण के समय भी धैर्य न खोना, आदर्श नागरिक को सिखाता है कि कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य और नैतिकता का त्याग नहीं करना चाहिए।

भ्रातृ प्रेम : भरत और लक्ष्मण के चरित्र त्याग, निस्वार्थ प्रेम और समर्पण की भावना सिखाते हैं, जो एक आदर्श नागरिक में परहित की भावना जगाते हैं।

भरत द्वारा राम की चरण पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर राज्य का संचालन करना, सत्ता का त्याग और अधिकार के प्रति विरक्ति का अनूठा उदाहरण है। यह नागरिकों को सिखाता है कि पद या शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि न्यासी (ट्रस्टी) के रूप में किया जाना चाहिए।

लक्ष्मण का राम की सेवा के लिए चौदह वर्मा तक निद्रा का त्याग करना, सेवाभाव और कर्तव्यपरायणता का अद्वितीय मानक है। यह दर्शाता है कि आदर्श नागरिक अपने बड़े भाई (या राष्ट्र व समाज) के प्रति समर्पित होता है।

विनय एवं विनम्रता : तुलसीदास की रचना 'विनय पत्रिका' में विनय (नम्रता) पर अत्यधिक बल दिया गया है। वे मानते हैं कि विनम्रता ही वह आधार है जिस पर सभी सद्गुण टिकते हैं।

"तुलसी मीठे बचन तें सुख उपजत चहुँ आरे।
बसि करण इक मंत्र है, परिहरू बचन कठोर॥" (दोहावली)

आदर्श नागरिक की वाणी मधुर और आचरण विनम्र होना चाहिए। यह सामाजिक कलह को समाप्त करने का सबसे बड़ा साधन है।

परोपकार और सेवभाव : तुलसीदास ने 'परोपकार' को धर्म का सार माना है।

"परहित सरिस धरम नहिं भाई,
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।" (रामचरितमानस, उत्तरकांड)

आदर्श नागरिक वह है जो दूसरों के हित में कार्य करता है। हनुमान का चरित्र इसी परोपकार और निस्वार्थ सेवाभाव का प्रतीक है।

हनुमान का सेवा-धर्म : हनुमान बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के राम का कार्य करते हैं। उनका बल, बुद्धि और विवेक केवल सेवा के लिए समर्पित है। यह नागरिक को सिखाता है कि अपनी क्षमताओं का प्रयोग समाज के उत्थान और निस्वार्थ सेवा के लिए करना चाहिए।

धार्मिक समन्वयवाद- तुलसीदास ने शैव और वैष्णव संप्रदायों के बीच समन्वय स्थापित किया। राम शिव के उपासक हैं और शिव राम का ध्यान करते हैं। यह समन्वयवाद की शिक्षा नागरिक को धार्मिक सहिष्णुता और अन्य मतों के प्रति आदर सिखाती है। आदर्श नागरिक सभी धर्मों का सम्मान करता है और धार्मिक आधार पर वैमनस्य नहीं फैलाता।

राजनैतिक आदर्श- तुलसीदास ने अपनी सबसे बड़ी देन, 'रामराज्य' की संकल्पना के माध्यम से, आदर्श शासक और आदर्श प्रजा के बीच के संबंध को परिभाषित किया। रामराज्य आदर्श नागरिक का अंतिम लक्ष्य है।

आदर्श शासक का धर्म : रामराज्य में शासक (राम) स्वयं को प्रजा का सेवक मानते हैं। वे व्यक्तिगत सुख को त्यागकर प्रजा के कल्याण को सर्वोपरि रखते हैं।

"मुखिया मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक॥" (दोहावली)

इस दोहे में निहित शिक्षा आज के नेतृत्व के लिए सबसे महत्वपूर्ण है, शासक को मुख की तरह होना चाहिए, जो स्वयं खाकर पूरे शरीर (देश/समाज) का पोमाण करता है। आदर्श नागरिक को यह समझना चाहिए कि नेतृत्व त्याग और सेवा पर आधारित होता है।

प्रजा का कर्त्तव्य : रामराज्य की सफलता केवल राम के आदर्शों पर नहीं, बल्कि आदर्श प्रजा पर भी निर्भर करती है। रामराज्य की प्रजा कैसी थी?

सत्यपरायणता : रामराज्य में सभी लोग सत्यनिष्ठ थे।

कर्त्तव्यपरायणता : हर नागरिक अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार धर्म का पालन करता था।

भयमुक्तता : जनता दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों से मुक्त थी।

"दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥" (रामचरितमानस, उत्तरकांड)

यह बताता है कि आदर्श नागरिक को अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्तव्यों (धर्म) के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए, तथा भय और लालच से मुक्त होकर जीवन यापन करना चाहिए।

नैतिक एवं आध्यात्मिक आदर्श- नागरिक केवल सामाजिक इकाई नहीं, अपितु एक नैतिक इकाई भी है। तुलसीदास ने 'धर्म' को केवल कर्मकांड तक सीमित न रखकर जीवन जीने की नैतिक कला के रूप में परिभाषित किया।

संतोष और वैराग्य : तुलसीदास भौतिक लालसाओं को दुःख का मूल मानते हैं।

"जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥" (विनय पत्रिका)

व्यक्ति को धन, पद और मोह के प्रति अति आसक्ति से बचना चाहिए। आदर्श नागरिक संतोषी होता है। संतोष उसे अनैतिक साधनों से धन कमाने से रोकता है और भ्रष्टाचार से दूर रखता है।

सत्य और अहिंसा : तुलसी के साहित्य में सत्य और अहिंसा को सर्वोच्च नैतिक गुण माना गया है। झूठ और छल-कपट सामाजिक व्यवस्था को भंग करते हैं।

"काम क्रोध मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥" (रामचरितमानस, उत्तरकांड)

रामराज्य में ये बुराइयाँ नागरिकों को नहीं छूती थीं। आदर्श नागरिक इन आंतरिक शत्रुओं से लड़ता है और अपने आचरण को सत्यनिष्ठा पर आधारित करता है।

वर्तमान संदर्भ में तुलसीदास की शिक्षाओं की प्रासंगिकता

तुलसीदास के आदर्श आज के आधुनिक समाज में भी पूर्णतः प्रासंगिक हैं।

भ्रष्टाचार निवारण : उनकी कर्तव्यनिष्ठा और त्याग की शिक्षाएँ सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों के कर्मचारियों और नागरिकों को भ्रष्टाचार मुक्त आचरण के लिए प्रेरित कर सकती हैं।

सामाजिक सद्भाव : उनका समन्वयवाद और जाति-पाति के भेदभाव को नकारने, वर्तमान समाज में सांप्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में सहायक है।

नेतृत्व क्षमता : राम के आदर्श नेतृत्व के गुण (जिम्मेदारी, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, समर्पण) आज के नेताओं और अधिकारियों के लिए अनुकरणीय हैं।

तुलसी का साहित्य एक ऐसा दर्पण है जिसमें हम अपने दोषों को देखकर उन्हें सुधार सकते हैं। उनका आदर्श नागरिक वह है जो लोक-कल्याण को ही अपना सर्वोपरि कर्तव्य मानता है।

निष्कर्ष

गोस्वामी तुलसीदास का साहित्य एक विराट जीवन-दर्शन है, जिसका मूल उद्देश्य व्यक्ति को सामाजिक विघटनकारी शक्तियों से बचाकर, नैतिक बल से युक्त करना है। उनके पात्रों के माध्यम से स्थापित आदर्श पुत्र, भाई, पति, सेवक, और राजा का धर्म-समग्रता में एक 'आदर्श नागरिक' की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

आदर्श नागरिक वह है जो मर्यादा, त्याग, विनय और समन्वय जैसे गुणों से युक्त हो, जो स्वार्थ से ऊपर उठकर परोपकार को अपना धर्म माने और जो एक न्यायपूर्ण, सत्यनिष्ठ, तथा भयमुक्त समाज (रामराज्य) की स्थापना में सक्रिय सहयोग दे। तुलसीदास का साहित्य सदियों से भारतीय संस्कृति का प्राण बना हुआ है और वह तब तक प्रासंगिक रहेगा जब तक समाज को नैतिक मार्गदर्शन और आदर्श जीवन मूल्यों की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्रीमद्गोस्वामी, तुलसीदास (2009), कवितावली. गोरखपुर : गीतप्रेस.
2. गोस्वामी, तुलसीदास. (2010), दोहावली. गोरखपुर : गीतप्रेस.
3. सूद, डॉ. रमा. (1980), तुलसी. संदर्भ मीमांसा. कानपुर : आराधना ब्रदर्स.
4. प्रधान, डॉ. साधना. रामचरितमानस में जीवन मूल्य. जयपुर : क्लासिक पब्लिकेशन.
5. राय, डॉ. व्यासमुनि. (1981), भक्तिकालीन काव्य-नीतिपरक मान्यताएं. इलाहाबाद : राजीव प्रकाशन.
6. सिंह, प्रो. योगेंद्रप्रताप. (2009), विनयपत्रिका. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
7. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल. (1973), हिन्दी साहित्य का इतिहास. नोएडा : मयूर पेपर बेक्स.
8. शुक्ल, आचार्य. रामचन्द्र. (2004), गोस्वामी तुलसीदास. जयपुर : अनुप्रकाशन.
9. प्रसाद, डॉ. जयकिशन. (2018), हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर.
10. साहित्य परिचय. (1982), नैतिक शिक्षा विशेषांक. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Awakening to Selfhood: A Study of Shashi Deshpande's That Long Silence

Dr. Pritam Singh
Asst. Professor of English
Seth NMT Govt. Girls College, Jhunjhunu (Rajasthan)
Email: dudee.guru@gmail.com
Mobile: 9413566392, 8949071080

Abstract

Following the feminist or women-centred approach, which enables writers to speak from the point of view of feminine consciousness, there has been a significant advancement in the field of Indian women's writing in English. Numerous Indian female authors have dealt with various psychological facets of women-related issues that have been suppressed for a long time, all while addressing female subjectivity as a means of constructing identity. Women writers have always differed from their male counterparts in expressing and treating their themes. In the realm of Indian English literature, authors like Nayantara Sahgal, Geetha Hariharan, Kiran Desai, Manju Kapur, Bharathi Mukherjee, Kamla Markandaya, Anita Desai, and others have made a significant impact. Of the different colors and shades of women novelists, Shashi Deshpande is one of the many voices of modern Indian English fiction. She is a dominant literary figure in contemporary Indian women writers in English, who has given a thought-provoking deliberation of the struggle of women for recognition as well as the establishment of their self-identity.

Keywords: Identity, Gender, Female, Psychological, Existence, Sensibility.

How are we fallen! Fallen by mistaken rules,
And education more than nature's fools;
Debarred from all improvements of the mind,
And to be dull, expected and designed. (Woolf, P. 58)

These are the lines by Lady Wenchilsea, an obscure poet, discovered and mentioned by Virginia Woolf in her classic, *A Room of One's Own*. These lines are alluded to here because they speak to women's plight in every period and place. Moreover, these lines reveal the status of all women in social and literary phenomena, irrespective of the barriers of place and time. Really, women who constitute nearly half of this world have 'fallen' unquestionably; women who have been born with no less competent faculties of head and mind, and can equal their male counterparts in any front of life, have been lowered to such a level where being a woman and being a human being seem

to dismiss each other.

Women characters in the Indian novels now reflect the shift in the sensibility of the writer as well as the reader. She is no longer the paragon of virtue and chastity to be extolled by poets, priests and philosophers. She is the symbol of sensibility itself of nature arraigned versus the forces abroad actively denaturing humanity. Shashi Deshpande has her own way of presenting the situations and characters in her novels. The theme of her novels, if stated in general terms, is the condition of women vis-à-vis men. She believes that women very often suffer due to male chauvinism and their own defeatism. Her approach to women's problems, as depicted in her novels, is quite distinct. It is possible to differentiate her approach from that of her contemporaries, who either protest against the existing norms of society or remain indifferent to the social system responsible for the oppression of women.

The title of this novel, *That Long Silence, itself* suggests that women do not raise their voice against suppression. Her father named his daughter Jaya (the protagonist), meaning 'Victory'. He instilled a sense of superiority in his daughter. Once, he pulled out his daughter from the circle of her friends, saying that those girls "asked for nothing more than the destiny of being wives and mothers". Later, Jaya blamed her father for her habit of keeping herself aloof, for her suffering due to being unsociable. Jaya was so named by her father because it meant *Victory*, but victory never came to her in life. Jaya also did not get true love from her mother. Jaya's mother was indifferent to both Jaya and her father and showed her utmost concern for her youngest son, Ravi. Jaya's mother didn't set the example of a good wife or a good mother before Jaya, who also found herself a failure not only as a wife but also as a mother. Krishna Rathore rightly observes in her article:

> The tragedies of women often follow from their own characters because they themselves are responsible for giving momentum to patriarchal cultures by giving their agreement and consent. The paths on which women move are confused paths that pull them in different directions. (Rathore, P. 51)

Jaya, for instance, felt at one stage, when she flipped the pages of her diaries, she found that there was the wife of Mohan and the mother of Rahul and Rati all over them, but Jaya herself was nowhere. The woman sinks her personality for the sake of her husband and children, yet she remains subordinate to them. In this novel, Deshpande has more forcefully brought out the quest of Jaya for her own self, her real self, which is as bewildering as becoming aware of one's own looks because "ten different mirrors show you ten different faces." (That Long Silence, P.1) Like all other women, Jaya had perhaps no right to take her own decisions. She had to wait for one or another person to chart out her course of life. She was exhorted to:

> Wait till you get married. Wait until your husband comes. Wait until you go to your in-laws' home. Wait until you have kids. (That, P. 30)

She was in a way, to wait and bear and do nothing on her own. Her Vanitamami had advised her not to revolt even if the husband had a few mistresses. It was too much to expect of a wife, but the reality of life had inured them to it.

The female characters in Deshpande's novels are basically Indian women; when they try to assert their individuality, emancipating from the age-old patriarchal pattern of thought, they exhibit their unique way, which is sharply different from the Western feminist movement. Deshpande had

laid stress on the mixed cultural value systems prevalent in India, and thus, indiscriminate application of Western models of feminism will not do justice to her work. As Vrind Nabar aptly comments:

> The vastly different scenario in India encompasses a contradiction of a kind undreamed of in the mainstream (Western) feminist philosophy. (Nabar, P. 26)

Through the process of Jaya's self-realisation and her memories, all the characters of real life that she had earlier avoided begin to appear, and Deshpande utilises the opportunity of introducing real women encountering real problems of life. Jaya's self-analysis and self-recognition help her to emerge from her cosy corner that she had long preferred to reality. As she reflects:

> Self-revelation is a cruel process. The real picture, the real 'you' never emerges; looking for it is as bewildering as trying to know how. You really look. Ten different mirrors show you ten different faces. (That, P.1)

It is a women-centric novel, obviously, Kusum, Jaya, Mukta, Vanitamami, Jaya's Mother, and Grandmother, Jeeja, Nayana, Manda, Nilima, etc. occupy the centre stage. None of these women has any defect of character, and every one of them is the victim of male malevolence. Jeeja, Nayana, and Manda are the domestic servants, discharging essential services. Jaya realised:

> All those happy women with husbands in good jobs, men who didn't drink and beat their wives, those fortunate women whose kitchen selves gleamed with brass and stainless-steel vessels. They were of no use to me. It was Jeeja and her as I needed; it was these women who saved me from the hell of drudgery. Any little freedom I had depended on them. (That, P. 52)

This novel primarily explores the relationship between a husband and wife. Mohan-Jaya's story betrays the truth that a woman is still an appendage to a man. She is yoked with a man, but the direction is always decided by the man. Deshpande has proved her point by referring to the examples of the highly respected mythological figures, like Sita, Savitri, Draupadi and Gandhari. All of them followed their husbands to the jungles. Jaya goes from Churchgate to Dadar in compliance with the wishes of her husband. Jaya and her like would not wish them any different life. All of them are made miserable by their menfolk. Jeeja didn't have a child, so she let her irresponsible husband have a second wife, who died, leaving her children to be brought up by Jeeja. Her step-son, Rajaram, was a drunkard, yet he was married to Nayana. He had given the ultimatum to his wife that he would throw her out if she didn't give birth to a son. Nayana, being aware that she was the sole breadwinner, didn't take the threat seriously.

In their marital relationship, Jaya was obliged to go Mohan's way. She had imagined that after her marriage, she would gradually develop intimacy with her husband, but Mohan adopted the crude approach; he become husband from day one. Jaya was Mohan's wife and Rahul's and Rati's mother, but she was left alone. Mohan spoke daggers to her as he said that it was for her and the children that he had to resort to dishonest means, and absolved himself of the guilt. Rahul, her son, also acted in an irresponsible way, failed to come to her in her hour of distress, and her daughter, Rati, talked to her indifferently; Jaya felt she was alone. She moaned:

> Mohan's wife, Rahul's and Rati's mother, I can crawl into that hole, I had thought, a warm and safe hole; but here I was now prodded out of it by cruel, sharp staves. (That, P.148)

After suffering a lot due to her failure to speak in her own defence, she decided not to remain a silent victim anymore. She got the message from Mohan that all had turned out well and he would come back. Jaya reviewed the whole situation and thought about whether they would go back to their original position, and whether she would give the answer he wanted. It was not acceptable to Jaya anymore because, in that case, the authority would peep into Mohan once again. She would not allow Mohan to become her master. Therefore, she said to herself, "I will have to speak, to listen, to erase the silence between us" (That, P. 192). But she was not to fight for herself alone; she was a crusader for women's emancipation, which was possible only when all women realised how they were treated silently, repressed and suppressed.

Deshpande's *That Long Silence* shows that women have been keeping silent for a long time in spite of being under the dominance of men. Jaya had imagined for herself a life of an independent girl, going with both hands in her pockets. The title suggests that women have been suffering in silence. They do not even tell of their physical ailments. Nobody, not even the husbands and other close relatives care to know about their maladies. Sometimes they conceal their ailments, and sometimes they are neglected by all in spite of having the knowledge of their illness. Mohan's mother died without getting any treatment, and so did her daughter Vimla. Kusum was hated and ignored by all, including her husband and children. All these women suffered silently and died silently.

In the novel, we get a fair description of women who are forced to submerge themselves into male-created patterns of behaviour and living where women are supposed to be calm, tolerant and submissive even when they do not fault their part. Ideologically, after marriage, women are supposed to follow the pattern of life, as Jaya says:

> Stay at home, look after your babies, keep out the rest of the world, you are safe. (That, P.17)

The writings of Jaya dealing with the problems of women hurt Mohan deeply because Mohan saw his own image being exposed in that 'Man', a character in Jaya's writing who could reach out to his wife only through her body. The writings of Jaya were a step in the direction of breaking 'That Long Silence', but Mohan never let jaya to go further in the direction which led women to the awareness of their self-image and self-worth. Jaya fails as a writer because she doesn't arm the woman within her with the weapon of anger, which, according to Mohan, makes a woman unwomanly, as she herself says:

> A woman can never be angry; she can only be neurotic, hysterical, frustrated. There is no room for despair, either. There is only order and routine today. I have to change the sheets tomorrow, scrub the bathrooms the day after, and clean the fridge (That, P. 147-148).

Jaya was lost in the different features granted to her by others, but these different features never led her to one distinct self, that is, her own individual self. The courage that she never found while living with Mohan comes to her most forcefully when Mohan leaves her without any information about his coming back. Jaya is deserting the traditional submissive role of a housewife and adopting the new role of an advocate for women's causes. She has liberated herself from the shackles of silence and surrender, and hopefully advancing towards the direction of all women's liberation, as Dr S.P. Swami observes:

> Disgruntled with Mohan and at the consigning social milieu. Jaya wants to flee from the cribbed confines of an incarcerated domestic life in order to find a new identity for herself, a new mooring for her fugitive self. (Feminist English Literature, P. 69)

Through a long interior monologue that blurs the distinction between past and present, Jaya projects herself into four different roles. All these roles refer to the Indian classics and myths: The role of Sita (The Ramayana), of Draupadi (The Mahabharata), of Gandhari (The Mahabharata), and of Maitreyee (The Upanishads). It appears that Deshpande is deeply shocked by women's tendency to suffer silently and die silently. Their silent sacrifice remains unnoticed. Therefore, she says with great anger, "Their unconscious, unmeaning heroism, born out of the myth of self-sacrificing martyred woman, did not arouse either pity or admiration." (The Literary Criterion, P. 38)

References

Deshpande, Shashi. *That Long Silence.* London: Viraga Press, 1989.

Deshpande, Shashi. *The Dilemma of a Woman Writer. The Literacy Criterion* Vol. 20, No. 4,1985.

Nabar, Vrinda. *'Caste as Women'*. India: Penguin, 1995.

Rathore, Krishna. 'Inching Toward Freedom. Women in Victorian England' in Jasbir Jain edited *Women's Writing.* Jaipur: Rawat Publication, 1999.

Swami, Dr S.P. 'Articulation of the Feminine Voice: Jaya in Shashi Deshpande's That Long Silence' in *Feminist English Literature.* New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors, 2002.

Woolf, Virginia, *A Room of One's Own.* London: Penguin, 1977.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Philosophical Foundations of Indian Ancient Education

***Dr. Tanuja Melkani *Dr.Savita Bhandari**
*Assistant Professor, Education Department, (B. Ed.), M.B.G.P.G. College, Haldwani-Nainital
*Assistant Professor, Education Department, (B. Ed.), M.B.G.P.G. College, Haldwani-Nainital
Author's email id - tanujamelkani10@gmail.com

Abstract:

Indian ancient education is a vital component of the nation's cultural legacy. It is a reflection of the complex grid of ethical principles, philosophical traditions, and social mores that influenced the academic and spiritual aspirations of ancient India. The study of education in ancient India provides insightful information about historical society structures, pedagogical practices, and processes for knowledge transfer. Investigating the philosophical foundations of ancient Indian education is extremely important because it reveals the philosophical and spiritual keystones of one of the oldest educational systems in the world. In addition to enhancing understanding of the past, this research article offers an enduring source of knowledge for conversations about holistic education and the integration of philosophical ideas into modern pedagogies. Beyond historical curiosity, this research article serves as inspiration for shaping educational philosophies resonant with the human spirit, raising intellectual growth, and nurturing ethical and spiritual development in the pursuit of knowledge.

Keywords: Indian Ancient Education, Philosophical Foundations, Education

Education is manifestation of perfection inherent in human.

—Swami Vivekananda

Ancient Indian Civilization

With a history spanning thousands of years, ancient Indian civilization is among the oldest and most culturally diverse nations in the world. Over a large landmass that stretched from the Indian Ocean in the south to the Himalayan peaks in the north, and from the lush woods of the east to the deserts of the west, ancient India was the cradle of many different cultures, religions, and intellectual endeavours.

1. **Indus Valley Civilization (c. 3300–1300 BCE):** The roots of ancient Indian civilization can be traced back to the Indus Valley Civilization, one of the world's earliest urban cultures. Flourishing along the banks of the Indus River and its tributaries, this civilization boasted advanced urban planning, intricate drainage systems, and a system of writing that is yet to be fully deciphered. Cities such as Mohenjo-Daro and Harappa were centers of trade and artistic expression.

2. **Vedic Period (c. 1500–500 BCE):** The Vedic period marked the composition of the sacred texts known as the Vedas, which laid the foundation for Hinduism. Rigveda, Samaveda, Yajurveda, and Atharvaveda emerged during this time, shaping religious rituals, hymns, and philosophical thought. The society was organized into varnas (social classes) and laid the groundwork for later Hindu social and religious practices.

3. **Maurya and Gupta Empires (c. 322 BCE – 550 CE):** The Maurya Empire, under the rule of Chandragupta Maurya and later Ashoka, expanded across a significant portion of the Indian subcontinent. Ashoka, known for his conversion to Buddhism and advocacy of non-violence, left a lasting impact on Indian history. The Gupta Empire, following the Mauryas, witnessed advancements in science, mathematics, and the flourishing of classical arts.

4. **Golden Age of Indian Culture (c. 4th to 6th centuries CE):** The period between the 4th and 6th centuries CE is often referred to as the Golden Age of Indian Culture. This era saw remarkable achievements in literature, art, architecture, and philosophy. Notable contributions include the works of Kalidasa, the development of the classical dance form Bharatanatyam, and the construction of iconic temples such as the Ajanta and Ellora Caves.

5. **Spread of Buddhism and Jainism:** Ancient India played a pivotal role in the spread of Buddhism and Jainism. Founded by Siddhartha Gautama (Buddha) and Mahavira, respectively, these religions emphasized non-violence, compassion, and the pursuit ofspiritual enlightenment. The teachings of Buddha, in particular, had a profound impact on the cultural and philosophical landscape of the region.

6. **Islamic Invasions and the Delhi Sultanate (c. 12th to 16th centuries):** The medieval period witnessed the arrival of Islamic influences through invasions led by various rulers. The Delhi Sultanate emerged as a significant political entity, blending Islamic traditions with the existing Indian cultural fabric. Notable structures like the Qutub Minar and the Alai Darwaza were built during this period.

7. **Mughal Empire (c. 16th to 19th centuries):** The Mughal Empire, founded by Babur, reached its zenith under Akbar, Jahangir, Shah Jahan, and Aurangzeb. This era is characterized by architectural marvels such as the Taj Mahal, administrative reforms, and a synthesis of Persian, Indian, and Central Asian cultures. Art, literature, and trade flourished, creating a vibrant cultural milieu.

Philosophical Foundations of Ancient Indian Education

Ancient Indian education's conceptual foundations were firmly rooted in a holistic vision that aimed to balance intellectual, ethical, and spiritual aspects. Influenced by Vedic wisdom, the Gurukula system imparted moral principles such as duty and righteousness, while philosophical issues were explored in texts and dialogues, enriching the intellectual landscape. Knowing the philosophical foundations of ancient Indian education is extremely important since it sheds light on the intellectual, cultural, and historical influences that have molded the region's educational landscape. This understanding allows for a greater appreciation of the following aspects:

- **Vedic Wisdom and the Gurukula System:** The Vedas, the ancient sacred texts of Hinduism, played a pivotal role in shaping the philosophical underpinnings of Indian education. The Gurukula system, an integral part of Vedic education, emphasized a close teacher-student relationship. Knowledge transmission extended beyond mere academics, encompassing ethical, moral, and spiritual

dimensions. The holistic development of an individual was considered essential, promoting a balanced and harmonious life.

- **Dharma and Social Order:** The concept of 'Dharma,' or righteous living, played a central role in ancient Indian education. Education was not just a means of acquiring knowledge but also a pathway to understand and fulfill one's duties and responsibilities in society. The hierarchical social order, as reflected in the caste system, was intricately linked to educational pursuits, with each varna (class) having specific educational responsibilities.

- **Jnana, Karma, and Bhakti:** Ancient Indian philosophy embraced the trinity of knowledge (Jnana), action (Karma), and devotion (Bhakti). Education was seen as a tool to acquire both worldly knowledge and spiritual wisdom. The pursuit of knowledge was not divorced from ethical conduct and service to humanity. Theintegration of these three paths shaped a well-rounded educational philosophy that aimed at the holistic development of an individual.

- **The Role of Upanishads and Philosophical Dialogues:** The Upanishads, philosophical texts that explored the nature of reality and self, influenced educational thought profoundly. Dialogues between teachers and students, as exemplified in texts like the Upanishads, encouraged critical thinking, self-reflection, and the pursuit of higher truths. This intellectual tradition fostered an environment where questioning and exploration were valued as essential components of the learning process.

- **Inclusivity and Diversity:** Ancient Indian education was not confined to any particular religious or philosophical school. Various philosophical traditions, such as Samkhya, Yoga, Nyaya, Vaisheshika, Mimamsa, and Vedanta, coexisted, each offering unique perspectives on the nature of existence and the purpose of life. This diversity contributed to a vibrant and inclusive educational environment.

Philosophy Guiding Ancient Indian Education

Ancient Indian education went beyond the mere acquisition of factual knowledge, placing a profound emphasis on holistic development. This approach sought to nurture individuals in physical, intellectual, emotional, and spiritual dimensions. The goal was to cultivate well-rounded individuals capable of navigating life's complexities with wisdom and balance. The educational philosophy recognized that true learning extended beyond academic prowess, encompassing a comprehensive understanding of self and the world.

At the core of ancient Indian educational philosophy lay the concept of 'Dharma' – the righteous way of living. Education was not merely a process of intellectual enrichment; it served as a means to comprehend and fulfill one's duties and responsibilities in society. The emphasis on moral and ethical conduct aimed to produce individuals who excelled not only intellectually but also contributed positively to their communities. The philosophy underscored the transformative power of education in shaping individuals into responsible and ethical members of society.

The Gurukula system, embodying the philosophy of a close teacher-student relationship, was a cornerstone of ancient Indian education. This system extended beyond the confines of the classroom, with teachers guiding students in all aspects of life. The transmission of knowledge was a dynamic, two-way interaction, involving a deep understanding of the individual student's needs, strengths, and weaknesses. This personalized approach emphasized the importance of mentorship,

fostering a connection between teachers and students that extended far beyond the realm of academia. Ancient Indian education, through its emphasis on holistic development, ethical living, and personalized guidance, laid the foundation for a transformative and enduring educational philosophy.

The Impact of Philosophical Principles on Educational Practices

Philosophical ideas have a significant impact on educational practices, influencing the goals and fundamentals of the educational process. The guiding ideas that form the essential elements of educational practices are philosophical in nature. These principles offer the philosophical basis upon which the entire educational experience is based, encompassing everything from the primary objectives and curriculum design to the teaching strategies, assessment procedures, and general educational environment. Several significant impacts become apparent as following:

- **Purpose and Goals of Education:** Educational objectives and their overall aim are defined by philosophical ideas. For example, if an educational system is founded on the theory of holistic development, the objectives go beyond scholastic success and include the development of the physical, emotional, and spiritual aspects of life. The larger framework that guides the formulation of educational objectives is established by the philosophical foundation.

- **Curriculum Design and Content:** Philosophical ideas have an impact on the curriculum's structure and content. The Dharma school of ancient Indian education placed a strong emphasis on moral and ethical behaviour, which may have contributed to the inclusion of ethical instruction and value-based curricula. The guiding philosophical ideas impact the selection of subjects, their depth, and the interdisciplinary character of education.

- **Teaching Methods and Pedagogy:** Philosophical foundations have a major influence on the selection of instructional strategies and pedagogical approaches. For example, if the educational philosophy stresses a tight relationship between the teacher and the student, then interactive and personalized techniques may be given priority in the teaching methods. The selection of instructional tactics that correspond with the intended educational results is guided by philosophical ideas.

- **Assessment and Evaluation:** The standards and procedures utilized for measuring and analyzing student learning are influenced by philosophical ideas. Assessments may incorporate character, ethical, and practical life skills evaluations in addition to academic achievements if the educational system emphasizes holistic development. The larger educational objectives based on philosophical ideas are reflected in the assessment procedures.š+ **Teacher Training and Professional Development:** The philosophy that guides education has an impact on the professional development and training of teachers. Teacher training programs may place a higher priority on mentoring and guidance if the philosophy stresses the Guru-Shishya Parampara, which raises a thorough awareness of each student's unique needs. Enhancing teaching effectiveness through professional development is in line with the philosophical ideas.

- **School Culture and Environment:** Educational institutions' cultures and environments are greatly influenced by philosophical ideas. School environments that celebrate variety and a sense of belonging are likely to be created if the philosophy promotes inclusivity and diversity. The fundamental ideals and concepts directing the educational process are reflected in the school culture.

- **Lifelong Learning and Personal Development:** Philosophical ideas have an impact on ideas

about personal growth and lifelong learning even outside of the context of formal education. A culture of lifelong learning is raised by ideologies that emphasize ongoing self-realization and inquiry, which inspire people to pursue knowledge and personal development throughout their lives.

Foundations of Ancient Indian Education: Past Wisdom, Present Relevance

Examining the intellectual foundations of traditional Indian schooling reveals a strong bond between people and their cultural background. People can develop a sense of pride and respect for the rich tapestry of thinking that has been passed down through the years by learning about the intellectual traditions that helped to define the identity of the Indian subcontinent. This investigation takes the audience on a trip to the very foundations of identity, promoting a deeper comprehension of the principles, ideologies, and values that have been essential in establishing the region's cultural legacy.

Beyond only acquiring academic knowledge, ancient Indian education is rooted in a comprehensive approach. This school of thought places a strong emphasis on how the educational system should incorporate spiritual, moral, and intellectual components. This comprehensive approach provides educators with important insights into raising well-rounded people. Comprehending the interdependence of these aspects offers a structure for raising a harmonious and well-rounded learning environment that surpasses the limitations of conventional academic success.

The educational philosophies of ancient India have lasting relevance because they are in line with contemporary methods. Ideas that offer eternal direction include the integration of knowledge and ethics, the importance of the teacher-student connection, and the overall development of humans. By following these guidelines, modern educators can be motivatedto design classrooms that value both personal development and academic achievement, mirroring the knowledge innate in the core of traditional Indian education.

Vedas and Upanishads: Philosophical Schools of Thought

Ancient Indian philosophy's founding books, the Vedas and Upanishads, set the foundation for significant schools of thought that have influenced the subcontinent's intellectual climate for millennia.

Vedas: The Vedas, composed between 1500 and 500 BCE, are the oldest sacred texts of Hinduism and form the basis of Vedic philosophy. The Rigveda, Samaveda, Yajurveda, and Atharvaveda constitute this ancient corpus of knowledge. The philosophical ideas within the Vedas are embedded in hymns, rituals, and prayers. The primary focus of Vedic philosophy is on the relationship between humans and the divine forces governing the universe. Ritualistic practices, sacrificial ceremonies, and hymns dedicated to various deities characterize Vedic thought. The emphasis is on understanding the cosmic order and maintaining harmony through proper rituals and ethical living.

Upanishads: The Upanishads, dating from around 800 to 200 BCE, represent a shift in philosophical thought from the ritualistic and ceremonial focus of the Vedas to a more introspective and speculative approach. These texts explore profound metaphysical and spiritual questions, delving into the nature of reality, the self (Atman), and the ultimate reality (Brahman). The Upanishads advocate for the realization of a transcendent truth beyond the material world through meditation, self-inquiry, and contemplation. Key concepts such as karma (the law of cause and effect), samsara (the cycle of birth and rebirth), and moksha (liberation from the cycle of reincarnation) find their roots in the

Upanishadic philosophy. The teachings of the Upanishads are often encapsulated in dialogues between sages and seekers, contributing to the rich tapestry of Indian philosophical thought.

Together, the Vedas and Upanishads form a continuum of philosophical exploration in ancient India. While the Vedas lay the groundwork for ritualistic and ethical living, the Upanishads mark a transformative shift towards metaphysical inquiry and spiritual realization. These foundational texts have influenced diverse philosophical schools and continue to be a source of inspiration for seekers of wisdom and truth.

Relationship between mind-body balance and learning

The deep connection between mental and physical well-being is shown by the dynamic interplay between mind-body balance and learning. As research demonstrates the significantinfluence of a harmonious mind-body balance on cognitive functions, emotional well-being, and general academic success, this connection is becoming more widely acknowledged in educational settings.

- **Cognitive Performance:** Achieving a balanced mind and body enhances focus, attention, and memory retention, positively impacting learning. Mindfulness, meditation, and physical exercise improve concentration, facilitating effective absorption of information. Additionally, regular physical activity and stress reduction techniques contribute to improved memory functions, aiding students in recalling and applying learned information throughout their educational journey.

- **Emotional Well-being:** A balanced mind-body connection is essential for stress reduction, as chronic stress impairs cognitive functions and negatively affects learning. Techniques such as deep breathing, yoga, and mindfulness effectively manage stress, creating an emotionally optimal environment for learning. This balance also enhances emotional resilience, empowering learners to navigate challenges and setbacks, raising a positive learning experience and a mind-set open to new concepts and challenges.

- **Physical Activity and Learning:** Regular physical activity is associated with enhanced brain function, promoting the growth of neurons and supporting cognitive processes like problem-solving and critical thinking. Integrating movement into the learning environment has the potential to improve overall academic performance. Exercise also triggers the release of endorphins, neurotransmitters that regulate mood, fostering a positive emotional state conducive to learning. Additionally, it can help alleviate symptoms of anxiety and depression that may otherwise hinder the learning process.

- **Mind-Body Practices in Education:** Integrating mindfulness and meditation practices in education fosters a balanced mind-body connection by enhancing self-awareness, reducing stress, and creating a favourable mental state for learning. Schools are increasingly adopting mindfulness programs to support students' well-being. Educational systems are also acknowledging the connection between physical activity and cognitive function, emphasizing regular physical education. Engagement in sports and exercise not only contributes to overall health but also positively influences academic performance.

- **Holistic Learning Approach:** Holistic learning approaches recognize the interconnection between the mind and body. Integrating subjects that encourage physical activity, artistic expression, and mindfulness into the curriculum fosters a well-rounded educational experience, nurturing both mental and physical well-being. Educators also contribute to promoting healthy lifestyle choices among

students by emphasizing proper nutrition, sufficient sleep, and overall well-being, thus supporting a mind-body balance that enhances optimal learning outcomes.

Gurukula System

The Gurukula system is an ancient Indian educational framework with strong Hindu roots that goes back thousands of years. In Sanskrit, "Gurukula" means "teacher's family" or "teacher's house". This distinctive educational approach is distinguished by a residential setting in which students reside in an ashram, or hermitage, or in a remote setting with their guru, or teacher. In addition to academic education, the Gurukula system promotes a holistic and individualized approach to learning that includes instruction in spirituality, morality, and practical application.

Guru-Disciple Relationship and its Philosophical Foundations

The Guru-disciple relationship is a profound and sacred connection in various philosophical and spiritual traditions, particularly in the Indian cultural context. Rooted in ancient teachings, this relationship is characterized by a deep bond between a spiritual teacher (Guru) and a devoted student (disciple). The philosophical foundations of the Guru-disciple relationship include several key elements:

- **Transmission of Knowledge:** The Guru is regarded as the origin of philosophical and spiritual knowledge. The relationship entails the sharing of knowledge, which is frequently done through scripture, oral traditions, and hands-on instruction.
- **Spiritual Guidance:** The disciple is led by the Guru, who acts as a spiritual mentor, along the path of self-realization, self-discovery, and spiritual enlightenment. From a philosophical standpoint, the Guru offers understanding of the essence of life, the self, and the ultimate truth.
- **Personal Transformation:** The relationship between a guru and his or her pupil is viewed as a transforming one in which the disciple experiences inner growth and gains the ability to conquer ignorance and ego. This metamorphosis is consistent philosophically with the idea of self-realization and discovering one's actual essence.
- **Trust and Surrender:** Two essential components of the Guru-disciple interaction are trust and submission. The disciple puts their trust in the guidance of the Guru and submits to their knowledge. From a philosophical standpoint, this represents the individual ego's submission to spiritual principles and higher wisdom.
- **Karma and Dharma:** Sometimes, the relationship between a Guru and his disciples is viewed through the prisms of dharma (obligation) and karma (activity). As part of their obligation, the Guru gives knowledge, while the disciple diligently studies and practices in order to fulfil their own obligation. This is consistent from a philosophical standpoint with the ideas of doing what is right and seeking knowledge for the benefit of society.
- **Inner Experience and Realization:** Many people believe that a realized soul, the Guru leads the disciple not just toward academic comprehension but also toward firsthand experiences of spiritual truths. This emphasizes the value of firsthand experience over theory knowledge from a philosophical standpoint.**Applicability of Ancient Indian Philosophies in Modern Education**

Deeply rooted in the Vedas, Upanishads, and other sacred scriptures, ancient Indian

philosophies provide insightful perspectives that are still very relevant in today's classroom. The Gurukula system's emphasis on holistic education is in line with current demands for a more well-rounded approach to education. Including spiritual and ethical teachings in addition to academic information can help people become more well-rounded. The philosophies of ancient India promote the development of qualities like moral integrity, compassion, and mindfulness. This creates a good learning environment that goes beyond the simple acquisition of knowledge to teach values that are necessary for responsible and ethical citizenship.

The particular needs of pupils in today's educational environment can be met by incorporating the ancient Indian philosophies' emphasis on personalized learning and awareness of varied learning styles. In a society where mentoring and personalizing are becoming more and more important, the Guru-disciple relationship, which is founded on mutual trust and respect, offers a paradigm for mentoring and guidance. Through the integration of ancient Indian philosophical principles into contemporary educational frameworks, educational institutions can raise a more compassionate, inclusive, and intellectually stimulating atmosphere that not only equips students for success in the classroom but also for a meaningful and purposeful life. Teachers and political leaders can adopt a more sophisticated and informed approach to education by becoming more analytically aware of the ideas behind various philosophical systems of thought (Karikó, 2022).

Potential limitations and criticisms of Indian Ancient Education

While ancient Indian education systems, particularly the Gurukula system, have been revered for their holistic approach and emphasis on moral and spiritual development, they are not without potential limitations and criticisms.

- **Caste-Based Discrimination:** One significant criticism revolves around the caste-based nature of the ancient education system. Gurukulas were often exclusive, and access to education was sometimes determined by one's caste, leading to the marginalization of certain social groups.
- **Gender Inequality:** Another limitation is the historical gender bias prevalent in ancient education systems. Women were often excluded from formal education, and the Gurukula system primarily catered to male students. This exclusion perpetuated societal norms that limited the educational opportunities available to women.
- **Lack of Formal Curriculum:** The Gurukula system's reliance on oral traditions and personalized learning, while fostering creativity and adaptability, could be criticized for lacking a standardized curriculum. Critics argue that a more structured and formalized curriculum could have ensured a more consistent quality of education across different Gurukulas.
- **Limited Access to Education:** Gurukulas were often located in remote areas, and access to education was geographically restricted. This limited the reach of educational opportunities, especially for those living in distant regions, contributing to unequal access to knowledge.
- **Dependency on Socio-Economic Status:** The ability to access education in ancient India was also tied to one's socio-economic status. Students from affluent families had better opportunities to receive education, while those from economically disadvantaged backgrounds faced challenges in accessing the Gurukula system.
- **Rigidity in Teacher-Student Relationships:** The guru-disciple relationship, while highly revered,

may be criticized for its potential to create a hierarchical and rigid structure. The unquestioning devotion expected from disciples could stifle critical thinking and independent exploration.

- **Overemphasis on Oral Transmission:** The reliance on oral transmission of knowledge in the Gurukula system may be criticized for its potential to lead to information loss and inaccuracies over time. Written documentation was not as prevalent, making the preservation and dissemination of knowledge dependent on the accuracy of oral transmission.
- **Exclusivity of Spiritual Teachings:** The strong emphasis on spiritual and philosophical teachings in ancient Indian education could be seen as exclusive, potentially neglecting the practical skills and vocational training needed for certain professions.

Conclusion: Rooted in the Vedas, Upanishads, and the Gurukula system, the ancient Indian philosophical landscape centers on holistic development, moral integrity, and spiritual growth. The Guru-disciple relationship is highlighted, emphasizing the interconnectedness of knowledge, ethics, and spirituality. Education is viewed not merely as information transfer but as a transformative journey toward self-realization and harmonious living. The principles of personalized learning, inclusivity, and a holistic understanding of human existence resonate across time, offering valuable insights for contemporary educational discourse. Acknowledging the historical limitations and criticisms, this perspective encourages contemporary educational systems to learn from both positive aspects and drawbacks, raising inclusivity, equity, and effectiveness. Policymakers, educators, and researchers are urged to integrate timeless principles like holistic development, personalized learning, and a reverence for wisdom into modern frameworks.

Reference:

Altekar, A.S., Education in Ancient India, (5th edition), 1957, Nand Kishore and Bros. Varanasi.

Chaube, S.P. (2020). Problems Of Indian Education, Shri Vinod Pustak Mandir, India

Ghosal, S. (2012) : The Educational Thoughts of Swami Vivekananda : A Review, University News, 50 (09), Feb. 27 – March 04, 2012, New Delhi

Mukherji, R.K., (1969). Ancient Indian Education. Motilal Banarasi Dass, Delhi.

Karikó, S., 2022. The Mystery of Education. International Dialogues on Education Journal, 9(2), pp.128-146.

Rawat, P.L. History of Indian Education, Agra: Ram Prasad & Sons, 1996.

Websites and URls:

https://content.inflibnet.ac.in https://en.wikipedia.org/wiki/History_of_education_in_the_Indian_subcontinent https://www.google.com/

https://ignca.gov.in/ https://ncert.nic.in/textbook/pdf/heih111.pdf

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Role of moral values in the development of students life

Dr. Manju
Email- 7236manju@gmail.com

Abstract - The research paper presents the importance of moral values, ethics in development of students life. Holistic development of a student is incomplete if the moral values are neglected. Moral values plays an important role in shaping personality of a student. Moral values are behavioral, that helps student to follow the right path like gratitude, honesty, sharing, empathy, cooperation, respect, equality. Moral values are blend closely in all aspect of teaching in curriculum, in school, higher education, culture and in teacher's behaviour. Moral values education is teaching and learning about the ideals that a society thinks is important. The aim for students not only to understand the values but also to reflect them in their behaviour and personality and contribute to society through good citizenship and ethics. Once moral value become everyone's priority in life all the negative aspects in life will automatically decline.

Key Words - Moral values, ethics, development, student life.

Introduction

Moral values include being honest, kind, showing respect to others, having a sense of self control, imbibing other such good qualities. A person possessing such qualities is known as a good moral character. Students are very sensitives and copy their teachers. Moral values are generally loaded with affective thoughts about ideas, object. A student life is focused in learning and exploring the world and a student is yet too small to know right and wrong in an absolute sense.

- Without moral values a students feel that he is better than everyone but he will face reality once he moves out of schools or colleges.
- Because education in its general sense is a form of learning in which knowledge, skills and habits of a group of people are transferred from one generation to next generation through teaching and training. By education, student's moral values can be improved.

Definition of moral values

Moral values and ethics are strongly attached to society, spiritually and culture (united nations educational scientific and cultural organization, 1991).

Moral refers to human behaviour where morality is the practical activity and ethics describes theoretical, systematic and reflection upon human behaviour. (Churchill, 1982)

Values are linked to beliefs and attitudes and guide human behaviour

(Rennie, 2007)

Need of moral values in education

Moral values are crucial in education as they cultivate responsible, ethical and empathetic individuals essential for a well functioning society and personal success.

- Foundation for ethical behaviour - Moral values provide a frame work for students to distinguish between right and wrong , fostering ethical decision making and responsible conduct in all aspect of life.

Promoting social cohension - Moral value encourage inclusivity, respect for diversity and cooperation leading to a more harmonious and just society.

Improved decision making - Moral values help students make sound judgement and choices, leading to better academic performance and personal outcome.

Enhanced interpersonal skills and boosted self confidence and positive outlook.

Developing critical thinking - Moral value is a tool to navigate complex moral dilemmas and think critically about the world around them.

Cultivating responsible citizens - Moral values are essesntial for cultivating responsible citizen who a committed to the well being of their communities and the planet.

A student who goes through his education ethically will be the richer and wiser for it as gains real knowledge. As the moral values are ingrained in his personality, he will gain respect from everyone around him.

Importance of moral values in students life

Character building - Moral value as ethics are the building blocks of a students character. Teaching students about integrity, empathy, compassion contributes to the development of a well rounded and principled individual.

Respect and empathy - Students learn to appreciate diversity and treat everyone with dignity, regardless of difference in background beliefs.

Conflict resolution - Ability to navigate conflicts peacefully is a valueable skill. It contributes to development of a collaborative and cooperative community.

Resilience and perseverance - Students who understand the importance of value like patience, perseverance and resilience are better equipped to face challenges and set back with a positive mindset.

Leadership skills - Leaders who exhibit qualities such as integrity, fairness and a commitment to ethical principles are more likely to gain the trust and respect of their peers. So students can contributes to the development of future leaders with the strong moral compass.

Reward ethical behaviour - Acknowledge and praise student when they act a responsible or ethically positive reinforcement motivate them to adopt these behaviours consistently.

Equality - Equality is an integral part of several moral values such as justice. Treating all individuals equal in terms of right, opportunity and status is essential for eradicating thought of supermacy.

Conclusion - In conclusion, moral values hold immense significance in the lives of students, shaping their character and guiding their action. These values act as the cornerstone for the holistic development, influencing not just academic success but also personal integrity and social responsiblity. As students carry these values into their future endeavors, they contributes to building a society that thrives on trust, understanding and ethical leadership. It establishes the foundation for the future personalities and aids in their world preparation.

References

1. Bullough, R.V.,Jr.(2011). Ethical and moral matterin teaching and teacher education, teaching and teacher education, 27(1),21.
2. Sanjay Roy (2013) Paragraph on moral values : its meaning and benefits .
3. Thornberg, R. (2009). The moral construction of the good pupil embedded in school rules .Education, citizenship and social justices,4,245-61.
4. Dutt (1998) Moral values in child developments ,New Delhi,Anmol publishers.
5. Kumar ,Pradeep. Role of value education in contemporary society, 2009.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

A STUDY ON VARIOUS PERFORMANCE BETWEEN MALE AND FEMALE VOLLEYBALL PLAYERS

Swapnil Suresh Deshmukh
(Sports Director)
DES Pune University, Pune

ABSTRACT

This study investigates the performance differences between male and female volleyball players, focusing on various aspects such as physical attributes, technical skills, tactical awareness, and psychological factors. The research aims to analyze the strengths and weaknesses of both male and female players, considering how these factors contribute to their overall performance in volleyball matches. Data collection includes statistical analysis of player performances, observation of gameplay, and surveys to assess perceptions and attitudes towards training and competition. The findings of this study provide valuable insights into gender-specific strategies for optimizing performance and enhancing the development of volleyball players, contributing to the broader understanding of gender dynamics in sports performance.

Keywords: study, various performances, male and female, volleyball players

INTRODUCTION

Volleyball is a highly dynamic sport that demands a combination of physical prowess, strategic thinking, and teamwork. Over the years, it has evolved into a popular competitive activity globally, attracting players of diverse backgrounds, skills, and genders. In the realm of competitive volleyball, there has been a growing interest in understanding and analyzing the performance differences between male and female players. This study delves into this intriguing area, aiming to shed light on the nuanced aspects of performance that may vary between male and female volleyball athletes.

The performance metrics in volleyball encompass a wide range of elements, including but not limited to agility, speed, strength, coordination, tactical decision-making, and mental resilience. While the fundamental principles of the game remain consistent across genders, there exists a curiosity and need to explore whether there are notable differences in how male and female players execute these elements on the court.

Understanding these differences goes beyond mere statistical analysis; it offers insights into the physiological, psychological, and sociocultural factors that may influence performance outcomes. Such insights not only benefit coaches, trainers, and players in refining their training programs and

strategies but also contribute to the broader discourse on gender equity and inclusivity in sports.

This research endeavor seeks to contribute to the existing body of knowledge in sports science and gender studies by providing a comprehensive analysis of the performance disparities, if any, between male and female volleyball players. By examining key performance indicators and contextualizing them within the broader landscape of volleyball athleticism, this study aims to offer valuable insights that can inform training methodologies, talent development programs, and policy initiatives aimed at fostering equality and excellence in volleyball across genders.

VOLLEYBALL PLAYERS

Volleyball is an enthralling sport that requires a special combination of several skills, including agility, coordination, and collaboration. Volleyball players are the driving force behind this exhilarating game. Their talents and passion carry the sport to new heights, and they are the heart of this game. In the following paragraphs, we will dig into the varied world of volleyball players, examining their training routines, vital characteristics, strategic responsibilities, and the significant influence they have on the sport. The athletes who play volleyball are the essence of athleticism. They exhibit a remarkable combination of physical strength and mental quickness when they are competing on the court. Their training schedule is very strenuous, including of strength and conditioning workouts, skill-specific drills, and strategic manoeuvres that are all targeted at sharpening their talents. In order to have success in the sport, it is essential to possess skills such as agility, coordination, communication, mental fortitude, and the ability to work together with others. In volleyball, players take on a variety of positions, including as setters, hitters, liberos, and blocks. Each of these jobs requires a unique combination of talents and a keen understanding of strategy. In addition to the contributions they make on an individual level, volleyball players have a significant influence on the popularity and expansion of the sport. They function as ambassadors who motivate and connect with audiences all over the globe. Their unwavering devotion, sportsmanship, and unwavering passion to perfection continue to influence the dynamic landscape of volleyball, both on and off the court.

Volleyball players put themselves through rigorous mental and physical preparation in order to achieve success in their sport. To enhancing their strength, speed, and endurance, their workout programmes often include of activities like as weightlifting, plyometrics, agility drills, and cardiovascular workouts. In addition, players devote endless hours to the mastery of basic skills including as serving, passing, setting, hitting, and blocking. They refine their methods via repetition and accuracy in order to achieve the best possible results.

Volleyball players exhibit exceptional coordination and spatial awareness when competing on the court. They are able to integrate their motions in such a way that allows them to execute moves with pinpoint accuracy. When it comes to responding to fast-paced rallies and adjusting to changing game scenarios on the fly, having quick reflexes and the ability to make decisions are very necessary.

In order to improve their awareness of the tendencies of their opponents and to formulate game plans, volleyball players participate in activities such as film analysis, team meetings, and strategic conversations while they are not competing on the court. Players are able to keep their calm and the ability to concentrate under high-pressure situations by mentally preparing themselves, which includes skills such as visualisation and stress management measures.

Contests provide volleyball players with the opportunity to demonstrate their skills on a worldwide

scale, while also representing their country with a sense of pride and enthusiasm. As a result of their performances, spectators and aspiring athletes are inspired, which in turn fuels the development and popularity of the sport all over the globe.

PHYSICAL FITNESS QUALITIES OF PROFESSIONAL VOLLEYBALL PLAYERS

Volleyball is a team activity that is performed at all levels of competition, including junior, Olympic, and professional levels. The sport lays an emphasis on explosive movements like as leaping, hitting, and blocking. It has been stated that physical strength and power are the most essential characteristics contributing to effective performance during top events. This is in addition to the technical and tactical abilities that are required for success. There are twelve players on a volleyball team, and the positions that make up the team are as follows: liberos, middle blocks, setters, and hitters (outside hitter/left side hitter and opposite hitter/right side hitter). Every one of these positions is responsible for a certain function during a volleyball match. An extensive number of examinations have been carried out in order to determine the distinctive physical and physiological characteristics of athletes competing in a wide range of sports. Concerning the realm of team sports, research has been conducted on player profile according to position in the following sports: volleyball, hockey, basketball, netball, and soccer. The bulk of the studies that have been conducted on volleyball have revealed details on the features of female volleyball players or junior volleyball athletes competing at a variety of positions. According to our knowledge, however, there are no studies of a comparable kind that have been conducted on professional male volleyball players. There is a dearth of study on the performance characteristics of top volleyball players, and to the best of the authors' knowledge, there are very little data available for professional players for a full in-season. This is even though the level of professionalism has increased dramatically. Instead of focusing on leaping ability, throwing performance, or maximum dynamic strength, the majority of research has focused on comparing the anthropometric and physiological profiles of volleyball players across different playing positions. On the other hand, there is still a lack of knowledge about the differential of these factors in volleyball players according to their individual playing positions. It may be possible to get insight into the physical traits that are crucial for a certain playing position if there are major disparities between the positions that are played. As a result, the primary objective of this research was to evaluate the anthropometric and strength characteristics of top male volleyball players and to ascertain whether or not there are changes in these parameters according to playing position.

The athletes that compete at the professional level in volleyball are the epitome of peak physical fitness. They possess a broad range of attributes that allow them to flourish in one of the most physically demanding sports in the world. To meeting the requirements of the game, these athletes go through strenuous training regimens that emphasise the development of attributes like as strength, agility, speed, endurance, and flexibility.

Strength training is an essential component of physical conditioning for volleyball players who compete at the top level. They participate in specific strength training exercises in order to increase power in the muscles of their lower body, core, and upper body. Building explosive power is necessary for leaping and spiking, and workouts such as squats, lunges, deadlifts, and plyometric exercises assist improve that strength. In addition, workouts that focus on the shoulders, arms, and wrists improve striking and blocking strength, which enables players to create the greatest amount of force during crucial periods in a match.

PERFORMANCE BETWEEN MALE AND FEMALE VOLLEYBALL PLAYERS

Volleyball, a dynamic and highly competitive sport, requires a blend of physical strength, agility, strategic thinking, and teamwork. As with many sports, the performance of volleyball players can vary significantly based on gender. These differences stem from physiological, psychological, and sociocultural factors that influence how male and female athletes train, compete, and perform. This research paper aims to delve into the various performance differences between male and female volleyball players, exploring aspects such as physical attributes, skill execution, tactical approaches, and psychological dynamics. Understanding these differences is crucial for coaches, trainers, and sports scientists to optimize training programs, improve performance, and promote gender equity in sports.

1. Physiological Differences

1.1 Muscular Strength and Power

Muscular strength and power are critical components in volleyball, impacting abilities such as jumping, spiking, and blocking. Studies have shown that male athletes generally possess higher absolute muscular strength and power compared to their female counterparts due to differences in muscle mass, testosterone levels, and overall body composition. These physiological factors contribute to higher vertical jumps and more powerful spikes among male players.

1.2 Endurance and Stamina

Endurance and stamina play vital roles in maintaining high performance throughout a volleyball match. While both male and female players undergo rigorous endurance training, research indicates that males may have a slight advantage in aerobic capacity and anaerobic threshold. However, females often exhibit greater fatigue resistance and recovery capabilities, which can be advantageous during long rallies and extended matches.

2. Skill Execution

2.1 Serving Techniques

Serving is a fundamental skill in volleyball, with different styles such as the float serve, jump serve, and topspin serve. Male players often favor the jump serve due to their greater upper body strength and explosive power, allowing for faster and more aggressive serves. Female players, on the other hand, may prefer the float serve for its strategic placement and consistency, leveraging their precise control and technique.

2.2 Spiking and Blocking

Spiking and blocking are critical offensive and defensive skills, respectively. The higher vertical jumps and greater upper body strength in males contribute to more forceful spikes and effective blocks. Females, while also highly skilled in these areas, tend to rely more on timing, technique, and strategic placement to achieve successful spikes and blocks.

3. Tactical Approaches

3.1 Offensive Strategies

Offensive strategies in volleyball involve coordinating attacks to outmaneuver the opponent. Males often employ more aggressive and high-risk offensive plays, utilizing their physical advantages to

overpower opponents. Females, while also aggressive, may focus more on strategic plays that emphasize ball control, deception, and exploiting opponent weaknesses.

3.2 Defensive Strategies

Defensive strategies are crucial for preventing the opponent from scoring. Male players tend to use their speed and agility to cover larger areas of the court, employing quick reflexes and powerful blocks. Female players, emphasizing coordination and teamwork, often excel in forming solid defensive formations and executing precise digs and passes.

4. Psychological Dynamics

4.1 Mental Toughness

Mental toughness is essential in competitive sports, influencing an athlete's ability to handle pressure and adversity. Research suggests that while both genders exhibit high levels of mental toughness, the sources of their psychological resilience may differ. Male athletes often derive mental toughness from confidence in their physical abilities, whereas female athletes may draw strength from their social support networks and intrinsic motivation.

4.2 Stress and Coping Mechanisms

The way athletes manage stress and employ coping mechanisms can impact their performance. Female volleyball players may experience higher levels of stress due to societal expectations and pressure to balance multiple roles. However, they often utilize effective coping strategies such as seeking social support and engaging in mental rehearsal. Male players, while also experiencing stress, may rely more on physical outlets like intense training sessions to cope.

5. Sociocultural Influences

5.1 Access to Training and Resources

Access to training facilities, coaching, and resources can differ significantly between male and female athletes. Historically, male sports programs have received more funding and support, leading to disparities in training opportunities. Recent efforts towards gender equity have aimed to bridge this gap, but challenges remain in providing equal access and support for female volleyball players.

5.2 Media Representation

Media representation of male and female volleyball players can influence public perceptions and athlete self-esteem. Male athletes often receive more media coverage and recognition, which can enhance their visibility and career opportunities. Female athletes, despite their achievements, may struggle for equal representation, impacting their recognition and sponsorship opportunities.

Understanding the various performance differences between male and female volleyball players requires a holistic approach that considers physiological, psychological, and sociocultural factors. By recognizing and addressing these differences, coaches and sports professionals can develop more effective training programs and promote a more inclusive and equitable sporting environment. Future research should continue to explore these dynamics, providing deeper insights and advancing gender equity in sports.

Conclusion

In conclusion, understanding the performance differences between male and female volleyball players is essential for coaches, trainers, and sports scientists to develop gender-specific training programs that maximize each athlete's potential. By acknowledging and addressing these differences, it is possible to enhance performance, reduce injury risk, and promote a more inclusive and supportive environment for all players. Further research should continue to explore these differences in greater depth, considering variables such as age, experience, and the impact of evolving training techniques and technologies.

REFERENCE

1. Souza Alves Junior, Carlos & Moraes, Mikael & Schuaste de Souza, Cassiano & Costa, Giovani & Silva, Diego. (2021). BODY COMPOSITION AMONG UNIVERSITY FEMALE ATHLETES OF TEAM SPORTS. Revista Brasileira de Medicina do Esporte. 27. 156-160. 10.1590/1517-8692202127022020_0046.
2. Masanovic, Bojan & Gardasevic, Jovan & Bjelica, Dusko. (2021). Comparative Study of Anthropometric Measurement and Body Composition Between Elite Handball and Volleyball Players from the Serbian National League. International Journal of Morphology. 39. 287-293.
3. Pradhan, Krishnendu. (2017). Comparison of Anthropometric Characteristics and Body Composition of Inter University Level Volleyball and Football Players. 3. 41-47.
4. Lio, Jorge & Dias, Eduardo & Soares, Tiago & Jorge, Gonç & Espada, Mário & Muller, Dalton & Filho, Pessôa & Pereira, Ana & Figueiredo, Teresa. (2016). Relationship between Body Composition, Anthropometry and Physical Fitness in Under-12 Soccer Players of Different Positions. International Journal of Sports Science. 6. 25-30. 10.5923/s.sports.201601.05.
5. Cosmin, S.C. & Mihaela, R.A. & Avram, Claudiu. (2016). Anthropometric characteristics, body composition and physical performance of female cadet volleyball players. 16. 664-667. 10.7752/jpes.2016.s1106.
6. Miliæ, Mirjana & Grgantov, Zoran & Chamari, Karim & Ardigò, Luca & Bianco, Antonino & Padulo, Johnny. (2016). Anthropometric and physical characteristics allow differentiating young female volleyball players according to playing position and level of expertise. Biology of Sport.
7. Gonzalez Rave, Jose Maria & Arija, Alfredo & Clemente-Suárez, Vicente. (2011). Seasonal Changes in Jump Performance and Body Composition in Women Volleyball Players. Journal of strength and conditioning research / National Strength & Conditioning Association. 25. 1492-501. 10.1519/JSC.0b013e3181da77f6.
8. Gaurav, V. & Singh, Mandeep & Singh, Shareena. (2011). A comparative study of somatic traits and body composition between volleyball players and controls. Indian Journal of Science and Technology. 4. 116-118. 10.17485/ijst/2011/v4i2/29945.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Mobile Cyber Attacks and Countermeasures: A Comprehensive Review

Mr. Naveen Dewra[1] **Miss. Anjali Kawadiya[2]** **Miss. Rashi Soni[3]**

1. Assistant Professor, Department of Computer Science, Shri Vardhman Girls P.G. College, Beawar, Rajasthan
2. Assistant Professor, Department of Computer Science, Shri Vardhman Girls P.G. College, Beawar, Rajasthan
3. Assistant Professor, Department of Computer Science, Shri Vardhman Girls P.G. College, Beawar, Rajasthan

ABSTRACT

The exponential growth of mobile devices has revolutionized communication, commerce, and personal computing, but has simultaneously exposed users to an escalating range of cyber threats. This study presents a comprehensive review of mobile-based cyber attacks and evaluates current prevention strategies, with specific insights from Ajmer and Beawar City. Mobile malware, phishing, SIM swap fraud, data leakage through insecure apps, and spyware are some of the most prevalent threats. The research explores user behavior, institutional preparedness, and awareness levels regarding mobile cyber hygiene. A structured survey of 200 users in the study area was conducted, supplemented with expert interviews. Statistical tools such as frequency analysis and chi-square tests were applied. The findings reveal widespread unawareness of cybersecurity best practices, frequent use of unsecured apps, and inadequate system updates. Although security solutions such as antivirus software, multi-factor authentication, and regular updates exist, user negligence and lack of digital literacy weaken defenses. The paper concludes by suggesting user-centric awareness programs, policy-level cybersecurity reforms, and technological innovations to safeguard mobile users. This review contributes to the growing discourse on cybersecurity in developing urban regions.

I. INTRODUCTION

Mobile phones are indispensable tools in modern life, enabling everything from personal communication to online banking and remote work. With over a billion smartphone users in India, mobile devices have become primary access points for digital services. However, the growing dependence on smartphones has made them prime targets for cybercriminals. Cyber attacks targeting mobile devices have increased exponentially, with attackers exploiting app vulnerabilities, unsecured networks, and poor user practices. The rise of mobile banking, e-commerce, and data-rich applications has further exacerbated this risk. Cities like Ajmer and Beawar, witnessing increasing digital adoption, are not

immune to these threats. This study explores common mobile-based cyber threats and assesses the awareness and preparedness of mobile users in these cities. It also reviews effective prevention techniques and proposes strategies for improved mobile cybersecurity in urban India.

II. REVIEW OF LITERATURE

(Anjum, 2023) The review discusses the potential of blockchain in improving IoT security by addressing data integrity, decentralized control, and authentication issues, while also highlighting its ability to resist common threats like spoofing and DDoS attacks, and addressing implementation challenges.

(Damle, 2023) The paper discusses cyber-attacks like malware, phishing, and ransomware, highlighting prevention frameworks like NIST and ISO 27001. It advocates for proactive defense mechanisms like firewalls, IDS, and encryption, and suggests combining technical solutions with awareness training.

(Hasan, 2023) The authors propose a hybrid model combining IBiPO and Bi-LSTM to enhance security in Wireless Sensor Networks (WSN). The model optimizes feature selection and learns temporal patterns, enhancing detection accuracy and speed against sinkhole and selective forwarding attacks.

(Nabi, 2023) The author discusses the scalability of the framework across network densities and compares it with other models. They highlight its effectiveness in WSNs, highlighting its reduced false positives and increased adaptability.

(Akhtar Mohammad Alamyar, 2023) The study compares deep learning methods like LSTM, CNN, and GRU for detecting cyber threats in real-time systems. It reveals LSTM-based models outperform others in sequence-based attacks, emphasizing hybrid models for better performance in dynamic environments.

(Subramanian, 2023) The study uses nature-inspired algorithms like Particle Swarm Optimization to detect cyber intrusions in CPS environments, enhancing threat classification accuracy and computational efficiency, especially in industrial settings, and demonstrating high detection rates against replay and command injection attacks.

(Michael Kouremetis, 2023) "Mirage" is a cyber deception platform that counters autonomous attacks using decoy systems and fake data, particularly effective against AI-driven, self-propagating malware, allowing more time for defense.

(Rohith, 2023) This review identifies cloud vulnerabilities like data leakage and API exploitation, suggests mitigation strategies like access control, encryption, and multi-tenancy isolation, and emphasizes continuous monitoring and AI-based threat analytics for secure cloud infrastructure.

(Qi, 2023) Qi proposes using Dynamic State Estimation (DSE) in power systems to detect and respond to real-time cyber-attacks, monitor grid behavior, and identify anomalies caused by false data injection, while integrating DSE with redundancy protocols enhances resilience and accuracy.

(Subburaj, 2023) The paper explores cyber-resilience in micro-grids through decentralized architectures, anomaly detection, and control redundancy, demonstrating how these systems can maintain operational integrity during cyber incidents and advocating for self-healing mechanisms in smart energy systems.

(Halabi, 2023) The study explores how stealthy attacks in mobile CPS can undermine Multi-Agent

Reinforcement Learning, suggesting adversarial training and robust reward shaping as strategies to counter these threats.

(Mahdi Taheri, 2022) The paper employs Koopman operator theory to model cyber-attacks in nonlinear systems, improving prediction and detection of stealthy attacks, enhancing system observability, and promoting advanced control recovery methods.

(A. Vedant, 2022) The authors developed a machine learning-based IDS for cyber-physical power systems, utilizing real-world grid operations datasets. Decision Trees and Naïve Bayes algorithms detect attacks like false data injection and command spoofing, highlighting ML's potential for real-time anomaly detection.

(Sathyalakshmi, 2022) This simulation-based study explores how cyber-attacks propagate in computer networks. Using various network topologies and infection models, the study reveals that attack propagation is heavily influenced by network structure, response latency, and vulnerability clustering. The research underlines the need for proactive segmentation and adaptive containment protocols.

(Mauro Conti, 2022) This comprehensive review examines side-channel attacks (SCAs) targeting mobile and IoT devices, including power, timing, and electromagnetic leakage. It highlights their potential to compromise cyber–physical systems (CPS) by extracting sensitive information without breaching encryption. The study emphasizes the urgent need for SCA-resistant hardware and secure firmware-level countermeasures.

(Kaur, 2022) This study proposes a trust-based protocol to detect and mitigate black hole attacks in mobile ad hoc networks (MANETs). The mechanism scores nodes based on past behavior, helping isolate malicious entities. Simulation results indicate significant improvements in packet delivery ratio and network throughput, validating its efficiency.

(Liu, 2021) This article presents a structured taxonomy of cyber-attacks and emerging cybersecurity mechanisms. It covers social engineering, AI-enabled attacks, cloud vulnerabilities, and evolving defence models like threat intelligence and behavior analytics. The study serves as a foundational reference for researchers tracking cybersecurity innovation.

(Shi, 2021) This research applies Generative Adversarial Networks (GANs) for detecting cyber anomalies. The GAN model generates synthetic attack scenarios, improving the training of the discriminator to detect subtle attack patterns. The approach demonstrates higher sensitivity in detecting rare or unknown threats compared to conventional IDS techniques.

(Rumpa Dasgupta, 2021) This study evaluates the vulnerabilities of microgrid systems in transactive energy markets. It identifies cyber risks like false bidding and denial of service, which can disrupt load balancing. The authors advocate for blockchain integration and real-time trust models to fortify security in decentralized energy trading systems.

(Tosun, 2021) This empirical study explores how news of cyber-attacks affects stock market performance. Findings show that major attacks lead to short-term dips in the affected firms' stock prices, particularly in finance and technology sectors. The study suggests cyber-risk disclosures should be integral to financial reporting.

(Malibari, 2021) This paper assesses how household cybersecurity awareness shaped defensive behavior during the pandemic. Survey data reveals that higher knowledge levels correlate with the use of antivirus software, password protection, and safe browsing habits. The study emphasizes the

role of informal digital literacy in domestic cybersecurity.

(Anonymous, 2021) This paper presents a predictive model for identifying enterprises at risk of external cyber-attacks. Using historical incident data and external threat intelligence, the model achieves high accuracy in classifying likely targets. The study recommends pre-emptive defense postures based on predictive analytics for enterprise cybersecurity readiness.

(Prithwiraj Roy, 2021) The authors propose a cyber deception-based solution to mitigate bad-mouthing attacks in mobile crowdsensing. The method includes injecting controlled false feedback to confuse attackers and isolate colluding nodes. Simulation results show improved trust accuracy and platform resilience.

(Moon, 2021) This research presents a framework for enhancing cyber resilience in smart manufacturing systems. It integrates redundancy, fault tolerance, and anomaly detection to minimize downtime and maintain productivity during attacks. The study emphasizes layered security and real-time diagnostics for Industry 4.0 environments.

(Fan Yang, 2021) This work develops an event-triggered control strategy for CPS exposed to intermittent deception attacks. It dynamically adjusts control actions based on system states, limiting the impact of false data injections. The approach balances communication overhead and control reliability.

(Sengupta, 220) This paper presents a classification of cyber-attacks targeting IoT and IIoT devices, categorizing them into network, application, and physical-layer threats. It also reviews existing countermeasures like lightweight encryption and anomaly detection, and suggests AI-driven techniques as future solutions.

(Rekhis, 2020) This study introduces a visibility-based framework for critical system defense, integrating active (real-time), reactive (post-breach), and proactive (anticipatory) techniques. The approach enhances situational awareness and enables better decision-making for intrusion response in high-risk environments such as energy and defense.

(Ramachandran, 2020) This study presents a simulation model using optimization algorithms to evaluate the effects of cyber-physical attacks on power grids. The model simulates attack propagation and its effect on stability, load flow, and energy distribution. It provides a framework for assessing system vulnerabilities and the effectiveness of countermeasures under various attack scenarios.

(Sharifi, 2020) This research applies supervised and unsupervised machine learning techniques to detect cyber-attacks in cyber-physical systems. Techniques such as SVM and k-means clustering show promising accuracy in identifying anomalies in sensor data. The paper stresses the potential of adaptive learning models in enhancing real-time security.

(Vaz, 2020) The MIRES framework focuses on mobile app resilience by enabling backend recovery post cyber-attack. It decouples service dependencies and uses redundancy to restore functionality. The solution is particularly effective in managing backend failures caused by cyber disruptions, offering increased service availability for mobile systems.

(Zhang D. M., 2019) This study introduces a stealth attack framework capable of bypassing parity space anomaly detectors in CPS. It shows how attackers can manipulate input/output data while remaining undetected. The research reveals significant blind spots in conventional anomaly detection algorithms, highlighting the need for more resilient monitors.

(Moon M. W., 2019) This review covers existing IDS approaches for manufacturing systems, including signature-based, anomaly-based, and hybrid models. It identifies the challenges in latency, scalability, and real-time application. The study suggests integrating AI and IoT for smarter, context-aware intrusion detection systems in Industry 4.0.

(Andryukhin, 2019) This paper discusses phishing vulnerabilities in blockchain ecosystems, especially wallet applications and smart contracts. The author categorizes phishing types and explores mitigation through user education, two-factor authentication, and smart contract audit mechanisms. It provides practical guidelines for developers and users alike.

(Md Masud Rana, 2019) This paper enhances Kalman filtering by introducing a residual saturation mechanism to suppress false data injection attacks in smart grids. The modified filter improves robustness by dynamically adjusting its parameters in response to anomalies, thereby enhancing the reliability of state estimation.

(Cai, 2019) This review provides a taxonomy of cyber-attacks on CPS, particularly power systems, and evaluates corresponding defence strategies. It discusses coordinated attacks on SCADA systems, PMUs, and energy markets. The paper concludes by recommending resilient control, redundancy, and real-time anomaly detection as essential countermeasures.

(Bertino, 2019) The authors develop a robust localization algorithm resistant to sensor position spoofing. By integrating trust metrics and statistical validation, their method successfully filters tampered data to maintain localization accuracy. It's useful for secure deployment in smart environments and battlefield monitoring systems.

(Palaniappan, 2019) The study examines techniques for identifying mobile malware, encompassing both dynamic and static analysis, behavior profiling, hybrid approaches, and machine learning classification, while advocating for improved sandboxing and federated learning to address zero-day threats.

(Saidouni, 2018) This research classifies cyber dangers in IoT healthcare, including eavesdropping, data manipulation, and denial-of-service assaults. It presents a streamlined categorization technique designed for resource-limited medical IoT devices. The study emphasizes the necessity for context-sensitive, energy-efficient protection mechanisms in intelligent healthcare infrastructure.

(Basan, 2018) The authors present a model for detecting anomalies related to internal dangers in mobile devices robotic systems. They employ behavioural analysis & routing pattern anomalies to identify compromised nodes. The technology underwent validation via simulations and provides a basis for actual time robotic network safety.

(Inverso, 2018) This study presents a method utilizing a SAT solver to devise spoofing attacks against CPS control systems. It methodically finds susceptible control pathways and formulates attack vectors. This method facilitates vulnerability evaluation and penetration testing of essential control systems.

(Kaspar, 2018) This study combines data mining with threat intelligence sharing to forecast cyber-attacks. By analysing shared indicators of compromise, the proposed model predicts likely targets and attack vectors. It advocates for more collaborative cybersecurity ecosystems supported by automated analytics.

(Zhang, 2017) This case study demonstrates how weaknesses in GPRS-based SCADA systems

might be leveraged to interfere with power grid operations. The authors model denial-of-service and man-in-the-middle attacks, revealing vulnerabilities in encryption and access control mechanisms. The research advocates for improved network segmentation and more robust SCADA authentication procedures.

(Chowdhury, 2017) This study examines vulnerabilities in IoT-integrated mechatronic systems, with a specific emphasis on industrial automation and robotics. It classifies attack vectors including spoofing, manipulation, and replay assaults, and emphasizes the absence of standardized security procedures within sensor-actuator networks. The study finds that layered security strategies and anomaly detection techniques are essential for crucial mechatronics systems.

(Tawalbeh, 2017) This assessment examines cyber threats aimed at smart city infrastructure, encompassing public transportation, surveillance, & emergency services. The authors examine mobile-based attack vectors such as Bluetooth and Wi-Fi snooping and their effects on urban resilience. Recommendations encompass real-time threat modelling, enhanced authentication for mobile nodes, as well as government-driven enforcement of cybersecurity policies.

(Guitton, 2017)Guitton examines national security tactics to avert extensive cyber-attacks on essential infrastructure. The paper analyses the role of strategic deterrence, public-private partnerships, and international cooperation by referencing cybersecurity policies from NATO and EU member states. It underscores that cyber deterrence must encompass not only reactive forensics but also proactive cyber intelligence activities.

(B. Vahidiataabadi, 2017) This article delineates the hazards associated with cyber-attacks in mHealth (mobile health) systems, namely illegal data access, Location spoofing, & malware in health applications. It underscores the vulnerability of medical data as well as the necessity for rigorous encryption and safe communication procedures. The authors advocate for the establishment of regulatory frameworks & healthcare-specific cybersecurity protocols to safeguard patient confidentiality.

(Meysam Ghanavati, 2017) This research employs partial differential equations (PDEs) to model the impact of cyber-attacks on automobile behavior on highways, including the manipulation of adaptive cruise control. The model replicates vehicular collisions and traffic bottlenecks arising from such assaults. It illustrates how ostensibly trivial attacks in vehicle networks can result in massive traffic disruption and threats to public safety.

III. RESEARCH OBJECTIVES

1. To identify the most common types of mobile-based cyber attacks faced by users in Ajmer and Beawar.
2. To assess the level of cybersecurity awareness and preventive practices among mobile users.
3. To evaluate the effectiveness of current prevention mechanisms and suggest improvements.

IV. RESEARCH HYPOTHESES

- H01: There is no significant relationship between user awareness and exposure to mobile-based cyber attacks.

- H02: Use of preventive measures does not significantly reduce vulnerability to mobile cyber threats.

V. RESEARCH METHODOLOGY

a. Type of Research: Descriptive and analytical research combining quantitative survey data with qualitative insights.

b. Population and Sample Size: Mobile phone users aged 18–50 in Ajmer and Beawar cities. A total of 200 respondents were selected using purposive sampling.

c. Research Design: Cross-sectional survey and expert interviews. Structured questionnaires and guided discussion formats were used.

d. Functional and Geographical Scope: The study investigates mobile cyber attack exposure and prevention practices among users in Ajmer and Beawar, focusing on device usage behavior and cybersecurity habits.

e. Limitations of the Study:

- Self-reported data may suffer from recall or social desirability bias.
- Sample limited to urban mobile users; rural perspectives not covered.
- Does not cover iOS-specific threats due to Android dominance in the area.
- Limited by cross-sectional design; no long-term behavior assessment.

f. Data Collection: Primary data collected through online and offline surveys. Secondary data from CERT-IN reports, cybersecurity publications, and journal articles.

VI. DATA ANALYSIS

Table 1: Awareness of Common Cyber Threats

Threat Type	Aware (%)	Not Aware (%)
Phishing via SMS	60	40
Malicious Applications	48	52
SIM Swap Fraud	33	67
Public Wi-Fi Risks	39	61

Interpretation: Significant lack of awareness exists, particularly about SIM swap and Wi-Fi-related threats.

Table 2: Preventive Practices Used by Respondents

Preventive Measure	Users (%)
Antivirus Apps Installed	42
Regular OS Updates	36
Multi-Factor Authentication	29
Avoidance of Public Wi-Fi	23

Interpretation: Less than half of the users follow essential cybersecurity practices, revealing vulnerability.

Table 3: Experience of Cyber Incidents vs. Preventive Measures

Measure Used	Faced Cyber Attack (%)	No Cyber Attack (%)
Uses No Measures	71	29
Uses At Least One Measure	38	62

Interpretation: Preventive behavior significantly reduces cyber-attack incidents.

VII. FINDINGS OBJECTIVE-WISE FINDINGS:

- Most users are unaware of sophisticated threats like SIM swap and app-based surveillance.
- Preventive measures are not widely adopted due to low awareness and lack of technical knowledge.
- Users relying on single-layer protection are more likely to experience cyber incidents.
- Institutions and telecom operators lack proactive public education strategies.
- Behavior varies by age and profession, with professionals showing slightly better cyber hygiene.

Hypothesis-wise Findings:

- H01 is rejected: Awareness significantly affects vulnerability to cyber-attacks.
- H02 is rejected: Users employing preventive measures face fewer cyber threats.

Major Findings:

1. Cybersecurity awareness remains low despite rising mobile usage.
2. Common practices like OS updates and multi-factor authentication are underutilized.
3. Public Wi-Fi usage and insecure apps are key vulnerability factors.
4. SIM swap fraud and spyware remain largely misunderstood threats.
5. Education, profession, and tech savviness influence cyber hygiene levels.

VIII. RECOMMENDATIONS

- Launch mobile cybersecurity awareness drives in schools, colleges, and offices.
- Encourage use of security apps and enforce auto-update policies.
- Integrate mobile cybersecurity education into digital literacy programs.
- Telecom operators must provide alerts and real-time education on emerging threats.
- Promote national-level mobile cyber hygiene campaigns.

IX. CONCLUSIONS

This review confirms the growing risk of mobile-based cyber-attacks in urban India, exacerbated by

low awareness and lax preventive behaviour. Ajmer and Beawar serve as illustrative examples of mid-sized cities facing rapid digital adoption without parallel cybersecurity education. Users are increasingly dependent on mobile phones for sensitive operations but fail to employ even basic security measures. The study also shows that preventive actions, even at a minimal level, significantly reduce exposure to threats.

To build a secure digital ecosystem, user education must become a cornerstone of cybersecurity policy. Public-private partnerships, educational interventions, and regulatory frameworks can play a key role in enhancing mobile security awareness. Ultimately, cybersecurity must be embedded into the digital culture of every smartphone user.

REFERENCES

- A. Vedant, A. Y. (2022). Detecting Cyber Attacks in a Cyber-Physical Power System: A Machine Learning Based Approach. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9986512/9986518/09986990.pdf?arnumber=9986990.
- Akhtar Mohammad Alamyar, W. L. (2023). Detecting Malicious Attacks Using Cyber-Security Models Using Deep Learning Approach. https://www.researchsquare.com/article/rs-3160305/v1.
- Andryukhin, A. (2019). Phishing Attacks and Preventions in Blockchain-Based Projects. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8698744/8711875/08711898.pdf?arnumber=8711898.
- Anjum, A. (2023). Analysis of Preventions of Attacks on IoT Using Blockchain: Review. http://jazindia.com/index.php/jaz/article/download/1562/1169.
- Anonymous. (2021). Predicting Enterprise-Targeted External Cyber-Attacks. https://www.cambridge.org/core/services/aop-cambridge-core/content/view/15BC191F7FC35C92280351169FDA7AA5.
- B. Vahidiataabadi, M. A. (2017). Mobile Health and Its Security in the Face of Cyber Attacks. https://sites.kowsarpub.com/semj/articles/66317.html.
- Basan, E. (2018). Evaluating and Detecting Internal Attacks in a Mobile Robotic Network. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8639705/8644525/08644585.pdf?arnumber=8644585.
- Bertino, J. W. (2019). Robust Sensor Localization Against Known Sensor Position Attacks. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/7755/8890763/08546770.pdf?arnumber=8546770.
- Cai, X. (2019). Review of Cyber-Attacks and Defense Research on Cyber Physical Power System. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8962268/8974850/08975131.pdf?arnumber=8975131.
- Chowdhury, A. (2017). Cyber Attacks in Mechatronics Systems Based on Internet of Things. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/7912153/7921067/07921154.pdf?arnumber=7921154.
- Damle, S. P. (2023). Cyber Security and Frameworks: A Study of Cyber Attacks and Methods of Prevention of Cyber Attacks. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/10104520/10104522/10104823.pdf?arnumber=10104823.
- Fan Yang, Z. G. (2021). Resilient Event-Based Control for Nonlinear Cyber-Physical Systems Under Intermittent Deception Attacks. https://www.researchsquare.com/article/rs-273132/v1.
- Guitton, C. (2017). Folling Cyber Attacks. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8054574/8074842/08074853.pdf?arnumber=8074853.

- Halabi, S. A. (2023). Stealthy Attacks on Multi-Agent Reinforcement Learning in Mobile Cyber-Physical Systems. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/10339719/10339694/10339778.pdf?arnumber=10339778.
- Hasan, D. F. (2023). Cyber-Attacks in WSN & Security Optimization By Novel Technique Based Intensive Binary Pigeon Optimization (IBiPO) & Bi-LSTM-Based IDS Framework. https://ndownloader.figshare.com/files/42769054.
- Inverso, O. (2018). http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8429083/8443707/08443716.pdf?arnumber=8443716. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8429083/8443707/08443716.pdf?arnumber=8443716.
- Kaspar, M. H. (2018). Towards Predicting Cyber Attacks Using Information Exchange and Data Mining. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8410977/8450266/08450512.pdf?arnumber=8450512.
- Kaur, A. K. (2022). Trust-Based Security Protocol to Mitigate Black Hole Attacks in Mobile Adhoc Networks. https://www.researchsquare.com/article/rs-2197795/v1.
- Liu, Y. L. (2021). A Comprehensive Review Study of Cyber-Attacks and Cyber Security; Emerging Trends and Recent Developments. https://api.elsevier.com/content/article/PII:S2352484721007289.
- Mahdi Taheri, K. K. (2022). Data-Driven Koopman Operator Based Cyber-Attacks for Nonlinear Control Affine Cyber-Physical Systems. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9992315/9992317/09993087.pdf?arnumber=9993087.
- Malibari, N. (2021). Family Member's Awareness of Cyber-Security Concepts and Its Correlation with the Precautionary Procedures Taken Against Cyber-Attacks During the Coronavirus Pandemic. https://scindeks-clanci.ceon.rs/data/pdf/2217-9739/2021/2217-97392101120M.pdf.
- Mauro Conti, E. L. (2022). Side-channel attacks on mobile and IoT devices for Cyber–Physical systems. https://api.elsevier.com/content/article/PII:S138912862200069X.
- Md Masud Rana, R. B. (2019). Residual Saturation-Based Kalman Filter for Smart Grid State Estimation Under Cyber Attacks. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9051568/9066458/09066737.pdf?arnumber=9066737.
- Meysam Ghanavati, A. C. (2017). PDE-Based Analysis of Automotive Cyber-Attacks on Highways. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/7951530/7962914/07963219.pdf?arnumber=7963219.
- Michael Kouremetis, R. A. (2023). Mirage: Cyber Deception Against Autonomous Cyber Attacks. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/10339719/10339694/10339776.pdf?arnumber=10339776.
- Moon, C. E.-Z. (2021). Resilient Cyber-Manufacturing Systems Under Cyber Attacks. https://asmedigitalcollection.asme.org/IMECE/proceedings-pdf/doi/10.1115/IMECE2021-70019/6826929/v02bt02a011-imece2021-70019.pdf.
- Moon, M. W. (2019). Intrusion Detection of Cyber-Physical Attacks in Manufacturing Systems: A Review. http://asmedigitalcollection.asme.org/IMECE/proceedings-pdf/doi/10.1115/IMECE2019-10135/6472976/v02bt02a001-imece2019-10135.pdf.
- Nabi, F. (2023). https://www.researchsquare.com/article/rs-3308713/v1.
- Palaniappan, G. (2019). Techniques for Analysis of Mobile Malware. https://www.igi-global.com/

viewtitle.aspx?TitleId=222224.
- Prithwiraj Roy, S. B. (2021). http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9469409/9469410/09469467.pdf?arnumber=9469467. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9469409/9469410/09469467.pdf?arnumber=9469467.
- Qi, J. (2023). Risk Mitigation Against Cyber Attacks Based on Dynamic State Estimation. https://link.springer.com/content/pdf/10.1007/978-3-031-29290-3_4.
- Ramachandran, J. Z. (2020). An Advanced Optimization Based Simulation Model to Study the Impact of Cyber-Physical Attacks on Power Systems. http://www.ijeee.net/uploadfile/2020/1214/20201214104800223.pdf.
- Rekhis, Y. L. (2020). Active, Reactive and Proactive Visibility-Based Cyber Defense For Defending Against Attacks On Critical Systems. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9142627/9148048/09148400.pdf?arnumber=9148400.
- Rohith, D. S. (2023). Review on Cloud Security Attacks and Preventions.
- Rumpa Dasgupta, A. S. (2021). Cyber Attacks in Transactive Energy Market-Based Microgrid Systems. https://www.mdpi.com/1996-1073/14/4/1137/pdf.
- Saidouni, A. D. (2018). Cyber Attacks Classification in IoT-Based-Healthcare Infrastructure. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8574117/8602668/08602974.pdf?arnumber=8602974.
- Sathyalakshmi, S. R. (2022). Propagation of Cyber-Attacks in Computer Network: A Simulation Study. https://www.researchsquare.com/article/rs-2169320/v1.
- Sengupta, Y. S. (220). A Survey on Classification of Cyber-Attacks on IoT and IIoT Devices. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9297925/9297927/09298138.pdf?arnumber=9298138.
- Sharifi, Z. N. (2020). Detection and Identification of Cyber-Attacks in Cyber-Physical Systems Based on Machine Learning Methods. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9345605/9345606/09345627.pdf?arnumber=9345627.
- Shi, A. (2021). Cyber Attacks Detection Based on Generative Adversarial Networks. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/9681385/9681362/09681469.pdf?arnumber=9681469.
- Subburaj, M. A. (2023). https://ndownloader.figshare.com/files/42081750. https://ndownloader.figshare.com/files/42081750.
- Subramanian, S. S. (2023). Detection and Prevention of Cyber-Attacks in Cyber-Physical Systems Based on Nature Inspired Algorithm. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/10099476/10100336/10100513.pdf?arnumber=10100513.
- Tawalbeh, A. A. (2017). Cyber Security Attacks on Smart Cities and Associated Mobile Technologies. https://api.elsevier.com/content/article/PII:S1877050917310669.
- Tosun, O. K. (2021). Cyber-Attacks and Stock Market Activity. https://api.elsevier.com/content/article/PII:S1057521921001319.
- Vaz, D. (2020). MIRES: Recovering Mobile Applications Based on Backend-as-a-Service from Cyber Attacks. https://dl.acm.org/doi/pdf/10.1145/3448891.3448932.
- Zhang, D. M. (2019). Completely Stealthy Attacks on Cyber-Physical System with Parity Space Based Monitoring. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/8789884/8814292/08814300.pdf?arnumber=8814300.
- Zhang, T. (2017). Cyber Attacks in Cyber-Physical Power Systems: A Case Study with GPRS-Based SCADA Systems. http://xplorestaging.ieee.org/ielx7/7961861/7978054/07978413.pdf?arnumber=7978413.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय राजनीति में जाति एवं वंशवाद

डॉ. दिनेश कुमार चौधरी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (वि.सं.) राजकीय महाविद्यालय, कल्याणपुर

''जाति पर टिकी है हर दल की राजनीति'', ''भड़ाना के इंका में जाने से गुर्जर समीकरणों में उलटफेर'' सैनी बिरादरी की कांग्रेस समर्थन देने की चेतावनी, ''अंतत जातिवाद का सहारा लेते है राजनेता, ''जाति पूछकर पार्टियों में राजस्थान में उम्मीदवार चुने'', हिन्दी समाचार पत्रों की उपर्युक्त दी हुई कुछ कतरने जो जनभावना का प्रतिनिधित्व करती है, से लगता है जैसे कि भारत की लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव विभिन्न राजनीतिक दर्शनों, विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों अथवा राष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं के आधार पर नहीं वरन जाति के आधार पर लड़े जाते हैं। यह अपने में बहुत बड़ा सत्य भी है कि एक जाति या दो-तीन जातियों का गठजोड़ वह राजनीति रूप में अपना कोई भी नाम रख लें चुनाव जातियों के आधार पर ही होता है। सन् 1961 के चुनाव में फक्रूद्दीन अली अहमद की कांग्रेस, जगजीवन राम की कांग्रेस, इन्दिरागांधी की कांग्रेस के नारे का सीधा अर्थ ब्राहमण, मुस्लिम और हरिजन गठजोड़ था।

चौ० चरण सिंह की पिछड़ों की राजनीति का नारा जाट, यादव, कुर्मी का गठजोड़ था। मायावती की सारी राजनीति हरिजन वोटों के इर्द-गिर्द घूमती है। सन् १९७१ व १९८० के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को विजय प्राप्त होने का कारण था कि श्रीमति इन्दिरा गांधी, हरिजनों, ब्राह्मणों और मुसलमानों का जातीय समर्थन जुटाने में सफल हो गयीं। बिहार का अगड़े और पिछड़ों का संघर्ष, महाराष्ट्र का मराठों और ब्राहमणों का संघर्ष, आन्ध्र का रेडडी और कम्माओं का संघर्ष, कर्नाटक का लिंगायत और आकोलीगा का संघर्ष, तमिलनाडु का ब्राहमण और छोटी जातियों का संघर्ष, केरल की इज्वा और नायर तथा उत्तराखण्ड में ब्राहमण और क्षत्रिय में बंटी राजनीति इस देश की जीवन्नता है। चाहें साम्यवादी दल होए सौ वर्ष पुरानी कांग्रेस हो या सद्धजन्मी सद्धमरी जनता पार्टी व जनता दल हो कोई भी राजनैतिक दल जातीय ध्रुवीकरण की उपेक्षा करके इस देश में राजनीति नहीं कर सकता। डॉ. राम मनोहर लोहिया के अनुसार पश्चिम बंगाल का कामगार काश्तकारी पक्ष और रिपब्लिकन पार्टी, दक्षिण हिन्दुस्तान का द्रविण मुनेत्र कणगम और पूर्वी हिन्दुस्तान की झारखण्ड पार्टी के साथ-साथ गणतन्त्र और जनता पार्टियों ने केवल क्षेत्रीय पार्टियां है बल्कि जातीय पार्टियां भी हैं।

इसे देश की राजनीति चिन्तन से प्रभावित न होकर जातीय संगठनों की क्षमता से प्रभावित है। राजनीति पर यह जातीय वर्चस्व इस देश की सामाजिक संरचनाए आचार व्यवहार, रीति-रिवाज के सम्बन्धों का परिणाम है। इस देश में कोई भी बच्चा जिस जाति में जन्मता है वही जाति उसका समाज होती है, उस जाति के संस्कारए रीति-रिवाज, व्यवसाय उसके जीवन को विकसित करते हैं, उसी जाति में उसका विवाह होता है। सम्बन्धों की प्रगाढ़ता उसकी जाति में अभिन्न रूप से जुड़ती है और यह जातीय बंधन जो इस देश की समाज की धुरी थे, लोकतंत्र में ये भले ही सामाजिक रूप से टूटते दृष्टिगोचर होते होए परन्तु राजनीति में अधिक सुदृढ और दुराग्रही रूप से विकसित हुए हैं। दिनकर के शब्दों में ''जिस देश में मनुष्य मनुष्य न होकर ब्राहमण, कुर्मी राजपूत, कायस्थ, या कहार समझा जाता हो, जिस देश के लोग अपनी भक्ति व प्रेम पर पहला अधिकार अपनी जाति वालों का समझते हों, जिस देश की एक जाति के लोग दूसरी जाति के विद्धान को मूर्ख, दानी और कृपण, बली

को दुर्बल सचरित्र को दुष्चरित्र और अपने जाति के मूर्ख को विद्धान और पापी को पुण्यात्मा समझते हो, उस देश की स्वतंत्रता और समृद्धि के विषय में यही कहा जा सकता है..... अहिबे को अचरज है, गई तो अचरज कौन।''

रूडोल्फ के अनुसार राजनीतिक लोकतंत्र के नये संदर्भ में भारतीय समाज में जाति एक केन्द्र बिन्दु बन चुकी है चाहे उसके अपने आप को लोकतांत्रिक राजनीति के तरीकों और मूल्यों के अनुकूल बना लिया है। निःसन्देश यह मुख्य साधन बन चुकी है जिसमें भारतीय जनता लोकतांविक राजनीति की प्रकिया से सम्बन्धित हो गयी है।

इस देश का हजारों वर्ष का ज्ञात और अज्ञात इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस देश की सम्पूर्ण अस्मिता को जातिवाद ने प्रभावित किया है। प्रारम्भ में ये जातियां निश्चित रूप से कर्मणा रही होगी। जब तक का पौराणिक इतिहास उपलब्ध है, जातियों का जन्भना स्वरूप ही हमारे सम्मुख है। मनुस्मृति के अनुसार ''चारों वर्षो में सवर्णा अक्षत्योनि विवाहिता पत्नियों में वर्णानुक्रम से अर्थात ब्राहमण से ब्राहमणों में उत्पन्नए क्षत्रिय से क्षत्रियों में उत्पन्न हुई संतानें उसी जाति की समझी जानी चाहिये''

तत्कालीन बुद्धिजीवियों ने बड़ी चतुराई से राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि घोषित कियाए स्वयं को ब्राहमण और राजा को ब्राहमणों की रक्षा करने वाला क्षत्रिय घोषित किया। महाभारत के शान्तिपर्व में पुरोहित के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि राष्ट्र का योग क्षेम राजा में निहित है पर राजा का अपना योग क्षेम तो पुरोहित में ही निहित है। राज्य के सम्मुख जो इष्ट भय उपस्थित होता है उसका निवारण राजा द्वारा किया जाता है, पर प्रजा के अदृश्य भय का शमन तो पुरोहित ही करता है। ब्राहमणों के पास तप और बल का मन्त्र होता है और क्षत्रियों के पास अस्त्र और बाहु का। ब्रह्मा और क्षत्रिय ईश्वर द्वारा एक योनि बनाकर उत्पन्न किये गये हैं, अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिये अपना जन्म ब्रह्मा के मुख से और क्षत्रियों का जन्म ब्रह्म की भुजाओं से प्रतिपादित किया। ब्राहमण और क्षत्रियों के भरण-पोषण के लिये एक वर्ग की आवश्यकता अनुभव की गयी होगी, जिसका जन्म जंघाओं से बताते हैं और बुद्धि बल और बाहुबल दोनों से कृत निर्बल रहे होगे उन्हें उपरोक्त वर्गो की सेवा का भार सौंप कर शुद्रों की उत्पत्ति की गयी होगी जिसका जन्म ब्रह्मा के चरणों से बताते हैं। मनुस्मृति के अनुसार-समस्त संसार की भूख और सुरक्षा व्यवस्था तथा समृद्धि के लिये महातेजस्वी परमात्मा ने मुखए बाहुए जंघा और पैर की तुलना में निर्मितों के अर्थात क्रमशः ब्राह्मणए क्षत्रियए वैश्य और शुद्र वर्गो के पृथक-पृथक कर्म बनाये गये।

आर्यों द्वारा इस देश में रहने वाले अनार्यों पर विजयी होने पर उन्हें दास बनाया गया जिन्हें सेवा कार्य सौंपा गया उनसे शुद्रों की उत्पत्ति हुई। आज भी देश के अनेक भागों में शुद्रों के नाम के साथ दास शब्द जुड़ा हुआ है। इस प्रकार आरम्भ में श्रम विभाजन के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों का वर्गीकरण कर्मणा ही कहा जायेगा। सीमित अवसरों की स्थित में पुत्र ने पिता का कार्य संभाला। उसमें निपुणता प्राप्त की। राजा का बेटा राजाए गुरू का बेटा गुरू, सारथी का बेटा सारथी बना और कर्मणा वर्गीकरण स्वभावतः ही परंपरागत रूप से जन्मना होता चला गया।

समाज के विस्तार के साथ-साथ उसका भारत के विभिन्न भागों में फैलाव हुआ, अलग-अलग राज्य व्यवस्थायें हुई। जातियां से उपजातियां निकली, कहीं कुल के आधार पर, कहीं स्थान के आधार पर। महाभारत काल तक क्षत्रियों के दो ही कुल सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी पुराणों में उद्धृत है। किन्तु महाभारत काल में अनेक वंश देखने को मिलते हैं-जैसे यादव, कुकुर भोज अन्धक वृष्णि गणराज्य थे और उन्होंने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता और पृथक सत्ता को कायम रखते हुए अपने को एक संघ में संगठित रखा हुआ था। महाभारत के विजय पर्व में भद्रए रोहितक आग्रेय और मालक जनपद का उल्लेख है।

आज वर्तमान युग में ब्राहमणए क्षत्रियए वैश्यए शुद्रों सभी जातियों की सैकड़ों हजारों शाखाएं और उपशाखाएं देश के अलग-अलग भागों में भिन्न-भिन्न नामों से जानी जाती हैं। जब हम भारतीय इतिहास का अध्ययन करते हैं तो मात्र दो जातियों ब्राहमण और क्षत्रियों के ही इतिहास का वर्णन करते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से राजा क्षत्रिय होता था और प्रछन्न रूप से उसको संचालित करने वाली शक्ति ब्राहमणों के हाथ में होती थी।

हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार ष्सर्वप्रथम राजा की सत्ता पर ब्राहमणों का नियंत्रण होता था। पुनर्भिषेक विधि द्वारा सिंहासनारूढ़ राजा को भी धर्मसत्ता के निर्देश पर सिंहासन छोड़ना पड़ता था। प्राचीन काल में ब्राहमण संस्कृति एवं शिक्षा

के अधिष्ठाता माने जाते थे। ऐतरय ब्राहमण एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र से स्पष्ट होता है कि जन्मेजय जैसे शक्तिशाली राजा को भी ब्राहमणों के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। ''ब्राह्मणों का निरादर करने वाला वृष्णिवंश भी नष्ट हो गया था।''

देश की शासन व्यवस्था भले ही मुसलमानों या अंग्रेजों के हाथ में चली गयी किन्तु इस देश के समाज पर ब्राहमणों का यथावत शासन रहा। इस ब्राहमणी व्यवस्था ने अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिये इस देश की जातियों के बीच ऊँच-नीच, छुआ-छूत, छोटे-बड़े की भावना को जीवित रखने का अथक प्रयास किया जिस किसी ने भी इसका विरोध किया उसको ही ब्राह्मणों का क्रोध झेलना पड़ा। राजा राम मोहन राय को उन्होंने समाज बहिष्कृत किया स्वामी दयानन्द पर अनेक प्रकार के आरोप लगायेए स्वतंत्रता के बाद जातीय दुराग्रह सामाजिक धरातल पर टूटते हुए लगने लगे। स्वतंत्र भारत में दो प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप से विकसित हुई। एक प्रवृति ब्राहमणवाद के आश्रित-ब्राहमण और क्षत्रियों का वर्चस्व बनाये रखने की प्रवृति, दूसरी और राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, काका कालेकर, राम मनोहर लोहिया जैसे ब्राहमण बाद विरोधी। एक यथा-स्थितिवादी प्रवृति तो दूसरी और आदिवासियों, गिरिजनों व हरिजनों में समानता का अधिकार पाने की लालसा। ये दो प्रवृतियां इस देश की राजनीति को जातिवाद के माध्यम से आज संचालित कर रही है राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में ''यह दुर्भाग्य का विषय है कि राष्ट्रीय संस्था तक जातिवाद के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकी यद्यपि महात्मा गाँधी तथा उनके कर्मठ अनुयायी सदा इसका विरोध करते रहे प्रान्तीय स्तर तक जातिवाद के प्रभावशाली रूप के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। बिहार के १९३६-३७ ई० के चुनावों में कांग्रेस कमेटी ने जाति के आधार पर कुछ चुनाव क्षेत्रों के लिये अपने उम्मीदवारों का चयन किया और उन्हें विजय दिलाने के विचार से इस आधार पर प्रयास किये गये''।

स्वतंत्र भारत में जातिवाद का एक दूसरा रूप भी उभरा जब सम्पूर्णानन्द उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री थे तब मंत्रीमण्डल में सर्वाधिक वैश्य थे और नौकर शाही में वैश्यों का वर्चस्व था। जब चौ० चरण सिंह उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे तो जाटों की भी यही स्थिति रही। वीर बहादुर सिंह के काल में ठाकुरोए मुलायम सिंह के व अखिलेख यादव के काल में यादव और कल्याण सिंह के काल में लोध राजपूत अधिकारियों का वर्चस्व इस प्रदेश पर रहा है। देवरिया के लोहियावादी सांसद मोहन सिंह जी ने अपने साक्षात्कार में कहा कि ष्इस देश में जाति बड़ी संगठित हैं। सारी बातों के बावजूद बनिये गाँधी जी से इस लिये जुड़े क्योंकि गाँधी बनिये थे। कायस्थ बिहार में इस लिये कांग्रेस में चले गये क्योंकि राजेन्द्र प्रसाद कायस्थ थे। बहुत सारे ब्राहमण परिवार उत्तर प्रदेश में आजादी की लड़ाई में इस लिये चले गये क्योंकि नेहरू और पंत उनकी जाति के थे।'' इस दृष्टि से देखा जाये तो राष्ट्रीय चेतना भी जातिवाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रही। जातिवाद विकृत और सुसंस्कृत जैसा भी हो यह स्वरूप देश की राजनीति पर हावी है। इस देश में चुनावी नारे भले ही जनहितकारी मुद्दों पर बनाये जायें देश की समस्याओं, गरीबी हटाओं, स्वराज जैसे नारे दिये जायें। पर चुनाव विभिन्न राजनैतिक दर्शनों आर्थिक सामाजिक समस्याओं पर नहीं जातियों के मध्य लड़े जाते हैं।

राजनीति में स्थापना उस आदमी की होती है जो जाति का बड़ा आदमी होता है। बड़े आदमी को परिभाषित करते हुए लोहिया ने कहा है– ''जो उच्च जाति का हो, पैसे वाला हो और अंग्रेजी पढ़ा लिखा है। इन तीन गुणों में से जिसके पास दो गुण है वह बड़ा आदमी है। ऊँची जाति का हो, पैसे वाला हो वह बड़ा आदमी है, धनवान हो अंग्रेजी पर उसका अधिकार हो वह बड़ा आदमी है। किन्तु राममनोहर लोहिया की परिभाषा में एक गुण और जुड़ गया है कि इन दो गुणों के साथ जिनके पास बाहुबल भी हो यह जातीय नेता होता है। चाहे देवीलाल हो, सूरज देव सिंह हो, रविन्द्र किशोर साही हों, हरिशंकर तिवारी हो। जब जाति का बड़ा व्यक्ति बड़ा नेता बनता है तो उसका बेटा भी बड़ा व्यक्ति बनता है। मोतीलाल नेहरू के हाथ से कांग्रेस की बागडोर, जवाहरलाल नेहरू के हाथ में आती है, देवी लाल के हाथ से ओमप्रकाश चौटाला के हाथ में आती है, मुलायम सिंह यादव से अखिलेश यादव के हाथों में, बीजू पटनायक से नवीन पटनायक के हाथ मेंए लालू यादव से तेजस्वी यादव के हाथ में। माधवराव सिंधिया से ज्योतिरादित्य के हाथ में, फारूख अब्दुला से उमर अब्दुल्ला के हाथ में मुफ्ती महोम्मद से महबूबा मुफ्ती के हाथ में और यही वंशवाद है जिसे जातिवाद ने सबसे ज्यादा मजबूत किया है।

भारतीय राजनीति पर जाति का प्रभाव

1. भारतीय राजनीति में जातीयता से सामाजिकए राजनैतिक प्रशासनिक सभी प्रकार के निर्णय प्रभावित होते है।

2. सभी राजनैतिक दल अपने प्रत्याशियों का मनोनयन जातीय और धार्मिक आधार पर करते हैं। राष्ट्रीय छवि वाले नेतागण भी ऐसे चुनाव क्षेत्रों से चुनाव लड़ने का दुःसाहस नहीं कर सकते जहाँ उनका स्वजातीय बाहुल्य न हो।

3. चुनाव प्रचार जातीय भावनाओं का ध्यान में रखकर किया जाता है। राम मनोहर लोहिया के अनुसार ''व्यवहारिक तथा यथार्थपूर्ण दृष्टिकोण से प्रभावशाली नेतागण जातिवाद के आधार पर प्रचार व विजय के यंत्रों में विश्वास रखते है। चाहे वह बाहरी रूप से ऐसे आग्रह करें कि जाति या सम्प्रदायवादी भेदभाव का उन्मूलन होना चाहिए।''

4. जातिगत प्रतिनिधित्व के आधार पर मंत्री मण्डलों का गठन करने का प्रचलन भी भारतीय राजनीति का हिस्सा है सन् १९६७ में उत्तर प्रदेश में बनी संविदा सरकार के एक घटक जनसंघ के पास क्योंकि कोई हरिजन विधायक नहीं था इसलिए गैर विधायक राम सिंह जाटव को मंत्री बनाया गया। सन् १९९१ में भारतीय जनता पार्टी के पास कोई मुस्लिम विधायक नहीं था तो गैर विधायक रिजवी को मंत्री बनाया गया। बिहार में जे०डी०यू० व बी०जे०पी० गठबंधन की सरकार की शपथग्रहण समारोह में आज तक चैनल ने सभी बनाये गये मंत्रियों की जाति व विधानसभा क्षेत्र भी बताये। इससे यही स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में कोई व्यक्ति कितना धनी व गुणवान ही क्यों न हो अपने धर्म व जाति को ठुकरा कर राजनीति में उन्नति नहीं कर सकता। यदि मनुष्य राजनीति के संसार में ऊपर चढ़ना वाहते हैं तो उन्हें अपने साथ अपनी जाति व धर्म को लेकर चलना ही चाहिए।

संदर्भ

1. लोहिया राम मनोहर, 'जाति प्रथा', नवहिन्द प्रकाशन १६६४ए पृ. ९२
2. दिनकर रामधारी सिंह, 'भारतीय संस्कृति के चार अध्याय', उदियाचल, पटना प्रथम संस्करण मार्च १९५६, पृ. ३२२
3. उद्धृत राठौरए जगदीश सिंह, 'उभरता ग्रामीण नेतृत्व', प्रकाश बुक डिपो, बरेली, १९८२, पृ. ३१
4. अमर उजाला, १० नवम्बर १९८६
5. अमर उजाला, १५ अक्टूबर, १९८९
6. अमर उजाला, 0६ए नवम्बर, १९८९
7. जनसत्ता, मई ०३ मई १९९१
8. अमर उजाला, ०३ मई १९९१
9. रुडोल्फ एल०आई० एण्ड एस० एच० रूडोल्फ 'पॉलिटिकल रोल ऑफ कास्ट एलोसिएक्स पैसीजिक ऐफेयर्स' अंक-३३ १ मार्च १९६०
10. मनु स्मृति श्लोक संख्या।७।३। सप्तम अध्याय। अनुवादक सुरेन्द्र कुमार आर्श साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिलवा।
11. महाभारत शान्ति पर्व उद्धृत सत्यकेतु विद्यालंधर पुस्तक श्प्राचीन भारत की राजनीति और शासन संस्थायें सरस्वती सदन नई दिल्ली, पृ. २३३
12. चौधरी हेमचन्द्र राय, 'प्राचीन भारत का इतिहास', कित्ताब महल इलाहाबाद १९२३, पृ. १५२
13. राजेन्द्र प्रसादए 'आटो बायोग्राफी' प्रभात प्रकाशन सन् २०१०, पृ. ८२
14. सिंह मोहन, सांसद देवरिया के साक्षात्कार के अंश
15. लोहिया राम मनोहर, 'कास्ट सिस्टम इन इण्डिया' नवहिन्द प्रकाशन १९६४, पृ. १७२

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय ज्ञान परंपरा और नैतिक शिक्षा : आधुनिक शिक्षण में प्रयोग

डॉ. अलका सक्सेना
प्रोफेसर शिक्षक शिक्षा विभाग
डी.बी.एस. कॉलेज कानपुर

भास्कर शुक्ला
शोधार्थी शिक्षक शिक्षा विभाग
डी.बी.एस. कॉलेज कानपुर
ईमेल-bksm12267@gmail.com
मो.न.-7522061670

शोधसार

भारतीय ज्ञान परंपरा मानव जीवन को नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से समृद्ध बनाने का अद्वितीय आधार प्रस्तुत करती है। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत और पंचतंत्र जैसे ग्रंथों में जीवन के आदर्शों - सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, परोपकार, करुणा, कर्तव्यनिष्ठा और न्याय का व्यापक वर्णन मिलता है। ये मूल्य न केवल व्यक्ति के नैतिक निर्माण में सहायक हैं बल्कि समाज के संतुलित विकास के लिए भी आवश्यक हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में तकनीकी प्रगति के साथ नैतिक मूल्यों का क्षरण दिखाई देता है, जिससे युवा पीढ़ी में संवेदनशीलता और मानवीय दृष्टिकोण का अभाव बढ़ता जा रहा है। अतः आवश्यक है कि भारतीय ज्ञान परंपरा से प्राप्त नैतिक शिक्षाओं को आधुनिक शिक्षण पद्धतियों में समाविष्ट किया जाए। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) भी मूल्य-आधारित शिक्षा पर बल देती है, जो विद्यार्थियों में जिम्मेदारी, सहानुभूति और सांस्कृतिक बोध का विकास करती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इन मूल्यों का पुनर्पाठ आवश्यक है ताकि तकनीकी युग में पल रही नई पीढ़ी न केवल ज्ञानवान बल्कि नैतिक रूप से सुदृढ़ नागरिक बन सके। इस शोधपत्र में भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार पर नैतिक शिक्षा की अवधारणा को समझाया गया है तथा आधुनिक शिक्षण प्रणाली में इसके प्रयोग, चुनौतियाँ और संभावनाओं का विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा,नैतिक शिक्षा, आधुनिक शिक्षण, मूल्य-आधारित शिक्षा, शिक्षा नीति, चरित्र निर्माण।

पृष्ठभूमि

शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का संचार करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों को सत्य, नैतिकता और मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण बनाना भी है। आधुनिक समय में तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और डिजिटल क्रांति ने जीवनशैली को बदल दिया है। प्रतिस्पर्धा, भौतिकवाद और उपभोक्तावाद के इस दौर में मूल्य और नैतिकता पीछे छूटते जा रहे हैं। इसीलिए शिक्षा प्रणाली के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह है कि विद्यार्थियों को केवल नौकरी पाने योग्य ही नहीं बल्कि जीवन जीने योग्य भी बनाया जाए।

भारत की प्राचीन परंपरा में शिक्षा को सदैव चरित्र निर्माण से जोड़ा गया। तैत्तिरीय उपनिषद में स्पष्ट कहा गया है -

"सत्यं वद, धर्मं चर" अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो (सिंह, 2021)। इसी तरह महात्मा गांधी ने भी शिक्षा का लक्ष्य केवल बुद्धि का विकास नहीं बल्कि आत्मा का विकास माना। अतः नैतिक शिक्षा का आधार भारतीय ज्ञान परंपरा रही है, जिसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पुनः एकीकृत करने की आवश्यकता है (शर्मा, 2023)।

भारतीय ज्ञान परंपरा और नैतिक शिक्षा की जड़ें

वैदिक परंपरा वेद भारतीय सभ्यता का प्राचीनतम ज्ञान स्रोत हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं बल्कि जीवनोपयोगी ज्ञान के भंडार हैं। इनमें प्रकृति के प्रति सम्मान, सत्य की खोज और सामाजिक कर्तव्यों का वर्णन मिलता है। वेदों में "संगच्छध्वं सं वदध्वं" (साथ चलो, साथ बोलो) का संदेश सामूहिक जीवन और सामाजिक नैतिकता को बढ़ावा देता है (सिंह, 2021).

उपनिषद उपनिषदोंमें आत्मा, ब्रह्म और परम सत्य की खोज के साथ नैतिक जीवन पर बल है। ईशोपनिषद कहता है - "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" अर्थात् त्याग के साथ भोग करो (सिंह, 2021). यह उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को संयमित करता है और विद्यार्थियों को संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

भगवद्गीता गीता को "मानव जीवन का मार्गदर्शक" कहा जाता है। इसमें अर्जुन को दिए गए श्रीकृष्ण के उपदेश केवल युद्ध तक सीमित नहीं बल्कि नैतिक जीवन और कर्तव्य की शिक्षा देते हैं। गीता का निष्काम कर्मयोग (फल की आसक्ति के बिना कर्म करना) आधुनिक शिक्षा में नैतिकता का महत्वपूर्ण आधार बन सकता है (राधाकृष्णन, 1948).

बौद्ध और जैन दर्शन गौतम बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग और चार आर्य सत्य के माध्यम से दुःख निवारण और नैतिक जीवन का मार्ग बताया। अहिंसा, करुणा और मध्यम मार्ग बौद्ध नैतिकता के मूल तत्व हैं। जैन दर्शन ने भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को नैतिक जीवन की नींव बताया। ये मूल्य आज भी सार्वभौमिक हैं और विद्यार्थियों को संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा दे सकते हैं (जैन, 2019).

महाकाव्य और नीति ग्रंथ रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य नैतिक शिक्षा के महत्वपूर्ण साधन हैं। रामायण से मर्यादा, आदर्श पुत्र-भक्ति और न्यायप्रियता की शिक्षा मिलती है। महाभारत में धर्म-संकट, कर्तव्य और नैतिक निर्णय लेने की जटिलताओं को दिखाया गया है। पंचतंत्र और हितोपदेश जैसे नीति ग्रंथ सरल कथाओं के माध्यम से बच्चों को नैतिक शिक्षा देते आए हैं (राजकुमार, 2022).

संत साहित्य और भक्ति परंपरा कबीर,तुलसी, सूर, मीरा और अन्य संत कवियों ने भक्ति, सत्य, अहिंसा और प्रेम का संदेश दिया। कबीर का दोहा "साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय; सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय" आज भी विद्यार्थियों के लिए विवेकशीलता और नैतिकता की शिक्षा देता है (द्विवेदी, 2020).

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में नैतिक शिक्षा की स्थिति

आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक और तकनीकी विकास हेतु मानव संसाधन तैयार करना रहा है। ब्रिटिश उपनिवेश काल से शुरू हुई आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने ज्ञान-विज्ञान और भाषा कौशल पर जोर दिया, परंतु नैतिकता और मूल्य शिक्षा धीरे-धीरे पीछे छूट गई। स्वतंत्रता के बाद कई आयोगों और समितियों ने मूल्य-आधारित शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित किया।

डॉ. राधाकृष्णन आयोग (1948-49)रू इस आयोग ने स्पष्ट किया कि शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार उपलब्ध कराना नहीं बल्कि अच्छे नागरिक और चरित्रवान व्यक्ति बनाना होना चाहिए (सरकार, शिक्षा और राष्ट्रीय विकास पर रिपोर्टः कोठारी आयोग, 1966).

कोठारी आयोग (1964-66)रू इसमें कहा गया कि शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय और नैतिक विकास होना चाहिए (सरकार, शिक्षा और राष्ट्रीय विकास पर रिपोर्टः कोठारी आयोग, 1966).

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986रू इसमें मूल्य शिक्षा को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने का सुझाव दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020रू इसमें "मूल्य-आधारित शिक्षा और नैतिक विकास" को प्रत्येक स्तर पर शामिल करने पर बल दिया गया है। नीति ने विद्यालयों में स्वास्थ्य और नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने की सिफारिश की है (सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 2020).

वर्तमान में कई विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में Value Education. Ethics या Environmental Studies जैसे विषयों को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जा रहा है। परंतु व्यवहारिक स्तर पर नैतिक शिक्षा को परीक्षा-उन्मुख दृष्टिकोण से बाहर निकालकर जीवनोपयोगी बनाना अभी भी चुनौती बना हुआ है (शर्मा, 2023).

भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों का आधुनिक शिक्षण में प्रयोग

भारतीय ज्ञान परंपरा में वर्णित सत्य, अहिंसा, त्याग, परोपकार और कर्तव्य जैसे मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। इन्हें आधुनिक शिक्षण प्रणाली में विभिन्न तरीकों से लागू किया जा सकता है (पाठक, 2024).

1. पाठ्यक्रम में समावेश : विद्यालयी शिक्षा में नैतिक शिक्षा को एक अलग विषय की तरह पढ़ाने के बजाय प्रत्येक विषय में इसे समाहित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए :

- हिंदी और संस्कृत साहित्य की कविताएँ/कहानियाँ पढ़ाते समय नैतिक बिंदुओं पर चर्चा।
- विज्ञान पढ़ाते समय प्रकृति संरक्षण और पर्यावरणीय नैतिकता पर बल।
- इतिहास पढ़ाते समय स्वतंत्रता सेनानियों के आदर्शों से प्रेरणा (सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 2020).

2. शिक्षक प्रशिक्षण : शिक्षक केवल ज्ञानदायी नहीं बल्कि मूल्यदायी भी होने चाहिए। यदि शिक्षक स्वयं सत्यनिष्ठ, अनुशासित और सहृदय होंगे तो विद्यार्थी उनके आचरण से अधिक सीखेंगे। इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में मूल्य शिक्षा और भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए (शर्मा, 2023).

3. गतिविधि-आधारित शिक्षण

प्रार्थना सभा : विद्यालय में प्रतिदिन प्रार्थना, नैतिक कथाएँ और प्रेरक प्रसंग सुनाना।

समुदाय सेवा : विद्यार्थियों को सामाजिक सेवा, वृक्षारोपण, सफाई अभियान जैसी गतिविधियों में शामिल करना।

नाट्य और लोककथाएँ : रामायण, महाभारत, पंचतंत्र आदि की कथाओं पर आधारित नाटक और भूमिका-निर्वाह।

योग और ध्यान : शारीरिक-मानसिक संतुलन के लिए योग व ध्यान को विद्यालयी दिनचर्या का हिस्सा बनाना (पाठक, 2024).

4. मूल्य शिक्षा और तकनीक का संयोजन : आज के डिजिटल युग में मूल्य शिक्षा को और प्रभावी बनाने के लिए ICT (सूचना एवं संचार तकनीक) का प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण

- ऑनलाइन मॉड्यूल और वीडियो के जरिए गीता या पंचतंत्र की शिक्षाएँ।
- नैतिक निर्णय पर आधारित ई-गेम्स या सिमुलेशन।
- वर्चुअल कक्षाओं में Ethics Corners बनाकर छात्रों को चर्चाओं में शामिल करना (कुमार, 2023).

केस स्टडी

(क) CBSE में नैतिक शिक्षा केंद्रीय माध्यमिक शिक्षाबोर्ड (CBSE) ने कक्षा 1 से 12 तक के पाठ्यक्रम में Value Education को समाहित किया है। CBSE ने "Value Education Kit" तैयार की है जिसमें कहानियों, गतिविधियों और प्रोजेक्ट्स के माध्यम से विद्यार्थियों को ईमानदारी, सहयोग, सहिष्णुता और करुणा जैसे मूल्यों की शिक्षा दी जाती है (CBSE, 2021).

(ख) विश्वविद्यालय स्तर पर 'वैल्यू एजुकेशन' अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) ने 2017 से इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट कॉलेजों में "Universal Human Values" कोर्स अनिवार्य किया। इसमें छात्रों को मानवीय मूल्यों, नैतिक जिम्मेदारियों और सतत जीवन शैली के विषय पढ़ाए जाते हैं। कई विश्वविद्यालयों ने भी "Ethics in Research", "Professional Ethics" और "Value-based Leadership" जैसे विषय जोड़े हैं (AICTE, 2018).

(ग) अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण जापान में प्राथमिक शिक्षा में Moral Education विषय अलग से पढ़ाया जाता है। वहाँ बच्चों को दैनिक जीवन की नैतिकता (जैसे समय पर आना, सफाई रखना, दूसरों की मदद करना) सिखाई जाती है। इसी तरह फिनलैंड में शिक्षा का उद्देश्य केवल अकादमिक उपलब्धि नहीं बल्कि सामाजिक-नैतिक जिम्मेदारी है। भारत इन उदाहरणों से प्रेरणा लेकर अपनी प्राचीन परंपरा के मूल्यों को आधुनिक प्रणाली में बेहतर ढंग से लागू कर सकता है (AICTE, 2018).

नैतिक शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ

1. वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद : वैश्वीकरण ने शिक्षा और रोजगार के नए अवसर खोले हैं, परंतु इसके साथ प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण भी बढ़ा है। विद्यार्थी अधिकतर करियर और आर्थिक लाभ की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जिससे नैतिक मूल्यों की उपेक्षा होती है (शर्मा, 2023).

2. डिजिटल युग और सोशल मीडिया : डिजिटल तकनीक और सोशल मीडिया ने युवाओं के जीवन को प्रभावित किया है। एक ओर यह ज्ञान-विस्तार का माध्यम है, तो दूसरी ओर इसमें फेक न्यूज, साइबर बुलिंग और ऑनलाइन लत जैसी समस्याएँ भी हैं। नैतिक शिक्षा के बिना डिजिटल साधनों का दुरुपयोग विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डालता है (कुमार, 2023).

3. पारिवारिक और सामाजिक दबाव : आज के समय में परिवारों में भी मूल्य संकट देखा जा रहा है। व्यस्त जीवनशैली, एकल परिवार और अभिभावकों की कामकाजी व्यस्तता ने बच्चों के नैतिक मार्गदर्शन को कमजोर किया है। समाज में फैली भ्रष्टाचार, हिंसा और असमानता की प्रवृत्तियाँ भी विद्यार्थियों के लिए गलत उदाहरण प्रस्तुत करती हैं (पाठक, 2024).

4. शिक्षा का व्यावसायीकरण : शिक्षा संस्थानों में बढ़ती फीस, कोचिंग संस्कृति और परीक्षा-केंद्रित दृष्टिकोण ने शिक्षा को व्यवसाय का रूप दे दिया है। ऐसे वातावरण में नैतिक शिक्षा को गौण समझा जाता है (शर्मा, 2023).

अवसर और संभावनाएँ

1. भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता : भारतीय परंपरा में जो मूल्य (सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग, आत्मसंयम) प्रतिपादित हैं, वे आज भी प्रासंगिक हैं। इन्हें आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पुनः शामिल करने से विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास हो सकता है (सिंह, 2021) (राजकुमार, 2022).

2. नीति समर्थन : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शिक्षा का लक्ष्य केवल ज्ञान और कौशल देना नहीं बल्कि चरित्र निर्माण और नैतिक विकास भी है। इस नीति से मूल्य-आधारित शिक्षा को बढ़ावा देने की संभावना है (पाठक, 2024).

3. तकनीकी का सकारात्मक उपयोग : ICT और डिजिटल साधनों के जरिए नैतिक शिक्षा को अधिक आकर्षक और प्रभावी बनाया जा सकता है।

- नैतिक कथाओं के एनीमेशन वीडियो
- ई-लर्निंग मॉड्यूल और इंटरैक्टिव क्विज़
- ऑनलाइन Ethics Clubs और वर्चुअल संवाद मंच ये पहल युवाओं को उनकी भाषा में नैतिक शिक्षा देने के प्रभावी तरीके हो सकते हैं (कुमार, 2023)।

4. वैश्विक सहयोग : संयुक्त राष्ट्र, यूनेस्को और यूनिसेफ जैसे संगठनों ने शिक्षा में Value-based Education को प्राथमिकता दी है। भारत यदि अपनी ज्ञान परंपरा को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करे तो न केवल अपने विद्यार्थियों के लिए

बल्कि विश्वभर के लिए भी यह उपयोगी सिद्ध हो सकता है (UNESCO, 2019).

5. समुदाय और परिवार की भूमिका : विद्यालय अकेले मूल्य शिक्षा नहीं दे सकता। इसके लिए परिवार और समुदाय को भी सक्रिय भूमिका निभानी होगी। माता-पिता, शिक्षक और समाज के अग्रणी व्यक्ति यदि आदर्श प्रस्तुत करेंगे तो बच्चों पर उसका गहरा प्रभाव पड़ेगा (पाठक, 2024)।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा और नैतिक शिक्षा का संबंध गहरा और अविभाज्य है। वेद, उपनिषद, गीता, जैन-बौद्ध दर्शन, रामायण, महाभारत और संत साहित्य ने सदैव मानवीय मूल्यों को जीवन का आधार माना है। आज जब शिक्षा मुख्यतः प्रतिस्पर्धा और रोजगार पर केंद्रित हो गई है, तब इन मूल्यों का पुनर्पाठ और प्रयोग और भी आवश्यक हो गया है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम, शिक्षक प्रशिक्षण और गतिविधि-आधारित शिक्षण के माध्यम से पुनः स्थापित किया जा सकता है। CBSE और AICTE जैसे संस्थानों के प्रयास इस दिशा में प्रेरणादायक हैं। चुनौतियाँ चाहे वैश्वीकरण, डिजिटल लत या व्यावसायीकरण की हों, परंतु भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक तकनीकी साधनों का संयोजन नैतिक शिक्षा को पुनर्जीवित कर सकता है। इस शोधपत्र का निष्कर्ष यही है कि शिक्षा का लक्ष्य केवल नौकरी योग्य नागरिक तैयार करना नहीं बल्कि नैतिक और जिम्मेदार नागरिक बनाना है। यदि भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित किया जाए तो यह न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व के लिए आदर्श मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।

संदर्भ

- AICTE. (2018). Model Curriculum for Undergraduate Degree Courses in Engineering & Technology. AICTE.
- https://www.jntua.ac.in/wp-content/uploads/2021/01/AICTE-Model-Curriculam-Vol.-I_UG.pdf
- CBSE. (2021). Value Education Kit: A Teacher's Handbook. delhi: CBSE Publication.
- https://cbseacademic.nic.in/web_material/ValueEdu/Value%20Education%20Kits.pdf
- UNESCO. (2019). Education for Sustainable Development Goals: Learning Objectives. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. UNESCO.
- https://stairwaytosdg.eu/images/UNESCO_Education_for_Sustainable_Development_Goals_ENG.pdf
- कुमार, आ. औ. (2023). डिजिटल युग में नैतिक शिक्षाः चुनौतियाँ और समाधान. भारतीय शैक्षिक तकनीकी जर्नल, 34-48.
- https://www.socialsciencejournal.in/assets/archives/2025/vol11issue3/11048.pdf
- जैन, ए. (2019). जैन दर्शनरू मूल सिद्धांत और समकालीन प्रासंगिकता. प्रभात प्रकाशन.
- https://vitragvani.com/uploads/pdfs/hindisearch/Jain_Siddhant_Praveshika_H_searchable_286.pdf
- द्विवेदी, ए. (2020). भारतीय संत-परंपरा और उसका सामाजिक. पउचंबज वाणी प्रकाशन .
- https://www.aksharwartajournal.page/2020/01/parampara-aur-aadhunikata-XlEsz_.html
- पाठक, व. औ. (2024). आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भारतीय ज्ञान परम्परा का समावेश. शिक्षा और समाज , 78-92.
- https://zenodo.org/records/15823852
- राजकुमार, ए. (2022). भारतीय महाकाव्यों में नैतिक शिक्षा के तत्व. मानविकी शोध , 122-125.
- https://jainqq.org/booktext/Jain_Sanskrit_Mahakavyo_Me_Bharatiya_Samaj/023198

- राधाकृष्णन, ए. (1948). The Bhagavadgita- HarperCollins Publishers-
- https://archive.org/download/BhagavadGitaBySRadhakrishnan/Bhagavad% 20Gita% 20by% 20S% 20Radhakrishnan.pdf
- शर्मा, आ. (2023). नैतिक शिक्षाः एक सैद्धांतिक विवेचन. शैक्षणिक अनुसंधान पत्रिका, 45-60.
- https://theresearchdialogue.com/wp-content/uploads/2023/02/03-Pankaj-Kumar-Panday.pdf
- सरकार, भ. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. शिक्षा मंत्रालय.
- https://www.bhu.ac.in/SiteAttachments/Library202361313016101.pdf
- सरकार, भ. (1966). शिक्षा और राष्ट्रीय विकास पर रिपोर्टः कोठारी आयोग. शिक्षा मंत्रालय.
- सिंह, अ. (2021). भारतीय ज्ञान परम्परा एवं शिक्षा. उत्तराखंडः उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय. स्त्रोतः- https://uou-ac-in/downloads/12b/Research-and-Innovation/Research»20Publications/Research» 20Paper» 201» 20-»20Akhilesh» 20Singh.pdf

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में सामाजिक बदलाव : एक समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ. बनुजा मेहेर
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
पंचायत महाविद्यालय, बरगढ़, ओड़िशा

सारांश

इक्कीसवीं सदी का हिंदी सिनेमा भारतीय समाज में हो रहे तीव्र सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों का सशक्त दर्पण बनकर उभरा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, तकनीकी विकास, शहरीकरण और नई पीढ़ी की बदलती मानसिकता ने हिंदी फिल्मों की विषयवस्तु, प्रस्तुति और दृष्टिकोण को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

सिनेमा ने स्त्री सशक्तीकरण, लैंगिक समानता, जाति-वर्ग भेद, शिक्षा, भ्रष्टाचार, राष्ट्रवाद, ग्रामीण-शहरी द्वंद्व, मानसिक स्वास्थ्य तथा पुरुषों की बदलती सामाजिक भूमिकाओं जैसे विषयों को प्रमुखता से उठाया है। उदाहरण के रूप में 'दंगल' (2016) और 'क्वीन' (2014) में महिला आत्मनिर्भरता और परंपरागत सोच के विरुद्ध संघर्ष को दर्शाया गया है। 'पिंक' (2016) ने सहमति जैसे संवेदनशील विषय को मुख्यधारा में लाकर सामाजिक सोच को चुनौती दी। सामाजिक न्याय और शिक्षा की आवश्यकता को 'तारे ज़मीन पर' (2007) तथा 'आर्टिकल 15' (2019) जैसी फिल्मों ने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। वहीं 'थ्री इडियट्स' (2009) ने शिक्षा प्रणाली की खामियों और युवाओं के मानसिक दबाव को उजागर किया। इसके अतिरिक्त नई सदी का सिनेमा यथार्थवाद और विषयगत विविधता की ओर उन्मुख हुआ है जहाँ छोटे शहरों और हाशिए के समुदायों की कहानियाँ भी मुख्यधारा में स्थान पा रही हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म और वैश्विक दर्शक वर्ग के कारण फिल्मों की कथावस्तु अधिक प्रयोगधर्मी और बहुआयामी बनी है। अंततः इक्कीसवीं सदी का हिंदी सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम न रहकर सामाजिक विमर्श का सक्रिय मंच बन गया है जो समाज में जागरूकता उत्पन्न करने, रूढ़ियों को तोड़ने और परिवर्तन की चेतना विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

बीज शब्द—सिनेमा, 21वीं सदी, सामाजिक बदलाव, स्त्री सशक्तिकरण, युवा वर्ग, उदारीकरण, सिक्षा व्यवस्थ, लैंगिक समानता, विमर्श, जन जागरूकता।

प्रस्तावना

एक से अधिक लोगों के समुदाय से मिलकर बने एक बड़े समूह को समाज कहते हैं। जहाँ हर मनुष्य मानवीय क्रिया-कलाप करते हुए परस्पर स्नेह, प्रेम, परोपकार और मेलजोल रखता है। समाज एक परिवर्तनशील व्यवस्था है। इसी समाज में किसी युग के आदर्शों एवं मूल्यों में यदि पिछले युग के मुक़ाबले कुछ नयापन दिखाई पड़े तो उसे हम सामाजिक

परिवर्तन या सामाजिक बदलाव कह सकते हैं। इसके अंतर्गत मनुष्य के सोच विचार, रहन-सहन, तौर-तरीके और संस्कृति आदि का परिवर्तन भी आ जाता है। इन्हीं सामाजिक बदलाव का चित्रण संचार के माध्यमों में निरंतर होता रहता है। जिसमें सिनेमा एक सजीव और सशक्त दृश्य- श्रव्य माध्यम के रूप में उभरा है। निःसंदेह देश के बाल मन से लेकर युवा वर्ग, वृद्ध, महिला, अमीर-गरीब हर किसी को सिनेमा ने अंदर से प्रभावित किया है। इसीलिए समाज के कटु यथार्थ का वर्णन करते हुए समाज को नयी दिशा दिखाने में सिनेमा की अहम भूमिका है। सिनेमा और समाज- दोनों एक- दूसरे के परिपूरक हैं। एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। जिस प्रकार हम साहित्य को समाज का दर्पण कहते हैं उसी प्रकार सिनेमा भी समकालीन भारतीय समाज के परिवर्तनशील स्वरूप का प्रतिबिंब ही नहीं उसका प्रेरक तत्व भी है।

हिंदी सिनेमा जिसे बॉलीवुड के नाम से जाना जाता है आज संचार का सबसे अधिक प्रभावशाली, प्रसिद्ध एवं सशक्त माध्यम है। भारतीय समाज के भावनात्मक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तन का जीवंत दस्तावेज़ रहा है। केवल भारत देश के हर कोने में नहीं, विश्व के कोने -कोने तक बॉलीवुड सिनेमा की धूम मची हुई है। 21वीं सदी में प्रवेश के साथ हिंदी सिनेमा की विषय-वस्तु, शैली, प्रस्तुति तकनीक और दृष्टिकोण में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। यह परिवर्तन केवल मनोरंजन की प्रवृत्ति तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, पहचान, लैंगिक समानता, जाति-विमर्श, राष्ट्रवाद, उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण और डिजिटल क्रांति जैसे व्यापक संदर्भों से जुड़ा हुआ है।

सन 1913 में 'राज्य हरिश्चंद्र' से प्रारंभ हुआ हिंदी सिनेमा कई मोड़ों से होकर गुजरा है। शुरुआती दौर में धार्मिक फिल्मों ने देश की जनता को काफी आकर्षित किया था। फिर ऐतिहासिक व्यक्तित्व एवं घटनाओं का दौर आया। तब भी हिंदी सिनेमा ने लोगों के दिलों में अपना दबदबा बनाए रखा। आजादी के बाद देशभक्ति से ओतप्रोत फिल्मों ने देश के अतीत के प्रति भक्ति एवं अंग्रेजों के लिए आक्रोश भर दिया था। जिससे पूरे भारत देश में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ उठी थी। फिर रोमांटिक फिल्मों का समय आया। कहने का तात्पर्य यह है कि सिनेमा ने समाज को काफी प्रभावित किया है। जनता और समय की मांग के अनुसार निर्देशकों ने फिल्मों का निर्माण किया और दर्शकों द्वारा उसे खूब सराहा भी गया।

आज सामाजिक सिनेमा का दौर रहा है। जिन छोटी-छोटी समस्याओं और मुद्दों पर हमारा विशेष ध्यान नहीं जाता या फिर जिसके बारे में हम बात करने से हिचकते हैं, आज उन पर फिल्में बन रही हैं और यह केवल प्रसिद्धि नहीं बल्कि क्रांति की लहर ला रही हैं। छुआछूत, सामाजिक भेदभाव, जात पात और दहेज प्रथा आदि तो बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं एवं इनकी चर्चा सदियों से राजनीति, साहित्य एवं संगोष्ठी में होती आ रही है। इनके अलावा पिछले ढाई दशकों से मनोविज्ञान संबंधी जटिलताओं को सिनेमा में बखूबी प्रदर्शित किया जा रहा है। एक तरह से इस प्रकार की फिल्मों का निर्माण करते हुए निर्देशकों ने समाज के लोगों की सोच - विचार में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। उनमें आत्मविश्वास को जगाया है तथा हर समस्या को नए रूप, नई दिशा से सोचने के लिए विवश भी किया है। यहाँ कुछ सूक्ष्म, मनोविज्ञान, सामाजिक समस्याओं तथा उनसे जुड़े फिल्मों की चर्चा की जा रही है तथा यह देखने की कोशिश रही है कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा निर्धारण में इनका योगदान कहाँ तक सफल हुआ है।

1. वैश्वीकरण और उदारीकरण से बदलती सामाजिक पहचान

1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद भारत में बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, वैश्विक संस्कृति और प्रवासी जीवन की प्रवृत्ति तेज़ हुई। 21वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में यह प्रभाव हिंदी सिनेमा में स्पष्ट दिखाई देता है। महानगरों की चमक-दमक, एनआरआई जीवन-शैली, विदेशी लोकेशन और उपभोक्तावादी संस्कृति फिल्मों का प्रमुख आकर्षण बने। हिन्दी सिनेमा ने इन परिवर्तनों को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। 'कभी खुशी कभी गम'(2001), 'कल हो ना हो', 'स्वदेश'(2004) आदि फिल्मों में समृद्ध परिवार, आधुनिक जीवन शैली, विदेशी परिवेश को दिखाया है और यह संदेश दिया है कि आधुनिकता को अपनाते हुए भी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव संभव तथा आवश्यक है।

2. शिक्षा प्रणाली पर प्रभाव

21वीं सदी में शिक्षा प्रणाली और करिअर का बोझ एक बड़ी सामाजिक समस्या बनकर सामने आया है।। छात्र-छात्राओं

पर ज्यादा नंबर लाने का दबाव, डिग्री पर आधारित नौकरियां हमारी शिक्षा व्यवस्था को पूरी तरह से निरर्थक सिद्ध करती हैं। किताबी ज्ञान से छात्र - छात्राओं की सोचने समझने की शक्ति सीमित हो जाती है। बाहरी ज्ञान और दुनिया से वे कट से जाते हैं। उन पर माता-पिता द्वारा जबरदस्ती इच्छाओं को लादा जाता है। हिन्दी सिनेमा ने इस संवेदनशीलता को प्रमुखता से उठाया है। 2007 में 'तारे जमीन पर' 2009 में 'थ्री इडियट्स' तथा 'निल बने सन्नाटा' 2019 में 'छिछोरे' जैसी सिनेमाओं ने लोगों की सोच को बदला है। सामाजिक बदलाव की दृष्टि से देखें तो लोग जानने लगे हैं कि अनिच्छा से भरा कार्य कभी सफल नहीं होता। इन फिल्मों ने शिक्षा को केवल अंकों तक सीमित न मानकर जीवन मूल्यों के साथ जोड़ा। एनईपी 2020 के अंतर्गत हमारी शिक्षा प्रणाली में कई सुधार के कारणों में से एक कारण हिन्दी सिनेमा भी है।

3. हिंदी भाषा के प्रति लोगों की दृष्टि

पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से भारतीय जनता इस कदर प्रभावित हुई है कि अपनी भाषा, संस्कृति, पहनावे को अपनाने में भी उसके मन में शर्म की भावना उत्पन्न हो रही है। इस श्रेणी में हिंदी भाषा के प्रति लोगों के मन में शर्मिंदगी को देखते हुए बॉलीवुड ने 2012 में 'इंग्लिश विंगलिश', 2017 में 'हिंदी मीडियम' और 2020 में 'अंग्रेजी मीडियम' जैसी फिल्मों का निर्माण किया है। पाश्चात्य भाषा और संस्कृति को अपनाकर दिखावे की प्रवृत्ति आज हमारे समाज में खासकर युवाओं को अधिक पथभ्रष्ट कर रही है। अमानवीयता के किस हद तक वह पहुँच सकता है यह इन फिल्मों ने अभिव्यक्त किया है। उसी प्रकार 'अंग्रेजी मीडियम' में पाश्चात्य संस्कृति के प्रति लोगों के झुकाव को भावुक रूप से प्रस्तुत किया गया है। भले ही अब भी लोगों के मन में अपनी संस्कृति के प्रति शत-प्रतिशत श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई है। फिर भी इन फिल्मों ने लोगों के मन में एक प्रश्न चिन्ह अवश्य छोड़ा है।

4. नारी सशक्तिकरण और लैंगिक समानता

21 वीं सदी का हिन्दी सिनेमा स्त्री विमर्श का सशक्त माध्यम बन रहा है। स्त्री अब केवल प्रेमिका या सहायक भूमिका तक सीमित नहीं रही, बल्कि कथा की धुरी बन गई है। उसके व्यक्तित्व में आत्मनिर्भरता,स्वायत्तता और आत्मसम्मान की भावना को खास देखा जा सकता है। 'क्वीन'(2014), 'पिंक'(2016), 'दंगल'(2016), 'थप्पड़'(2020) जैसी फिल्मों ने स्थापित किया कि नारी केवल त्याग और समर्पण का प्रतीक नहीं है बल्कि स्वतंत्र विचार एवं निर्णय की भी अधिकारिणी है।

इनके अतिरिक्त स्त्री संबंधी अन्य प्राकृतिक समस्याओं को भी सिनेमा ने बड़ी सहजता से प्रस्तुत कर समाज के विचारों को बदला है। उनमें माहवारी की समस्या प्रमुख है। जिसके ना होने से ही कठिनाई पैदा हो जाती है। परंतु ग्रामीण इलाकों, कस्बों तो दूर की बात है शहरों में भी माहवारी के बारे में बात करना लज्जाजनक माना जाता है। ऐसी स्थिति में गाँव की महिलाओं में इससे संबन्धित साफ- सफाई के खास ज्ञान की कमी देखी गई है। इस मानसिकता को बदलते हुए हिंदी सिनेमा ने 2018 में 'पैडमैन' का निर्माण कर जैसे एक क्रांति ला दी थी। वैसे तो यह फिल्म व्यक्ति विशेष और सच्ची घटना पर ही आधारित है परंतु इसने समाज के लोगों को काफी प्रभावित किया है। उनकी सोच में परिवर्तन होने के साथ-साथ माहवारी के दौरान स्वच्छता के प्रति भी जागरूक किया है। लोगों को यह बताने का प्रयास किया गया है कि यह समस्या प्राकृतिक है एवं इसमें लड़कियों का या महिलाओं का कोई दोष नहीं है। इसी कड़ी में फिल्मों ने स्त्रियों की शारीरिक असुंदरता, मोटापन, प्रजनन अक्षमता आदि समस्याओं के प्रति जागृति भी लाई है।

दूसरी तरफ लड़कियों की प्रतिभा के प्रति घर और समाज का ध्यान नहीं जाता। यह सोचते हैं लड़कियां हैं अधिक से अधिक क्या कर लेंगी। बॉलीवुड ने 2017 में 'सीक्रेट सुपरस्टार' जैसी सिनेमा के जरिए लड़कियों की प्रतिभा और इच्छा को पंख दिया है ताकि वह भी अपनी उड़ान भर सके। इसी सिनेमा में नारी शोषण एवं घरेलू हिंसा के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई है। पिछले कुछ दशकों से लड़कियों पर एसिड हमले के किस्से बढ़ते जा रहे हैं। जहां पीड़िता शारीरिक कष्ट के साथ -साथ लोगों के लांछनों और बातों से मानसिक रूप से भी तड़पती रहती है। उसे आगे की जिंदगी शून्य लगने लगती है। हिंदी सिनेमा में 2020 में 'छपाक' के जरिए इस समस्या के प्रति भी लोगों की सोच को बदलने का प्रयास किया है। सच्ची घटनाओं पर आधारित इस फिल्म ने पीड़ितों को आत्मसम्मान, हिम्मत, निडर होकर आगे की जिंदगी जीने के लिए

प्रेरित किया है।

5. सामाजिक कुरीतियाँ और जन जागरूकता

प्राचीन काल से सामाजिक कुरीतियां समाज को अंदर ही अंदर खोखला करता रहा है। आज अत्याधुनिक युग में अंतरिक्ष और चाँद पर पहुँचने के बाद भी आज का मानव दोहरी जिंदगी जीते हुए द्वन्द्व में दिखाई देता है। एक तरफ विज्ञान को मानकर उसे सिरोधार्य कर रहा है तो दूसरी तरफ व्याप्त सामाजिक कुरीति-रिवाजों को छोड़ नहीं पा रहा। ऐसा नहीं है कि हर रीति और नीति गलत होती है परंतु जिनसे मनुष्य असहज होता है या फिर जो उसके विकास में बाधा उत्पन्न करता है कम से काम उनके प्रति पुनः सोचने का समय है।

आज हर जगह स्वच्छता को लेकर चर्चाएं हो रही हैं। वैसे तो देखने और सोचने पर यह समस्या मनुष्य के मस्तिष्क में आती ही नहीं परंतु स्वच्छता जब से 'भारत स्वच्छ अभियान' के रूप में परिणत हुई है तब से घर-घर, गली-गली, गांव, सड़क हर जगह स्वच्छता को लेकर चर्चाएं हो रही हैं। हिंदी सिनेमा ने स्वच्छता, स्वास्थ्य और सामाजिक वर्जनाओं पर खुलकर विचार प्रस्तुत किया है। 2017 में श्टॉयलेटरू एक प्रेम कथाश सिनेमा ने स्वच्छता को लेकर काफी जागरूकता लाई है। ग्रामीण स्वच्छता और शौचालय की आवश्यकता पर इस सिनेमा ने सरकारी अभियानों को सामाजिक समर्थन प्रदान किया है। 'पैडमैन' भी जन जागरूकता को लेकर बनी है।

इसी कड़ी में ऑनर किलिंग की समस्या बहुत बड़ी है। यह देश में प्रेम, स्नेह, ममता, सौहार्द, सहानुभूति, सहनशीलता जैसे गुणों के अभाव को और बढ़ाने का कार्य करती है। यह समस्या मानवाधिकारों के उल्लंघन के साथ साथ गरिमा के साथ जीने के अधिकार का उल्लंघन करती है। भारतीय संविधान में इसके विरुद्ध कड़ी सजा होने के बावजूद भी ऑनर किलिंग की समस्या बढ़ती चली जा रही है। प्रेम करने वाले जोड़ों के प्रति लोगों की हीन दृष्टि या सोच ऊंच-नीच तथा जात पात के कारण ही है। इसी कड़ी में बॉलीवुड ने 2011 में 'खाप' 2015 में 'रहस्य', 'तलवार' और 'NH10' तथा 2018 में 'धड़क' सिनेमा के जरिये इस समस्या के खिलाफ लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया है। ऑनर किलिंग के नतीजों के प्रति दृष्टि आकर्षित करते हुए लोगों की सोच को बदलने की कोशिश भी की गई है।

6. धर्म के प्रति जागरूकता

भारत धर्म प्रधान देश होने के बावजूद यहां धर्म को लेकर कई ठेकेदार अपनी कमाई चला रहे हैं और भोली भाली जनता इससे अनभिज्ञ है। धर्म के नाम पर अंधविश्वास, झूठ, फरेब, लालच की कोई कमी नहीं है। लोगों की इस सोच को परिवर्तन करने की दिशा में हिंदी सिनेमा में 2012 में 'ओ माई गॉड' तथा 2014 में 'पी के' मूवी ने खासी योगदान दिया है। धर्म के ठेकेदारों द्वारा ईश्वर के नाम पर की जा रही धांधलियों पर यह सिनेमा तीखा व्यंग्य करती है। यह ऐसी फिल्म है जो आज के दौर को बखूबी बयान करती है। आज धर्म के नाम पर अपनी गाढ़ी कमाई करने वाले लोग सलाखों के पीछे जा रहे हैं। उनकी कटु सच्चाई लोगों के सामने धीरे-धीरे खुल रही है। आज लोग भूखे बच्चे की जगह मंदिरों मे पत्थर की मूर्ति पर दूध उंडेल रहे हैं। एक तरह से सिनेमा का ही योगदान है कि लोगों की सोच में इतना बड़ा परिवर्तन आ सका है अन्यथा भारत जैसे धर्म प्रधान देश में यह कतई संभव नहीं हो सकता था। यह निर्देशक, लेखक की ऊंची सोच का परिणाम भी है कि वे जनता की हृदय में जमी अनैतिक धार्मिक सोच से लोगों को जगा सके हैं।

7. बायोपिक और वास्तविक घटनाएँ

21वीं सदी में जीवनीपरक फिल्मों का चलन बढ़ा। 2012 की 'पान सिंह तोमर', 2013 की 'भाग मिलखा भाग', 2014 की 'मेरी कॉम', 2016 की 'दंगल' और 'एम एस धोनी : द अनटोल्ड स्टोरी' में महिला पहलवानों, खिलाड़ियों के संघर्ष और सफलता की कहानी है। वहीं 'नीरजा' (2016) में साहस और बलिदान का चित्रण है। इन फिल्मों ने वास्तविक जीवन के नायकों को जन-चेतना में स्थापित किया और प्रमाणित किया कि संघर्ष, मेहनत और आत्मविश्वास से साधारण व्यक्ति भी असाधारण उपलब्धि हासिल कर सकता है। वास्तविक घटनाओं पर बनी फिल्मों में 'उरी : द सर्जिकल स्ट्राइक'(2019) और '83' (2021) ने समाज में प्रेरणा, आत्मबल और राष्ट्रीय गौरव की भावना को बढ़ाया है।

8. पुरुष मुद्दों का प्रतिपादन

हिन्दी सिनेमा ने पुरुषों से जुड़ी सामाजिक, मानसिक और आर्थिक चुनौतियों को भी गंभीरता से चित्रित किया है। आधुनिक समाज में पुरुषों पर करिअर की प्रतिस्पर्धा, आर्थिक जिम्मेदारियाँ, पारिवारिक अपेक्षाएं और सफलता का निरंतर दबाव बढ़ रहा है। साथ ही भावनात्मक अभिव्यक्ति की कमी और मानसिक स्वास्थ्य जैसे मुद्दे भी उभरकर सामने आये हैं। 'छिछोरे' में करिअर और असफलता का दबाव, 'कबीर सिंह'(2019) में विषाक्त पुरुषत्व, 'बधाई हो' (2022) में आर्थिक दबाव और मध्यवर्गीय संघर्ष आदि जटिलताओं को कथा और चरित्रों के द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

इनके अतिरिक्त गंजेपन और पुरुष संबंधी अन्य प्राकृतिक मुद्दों को भी हिन्दी सिनेमा ने सहजता से चित्रित किया है। प्रदूषण, तनाव के बीच लोगों की मानसिक शक्ति के साथ-साथ शारीरिक क्षय भी होता जा रहा है। इस दृष्टि से आज गंजेपन की समस्या प्रमुख बनी हुई है। कम उम्र में ही युवा वर्ग गंजेपन का शिकार हो रहे हैं। इससे उन्हें कई मानसिक परेशानियाँ झेलनी पड़ती है। आज अगर देखें तो कई होम्योपैथी, एलोपैथी डॉक्टरों की कमाई इसी आधार पर हो रही है। हिंदी सिनेमा ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए बड़े ही सुंदर ढंग से 2019 में ही श्बालाश, श्उजड़ा चमनश और श्गोन केशश जैसी फिल्मों का निर्माण कर बालों की समस्या को अहम बना दिया है। वैसे तो किसी गंजे आदमी या फिर झड़ते बालों को देखकर सुनकर हम उनका मजाक उड़ाते हैं परंतु सिनेमा ने लोगों के विचारों को बदलने की कोशिश की है कि बाल की समस्या या गंजेपन की समस्या कोई बीमारी नहीं है। जिस प्रकार काला या गोरा होना, छोटा या नाटा होने में मनुष्य की कोई हाथ नहीं है उसी प्रकार बाल ना होने में भी उसकी कोई गलती नहीं है। अतः इससे आत्मविश्वास खोना अपने आप को सजा देने के बराबर है।

9. जाति, वर्ग और पहचान का विमर्श

नई सदी में फिल्मों ने सामाजिक असमानता, जातीय संरचना, वर्गीय असमानताओं और पहचान के प्रश्नों को स्पष्ट और निर्भीकता से प्रस्तुत की है। 'आर्टिकल 15'(2019) ने भारतीय संविधान के समानता के सिद्धांत और ग्रामीण भारत की जातिगत विषमताओं के बीच के अंतर को उजागर किया है। 'लक्ष्मी'(2014) में किन्नर समुदाय के अधिकार, शोषण और संघर्ष को उजागर करते सामाजिक स्वीकृति की ओर कदम बढ़ाया गया है।

सारांश रूप में कह सकते हैं कि समाज की समस्याएं निरंतर चलती रहती हैं। मनुष्य है तो समाज है और समाज है तो समस्याएं अवश्य होंगी। परंतु कोशिश यह रहनी चाहिए कि किसी न किसी माध्यम से, किसी ना किसी तरीके से उन समस्याओं के प्रति लोगों की दृष्टि और सोच को सकारात्मक रखी जाए। जिससे मनुष्य समाज में एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति बनी रहे। आज इंटरनेट और डिजिटल तकनीक के प्रसार ने फिल्म-निर्माण और वितरण प्रणाली को बदल दिया है। ओटीटी प्लेटफॉर्म जैसे नेटफलिक्स और ऐमज़ान प्राइम विडिओ ने वैकल्पिक विषयों और प्रयोगधमी सिनेमा को मंच दिया। अब दर्शक विविध विषयों जैसे अपराध, राजनीति और सामाजिक यथार्थ पर आधारित सामग्री देख पा रहे हैं। इससे सिनेमा अधिक लोकतांत्रिक और बहुआयामी बना है। काफी हद तक समाज में हुए परिवर्तनों और सकारात्मक सोच के लिए बॉलीवुड सिनेमा सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओझा, अनुपम, भारतीय सिने– सिद्धांत, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2002
2. खरे, विष्णु, सिनेमा पढ़ने के तरीके, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, 2010
3. दुबे, विवेक, हिन्दी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2001
4. www.apnimaati.com/2024/12/blog-post_362.html

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

झारखंड राज्य के राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का अध्ययन

डॉ. सुबोध कुमार
सहायक प्राध्यापक, आरटीसी बी. एड. महाविद्यालय रांची, झारखंड
रांची विश्वविद्यालय रांची
Email ID - subodhkr475@gmail.com

सार

वर्तमान वैश्विक एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जा रहा है। समग्र शिक्षा (Holistic Education) एवं मूल्य-आधारित शिक्षण (Value-Based Education) इसी दिशा में महत्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं, जो विद्यार्थियों के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक एवं भावनात्मक विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य झारखंड राज्य के राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का विश्लेषण करना है।

यह अध्ययन वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति पर आधारित है। अध्ययन हेतु राँची जिले के 4 माध्यमिक विद्यालयों (2 सरकारी एवं 2 निजी) से कक्षा IX एवं X के 120 विद्यार्थियों तथा 25 शिक्षकों का चयन किया गया। आंकड़ा संकलन के लिए विद्यार्थियों हेतु संरचित प्रश्नावली एवं शिक्षकों हेतु अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया। संग्रहित आंकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत, माध्य, मानक विचलन एवं ज-परीक्षण के माध्यम से किया गया।

अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ कि अधिकांश विद्यालयों में समग्र शिक्षा की अवधारणा को पाठ्यक्रम एवं सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों के माध्यम से लागू किया जा रहा है। लगभग 70% विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों, अनुशासन एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना में सकारात्मक परिवर्तन देखा गया। सरकारी एवं निजी विद्यालयों के बीच मूल्य-आधारित शिक्षण के प्रभाव में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया। शिक्षकों ने भी यह स्वीकार किया कि मूल्य-आधारित शिक्षण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि माध्यमिक स्तर पर समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण विद्यार्थियों के नैतिक एवं सामाजिक विकास में प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं। तथापि, शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं संसाधनों की उपलब्धता को और सुदृढ़ किए जाने की आवश्यकता है। यह अध्ययन नीति-निर्माताओं, शिक्षकों एवं विद्यालय प्रशासन के लिए उपयोगी दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

कुंजी शब्द : समग्र शिक्षा, मूल्य-आधारित शिक्षण, माध्यमिक विद्यालय, नैतिक विकास, सामाजिक उत्तरदायित्व, राँची

जिला, झारखंड, सर्वांगीण विकास

प्रस्तावना

शिक्षा मानव सभ्यता के विकास का मूल आधार है। यह केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व, चरित्र और सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्माण का माध्यम भी है। समय के साथ शिक्षा की अवधारणा में व्यापक परिवर्तन हुआ है। पूर्वकाल में शिक्षा का उद्देश्य मुख्यतः बौद्धिक विकास तक सीमित था, परंतु आधुनिक युग में शिक्षा को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का साधन माना जाता है। इसी संदर्भ में "समग्र शिक्षा" तथा "मूल्य-आधारित शिक्षण" की अवधारणाएँ विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठी हैं।

समग्र शिक्षा (Holistic Education) का आशय ऐसी शिक्षा से है जो शिक्षार्थी के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास को समान रूप से महत्व देती है। यह दृष्टिकोण विद्यार्थियों को केवल परीक्षा-उन्मुख ज्ञान प्रदान करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उन्हें जीवन के विविध आयामों के लिए तैयार करता है। माध्यमिक स्तर पर यह दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यही वह अवस्था है जब किशोरावस्था में प्रवेश कर रहे विद्यार्थियों का व्यक्तित्व तीव्र गति से विकसित होता है।

वर्तमान समय में समाज अनेक नैतिक एवं सामाजिक चुनौतियों का सामना कर रहा है। प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद, डिजिटल मीडिया का प्रभाव तथा पारिवारिक संरचना में परिवर्तन ने विद्यार्थियों के दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रभावित किया है। ऐसी स्थिति में विद्यालयों की भूमिका केवल शैक्षणिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रह सकती। विद्यालयों को विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों जैसे सत्यनिष्ठा, अनुशासन, सहिष्णुता, सहयोग, करुणा एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना आवश्यक है। मूल्य-आधारित शिक्षण इसी आवश्यकता की पूर्ति का माध्यम है।

मूल्य-आधारित शिक्षण (Value-Based Education) शिक्षा की वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विद्यार्थियों में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का विकास किया जाता है। यह शिक्षण केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि व्यवहारिक गतिविधियों, अनुभवात्मक अधिगम तथा सहभागितापूर्ण क्रियाकलापों के माध्यम से विद्यार्थियों को मूल्यों को आत्मसात करने का अवसर प्रदान करता है। प्रार्थना सभा, सामुदायिक सेवा, समूह चर्चा, नाटक, खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा परियोजना कार्य जैसे माध्यम मूल्य-आधारित शिक्षण को प्रभावी बनाते हैं।

भारत में विभिन्न शैक्षिक नीतियों एवं आयोगों ने शिक्षा के मानवीय एवं नैतिक पक्ष पर बल दिया है। विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समग्र विकास, जीवन-कौशल, नैतिक शिक्षा तथा अनुभवात्मक अधिगम को शिक्षा का अभिन्न अंग माना गया है। नीति में यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगारोन्मुख दक्षता प्रदान करना नहीं, बल्कि उत्तरदायी एवं संवेदनशील नागरिकों का निर्माण करना है। माध्यमिक स्तर पर यह उद्देश्य और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

झारखंड राज्य के राँची जिले के संदर्भ में यह विषय विशेष महत्व रखता है। राँची जिला शैक्षिक दृष्टि से विविधता वाला क्षेत्र है, जहाँ सरकारी एवं निजी दोनों प्रकार के विद्यालय संचालित हैं। यहाँ विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। इस विविधता के कारण समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण के प्रभाव का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है, ताकि यह ज्ञात हो सके कि क्या इन अवधारणाओं का प्रभाव सभी वर्गों के विद्यार्थियों पर समान रूप से पड़ रहा है।

माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को केवल शैक्षणिक दक्षता तक सीमित न रखकर उन्हें सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से भी सशक्त बनाना है। यदि विद्यालयों में सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों, खेल-कूद, कला, संगीत तथा सामुदायिक सहभागिता को महत्व दिया जाए, तो विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता एवं सहयोग भावना का विकास होता है। इसी प्रकार, मूल्य-आधारित शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों में अनुशासन, सहिष्णुता एवं उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।

यद्यपि नीति स्तर पर समग्र एवं मूल्य-आधारित शिक्षा पर बल दिया जा रहा है, तथापि वास्तविक क्रियान्वयन की स्थिति का वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है। क्या विद्यालयों में इन अवधारणाओं को व्यवस्थित रूप से लागू किया जा रहा है? क्या शिक्षक इस दिशा में पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हैं? क्या विद्यार्थियों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है? इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना इस अध्ययन की प्रमुख प्रेरणा है।

राँची जिले के चयनित माध्यमिक विद्यालयों में इस अध्ययन के माध्यम से समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति पर आधारित है, जिसके माध्यम से विद्यार्थियों एवं शिक्षकों से प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य न केवल वर्तमान स्थिति का आकलन करना है, बल्कि यह भी जानना है कि इन शैक्षिक अवधारणाओं का विद्यार्थियों के नैतिक एवं सामाजिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

समग्र शिक्षा की अवधारणा यह मानती है कि शिक्षा जीवन के लिए है, केवल परीक्षा के लिए नहीं। यदि विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का विकास नहीं होता, तो शिक्षा अधूरी रह जाती है। इसलिए विद्यालयों को ऐसा वातावरण प्रदान करना चाहिए जहाँ विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से विचार व्यक्त कर सकें, सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकें तथा अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

इस अध्ययन का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह झारखंड राज्य के राँची जिले के संदर्भ में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इससे प्राप्त निष्कर्ष न केवल स्थानीय स्तर पर उपयोगी होंगे, बल्कि अन्य क्षेत्रों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

अतः प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का विश्लेषण करना तथा विद्यार्थियों के नैतिक एवं सामाजिक विकास पर उसके प्रभाव का परीक्षण करना है। यह अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में शिक्षा को केवल ज्ञान-प्रदाय की प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जा सकता। इसे मानव मूल्यों के संवर्धन और सामाजिक समरसता के निर्माण का माध्यम बनाना आवश्यक है। माध्यमिक विद्यालय इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी संदर्भ में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का वैज्ञानिक परीक्षण प्रस्तुत करता है।

उद्देश्य

1. झारखंड राज्य के राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का विश्लेषण करना।
3. समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों के नैतिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का परीक्षण करना।

साहित्य समीक्षा

1. समग्र शिक्षा का दार्शनिक एवं वैचारिक आधार

प्रस्तावना में वर्णित समग्र शिक्षा की अवधारणा का दार्शनिक आधार भारतीय शिक्षा-चिंतन में निहित है। स्वामी विवेकानंद (1893) ने शिक्षा को व्यक्ति की आंतरिक शक्तियों के विकास का माध्यम माना। उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य केवल बौद्धिक उन्नति नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण है।

इसी प्रकार महात्मा गांधी (1937) ने 'नई तालीम' के माध्यम से श्रम, नैतिकता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व को शिक्षा का अभिन्न अंग बताया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1917) ने शिक्षा को प्रकृति, कला और मानवीय संवेदनाओं से जोड़ते हुए उसे

जीवन-केंद्रित बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। इन विचारों से स्पष्ट है कि समग्र शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं नैतिक विकास का संतुलित समन्वय है, जो आपकी प्रस्तावना में वर्णित सर्वांगीण विकास की अवधारणा को वैचारिक आधार प्रदान करता है।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ और समग्र विकास

प्रस्तावना में उल्लिखित वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य को नीतिगत समर्थन प्राप्त है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 में अनुभवात्मक अधिगम, जीवन-कौशल एवं मूल्य-शिक्षा को विद्यालयी शिक्षा का आवश्यक अंग माना गया।

इसके अतिरिक्त शिक्षा मंत्रालय द्वारा घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में बहुआयामी विकास (Holistic Development) को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बताया गया है। नीति के अनुसार शिक्षा केवल परीक्षा-उन्मुख न होकर जीवन-उन्मुख होनी चाहिए। यह नीति-परिप्रेक्ष्य आपकी प्रस्तावना में वर्णित इस तर्क को पुष्ट करता है कि समग्र शिक्षा वर्तमान समय की अनिवार्य आवश्यकता है।

3. मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता

प्रस्तावना में उल्लिखित मूल्य-संकट एवं सामाजिक विघटन की समस्या को ध्यान में रखते हुए मूल्य-आधारित शिक्षण पर अनेक शोध किए गए हैं। विभिन्न अध्ययनों (त्रिपाठी, 2016; शर्मा, 2018; सिंह, 2019) से यह सिद्ध हुआ है कि नैतिक शिक्षा कार्यक्रमों से विद्यार्थियों के व्यवहार, अनुशासन एवं सामाजिक सहभागिता में सकारात्मक परिवर्तन होता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्को (2015) ने शिक्षा को सतत विकास लक्ष्यों से जोड़ते हुए नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों को शिक्षा का अनिवार्य घटक माना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मूल्य-आधारित शिक्षण केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि वैश्विक शैक्षिक विमर्श का भी महत्वपूर्ण भाग है।

4. ESI (Educational, Social, Institutional) दृष्टिकोण से प्रभावशीलता

समग्र शिक्षा की प्रभावशीलता को ESI (Educational, Social, Institutional) दृष्टिकोण से समझा जा सकता है

Educational Impact: शोध बताते हैं कि समग्र शिक्षा अपनाने वाले विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि एवं आलोचनात्मक चिंतन क्षमता में वृद्धि होती है।

Social Impact: महात्मा गांधी के विचारों के अनुरूप शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण का माध्यम है। मूल्य-आधारित शिक्षण से सामाजिक सद्भाव एवं सहिष्णुता विकसित होती है।

Institutional Impact: केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (2021) ने विद्यालयों में नैतिक वातावरण निर्माण एवं सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों को बढ़ावा देने की अनुशंसा की है। यह दृष्टिकोण आपकी प्रस्तावना में वर्णित विद्यालयी वातावरण एवं शिक्षक की भूमिका के महत्व को सैद्धांतिक समर्थन प्रदान करता है।

5. झारखंड एवं राँची जिले के संदर्भ में शोध-अंतर

प्रस्तावना में वर्णित झारखंड की सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि समग्र शिक्षा का स्थानीय स्तर पर विश्लेषण किया जाए। झारखंड शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (2021) की रिपोर्टों में शिक्षा की गुणवत्ता सुधार की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है, किंतु राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता पर समेकित अध्ययन सीमित हैं।

यही शोध-अंतर प्रस्तुत अध्ययन की प्रासंगिकता एवं आवश्यकता को सिद्ध करता है।

अनुसंधान विधि

1. अनुसंधान रूपरेखा (Research Design)

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक सर्वेक्षण अनुसंधान रूपरेखा (Descriptive Survey Research Design) पर आधारित

है। इस रूपरेखा का चयन इसलिए किया गया क्योंकि अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की वर्तमान स्थिति तथा उसके प्रभाव का विश्लेषण करना है। अध्ययन में मात्रात्मक (Quantitative) एवं गुणात्मक (Qualitative) दोनों दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया।

2. अध्ययन क्षेत्र (Locale of the Study)

यह अध्ययन झारखंड राज्य के राँची जिले के चयनित माध्यमिक विद्यालयों में संचालित किया गया। राँची जिला सामाजिक एवं शैक्षिक विविधता वाला क्षेत्र है, जहाँ सरकारी एवं निजी दोनों प्रकार के विद्यालय संचालित हैं।

3. जनसंख्या (Population)

अध्ययन की जनसंख्या में राँची जिले के सभी माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा IX एवं X के विद्यार्थी तथा संबंधित शिक्षक सम्मिलित थे।

4. नमूना एवं नमूना चयन विधि (Sample and Sampling Technique)

अध्ययन हेतु कुल 4 माध्यमिक विद्यालयों (2 सरकारी एवं 2 निजी) का चयन किया गया।

इन विद्यालयों से कक्षा IX एवं X के कुल 120 विद्यार्थियों का चयन सरल यादृच्छिक नमूना विधि (Simple Random Sampling Technique) द्वारा किया गया।

इसके अतिरिक्त 25 शिक्षकों का चयन उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन (Purposive Sampling) के आधार पर किया गया।

5. अनुसंधान उपकरण (Tools of Data Collection)

अध्ययन में निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया गया

विद्यार्थियों हेतु संरचित प्रश्नावली

शिक्षकों हेतु अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार अनुसूची

अवलोकन प्रपत्र

मूल्य-आधारित व्यवहार मापन स्केल

उपकरणों की वैधता एवं विश्वसनीयता

उपकरणों की सामग्री वैधता (Content Validity) विषय विशेषज्ञों द्वारा सुनिश्चित की गई।

विश्वसनीयता (Reliability) परीक्षण हेतु पायलट अध्ययन किया गया तथा Cronbach's Alpha विधि का उपयोग किया गया।

6. आंकड़ा संकलन प्रक्रिया (Data Collection Procedure)

विद्यालय प्रशासन से औपचारिक अनुमति प्राप्त कर निर्धारित समयावधि में आंकड़ों का संकलन किया गया। विद्यार्थियों को अध्ययन के उद्देश्य से अवगत कराकर प्रश्नावली भरवाई गई। शिक्षकों के साक्षात्कार व्यक्तिगत रूप से लिए गए। अध्ययन में नैतिक मानकों (Ethical Considerations) का पालन किया गया तथा प्रतिभागियों की गोपनीयता सुनिश्चित की गई।

7. आंकड़ा विश्लेषण (Statistical Analysis)

संग्रहित मात्रात्मक आंकड़ों का विश्लेषण निम्न सांख्यिकीय तकनीकों द्वारा किया गया

प्रतिशत (Percentage)

माध्य (Mean)

मानक विचलन (Standard Deviation)

t-परीक्षण (t-test)

गुणात्मक आंकड़ों का विश्लेषण विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis) द्वारा किया गया। परिकल्पनाओं का परीक्षण 0.05 स्तर की महत्वपूर्णता (Level of Significance) पर किया गया।

8. नैतिक विचार (Ethical Considerations)

अध्ययन में सभी प्रतिभागियों की स्वैच्छिक भागीदारी सुनिश्चित की गई। उनसे पूर्व सहमति प्राप्त की गई तथा उनके उत्तरों की गोपनीयता बनाए रखी गई।

परिणाम एवं चर्चा

अध्ययन में झारखंड राज्य के राँची जिले के चार चयनित माध्यमिक विद्यालयों (दो सरकारी एवं दो निजी) से 120 विद्यार्थियों एवं 25 शिक्षकों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। प्रथम उद्देश्य के अंतर्गत समग्र शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन किया गया। विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश विद्यालयों में शैक्षणिक गतिविधियों के साथ-साथ सह-पाठ्यक्रम एवं सह-शैक्षणिक गतिविधियों का संतुलित समावेश किया जा रहा है। लगभग 74% विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया कि विद्यालय में खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, नैतिक शिक्षा तथा समूह गतिविधियाँ नियमित रूप से आयोजित की जाती हैं। माध्य स्कोर अपेक्षाकृत उच्च पाया गया, जो यह दर्शाता है कि समग्र शिक्षा की अवधारणा विद्यालयों में व्यवहारिक रूप से लागू हो रही है। सरकारी एवं निजी विद्यालयों के मध्य तुलना करने पर सांख्यिकीय विश्लेषण से कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि दोनों प्रकार के विद्यालयों में समग्र शिक्षा का क्रियान्वयन लगभग समान स्तर पर है।

द्वितीय उद्देश्य के अंतर्गत मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का परीक्षण किया गया। विद्यार्थियों के उत्तरों से यह स्पष्ट हुआ कि लगभग 70% विद्यार्थियों ने विद्यालय में अनुशासन, ईमानदारी, सहयोग तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों के विकास पर विशेष बल दिए जाने की पुष्टि की। शिक्षकों के साक्षात्कार से भी यह ज्ञात हुआ कि प्रार्थना सभा, सामुदायिक सेवा कार्यक्रम, समूह चर्चा एवं परियोजना कार्य के माध्यम से विद्यार्थियों में मूल्यों के विकास का प्रयास किया जा रहा है। सांख्यिकीय परीक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि सरकारी एवं निजी विद्यालयों के मध्य मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

तृतीय उद्देश्य के अंतर्गत समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण का विद्यार्थियों के नैतिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया। परिणामों से यह ज्ञात हुआ कि लगभग 68% विद्यार्थियों में सहयोग, अनुशासन, नेतृत्व क्षमता तथा सामाजिक सहभागिता में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ। शिक्षकों ने भी यह माना कि समग्र शिक्षा की गतिविधियाँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध हो रही हैं। समग्र रूप से परिणाम यह संकेत करते हैं कि माध्यमिक स्तर पर समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सकारात्मक भूमिका निभा रहे हैं।

चर्चा

अध्ययन से प्राप्त परिणाम यह संकेत करते हैं कि झारखंड राज्य के राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की अवधारणा को व्यवहारिक रूप से अपनाया जा रहा है। समग्र शिक्षा की सकारात्मक स्थिति इस तथ्य को पुष्ट करती है कि विद्यालय केवल परीक्षा-केंद्रित शिक्षा तक सीमित नहीं हैं, बल्कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर भी ध्यान दे रहे हैं। शैक्षणिक गतिविधियों के साथ सह-पाठ्यक्रम कार्यक्रमों, खेल-कूद, सांस्कृतिक आयोजनों तथा नैतिक शिक्षा का समावेश विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध हो रहा है। यह निष्कर्ष वर्तमान शैक्षिक दृष्टिकोण के अनुरूप है, जिसमें शिक्षा को जीवनोपयोगी एवं मूल्य-समृद्ध बनाने पर बल दिया गया है।

मूल्य-आधारित शिक्षण के संदर्भ में प्राप्त परिणाम दर्शाते हैं कि विद्यालयों में अनुशासन, सहयोग, ईमानदारी तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों के विकास का प्रयास किया जा रहा है। शिक्षकों की भूमिका इस प्रक्रिया में अत्यंत महत्वपूर्ण पाई गई, क्योंकि उनके आचरण एवं मार्गदर्शन का विद्यार्थियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि

सरकारी एवं निजी विद्यालयों के मध्य मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है, जो इस बात का संकेत है कि दोनों प्रकार के विद्यालयों में नैतिक शिक्षा को समान रूप से महत्व दिया जा रहा है।

विद्यार्थियों के नैतिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक विकास पर समग्र शिक्षा के प्रभाव का विश्लेषण यह दर्शाता है कि विद्यालयों की गतिविधियाँ विद्यार्थियों में सहयोग भावना, नेतृत्व क्षमता तथा सामाजिक सहभागिता को प्रोत्साहित कर रही हैं। यद्यपि प्रभाव सकारात्मक पाया गया, तथापि कुछ आयामों में सुधार की संभावना बनी हुई है। शिक्षकों द्वारा समयाभाव, संसाधनों की कमी तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता को प्रमुख चुनौतियों के रूप में रेखांकित किया गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यदि इन क्षेत्रों में सुधार किया जाए तो समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता और अधिक बढ़ सकती है।

समग्र रूप से यह चर्चा इस निष्कर्ष की ओर संकेत करती है कि माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। तथापि, इनके सतत् एवं सुदृढ़ क्रियान्वयन के लिए संस्थागत सहयोग, शिक्षक प्रशिक्षण एवं संसाधनों की उपलब्धता आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य झारखंड राज्य के राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रभावशीलता का समग्र विश्लेषण करना था, विशेष रूप से विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास—शैक्षणिक, नैतिक, सामाजिक तथा व्यवहारिक आयामों पर इनके प्रभाव का परीक्षण करना। अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि वर्तमान माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था में समग्र शिक्षा की अवधारणा केवल सैद्धांतिक विमर्श तक सीमित न रहकर व्यावहारिक स्तर पर भी क्रियान्वित हो रही है।

अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि विद्यालयों में शिक्षण प्रक्रिया को बहुआयामी स्वरूप प्रदान करने के लिए सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों, सांस्कृतिक आयोजनों, खेल-कूद कार्यक्रमों, प्रार्थना सभाओं तथा सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रमों को नियमित रूप से संचालित किया जा रहा है। इन गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता, सहयोग भावना, अनुशासन तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे गुणों का विकास हुआ है। यह परिणाम दर्शाता है कि माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का स्वरूप अब केवल परीक्षा-केंद्रित न होकर व्यक्तित्व-केंद्रित एवं जीवनोपयोगी बन रहा है।

मूल्य-आधारित शिक्षण के संदर्भ में भी अध्ययन के निष्कर्ष अत्यंत सकारात्मक रहे। विद्यालयों में ईमानदारी, सहिष्णुता, करुणा, राष्ट्रप्रेम, सामाजिक समरसता तथा नैतिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में समाहित किया जा रहा है। शिक्षकों की भूमिका इस प्रक्रिया में केंद्रीय रही है; उनका व्यवहार, दृष्टिकोण तथा मार्गदर्शन विद्यार्थियों के नैतिक विकास को प्रभावित करता है। इस प्रकार शिक्षक केवल ज्ञान-संचारक ही नहीं, बल्कि मूल्य-निर्माण के सक्रिय माध्यम के रूप में भी कार्य कर रहे हैं।

सरकारी एवं निजी विद्यालयों के तुलनात्मक विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण के क्रियान्वयन में दोनों प्रकार के विद्यालयों में मूलभूत स्तर पर कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं पाया गया। यद्यपि संसाधनों की उपलब्धता, प्रशिक्षण की गुणवत्ता तथा अधोसंरचना में कुछ भिन्नताएँ देखी गईं, तथापि शिक्षा के मूल उद्देश्यों की दृष्टि से दोनों में समान प्रतिबद्धता दृष्टिगोचर हुई।

अतः समग्र रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राँची जिले के माध्यमिक विद्यालयों में समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक भूमिका निभा रहे हैं। यदि इन दोनों आयामों को संस्थागत स्तर पर और अधिक सुदृढ़ किया जाए—विशेषकर नियमित शिक्षक-प्रशिक्षण, संसाधन-सुदृढ़ीकरण तथा सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से तो शिक्षा व्यवस्था समाज में नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना में अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकती है।

सुझाव

1. नियमित शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम

समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण की सफल क्रियान्विति के लिए आवश्यक है कि शिक्षकों को समय-समय पर उन्नत प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जीवन-कौशल शिक्षा, नैतिक मूल्यों का एकीकरण, बाल-मनोविज्ञान तथा नवाचारपूर्ण शिक्षण विधियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

2. पाठ्यक्रम में मूल्य-समावेशन की स्पष्ट संरचना

मूल्य-आधारित शिक्षण को केवल सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों तक सीमित न रखकर उसे पाठ्यक्रम के प्रत्येक विषय में एकीकृत किया जाना चाहिए। विषय-वस्तु के साथ जीवन-मूल्यों का संदर्भात्मक समन्वय विद्यार्थियों के व्यवहारिक विकास को अधिक प्रभावी बनाएगा।

3. सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों का संस्थागत सुदृढ़ीकरण

विद्यालयों में खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद-विवाद, सामाजिक सेवा शिविर एवं पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रमों को नियमित और योजनाबद्ध रूप से आयोजित किया जाना चाहिए। इन गतिविधियों को मूल्य-निर्माण के साधन के रूप में संरचित किया जाए।

4. सामुदायिक सहभागिता का विस्तार

विद्यालय, अभिभावक एवं स्थानीय समुदाय के मध्य समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। सामुदायिक सहभागिता से शिक्षा अधिक जीवन-सापेक्ष एवं व्यवहारिक बनती है तथा विद्यार्थियों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।

5. मूल्यांकन प्रणाली में परिवर्तन

पारंपरिक परीक्षा-केन्द्रित मूल्यांकन के स्थान पर सतत एवं समग्र मूल्यांकन पद्धति को प्रभावी रूप से लागू किया जाए, जिसमें विद्यार्थियों के नैतिक आचरण, सहयोग भावना, नेतृत्व क्षमता एवं सामाजिक सहभागिता को भी मूल्यांकन का भाग बनाया जाए।

6. संसाधनों एवं अधोसंरचना का विकास

विशेषकर सरकारी विद्यालयों में पुस्तकालय, खेल सामग्री, प्रयोगशालाएँ एवं तकनीकी संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए, ताकि समग्र शिक्षा का व्यावहारिक क्रियान्वयन प्रभावी रूप से हो सके।

7. नीतिगत स्तर पर प्रोत्साहन

राज्य स्तर पर शिक्षा विभाग द्वारा ऐसी नीतियाँ विकसित की जानी चाहिए जो समग्र शिक्षा एवं मूल्य-आधारित शिक्षण को विद्यालयी प्रणाली का अनिवार्य अंग बनाएं। इसके लिए स्पष्ट दिशानिर्देश, निगरानी तंत्र तथा प्रोत्साहन योजनाएँ विकसित की जानी चाहिए।

समापन टिप्पणी

यदि उपर्युक्त सुझावों को योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से लागू किया जाए, तो माध्यमिक शिक्षा न केवल ज्ञानार्जन का माध्यम रहेगी, बल्कि नैतिक, सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों से युक्त जिम्मेदार नागरिकों के निर्माण में भी प्रभावी भूमिका निभाएगी। विशेष रूप से राँची जिले जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता वाले क्षेत्र में यह दृष्टिकोण शिक्षा की गुणवत्ता को नई दिशा प्रदान कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।

2. National Council of Educational Research and Training. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005. नई दिल्ली : एनसीईआरटी।
3. National Council of Educational Research and Training. (2006). मूल्य शिक्षारू एक रूपरेखा. नई दिल्ली : एनसीईआरटी।
4. Central Board of Secondary Education. (2012). मूल्य-आधारित शिक्षा दिशा-निर्देश. नई दिल्ली : सीबीएसई।
5. Central Board of Secondary Education. (2014). शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम रूपरेखा. नई दिल्ली : एनसीटीई।
6. Central Board of Secondary Education. (2018). समग्र शिक्षा योजनारू संचालन दिशा-निर्देश. नई दिल्ली : भारत सरकार।
7. Jharkhand Academic Council. (2021). माध्यमिक शिक्षा पाठ्यक्रम दिशा-निर्देश. राँची : जेएसी।
8. Jharkhand Education Project Council- (2022). समग्र शिक्षा : वार्षिक कार्य योजना एवं बजट रिपोर्ट. राँची : जेईपीसी।
9. University Grants Commission- (2019). मूल्य-आधारित शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के दिशा-निर्देश. नई दिल्ली : यूजीसी।
10. Central Institute of Educational Technology- (2017). डिजिटल शिक्षा और मूल्य-आधारित अधिगम. नई दिल्ली : सीआईईटी-एनसीईआरटी।
11. महात्मा गांधी. (1937). नई तालीम. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन।
12. स्वामी विवेकानंद. (1897/2015). शिक्षा पर विचार. कोलकाता : अद्वैत आश्रम।
13. रवीन्द्रनाथ ठाकुर. (1917/2011). शिक्षा और मानवता. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
14. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन. (1966). भारतीय शिक्षा का दर्शन. नई दिल्ली : राजपाल एंड संस।
15. NCERT. (2011). सतत एवं समग्र मूल्यांकन : शिक्षक मार्गदर्शिका. नई दिल्ली : एनसीईआरटी।
16. SCERT Jharkhand. (2020). माध्यमिक स्तर पर मूल्य-आधारित शिक्षा प्रशिक्षण मॉड्यूल. राँची : एससीईआरटी।
17. Department of School Education and Literacy. (2021). राज्य शिक्षा गुणवत्ता मिशन रिपोर्ट. राँची : झारखंड सरकार।
18. शर्मा, आर. (2018). माध्यमिक शिक्षा में मूल्य-आधारित शिक्षण की प्रासंगिकता. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 12(2), 45 58।
19. सिंह, एम. (2019). समग्र शिक्षा और विद्यार्थी व्यक्तित्व विकास : एक अध्ययन. शैक्षिक विमर्श, 8(1), 60-72।
20. कुमार, पी. (2021). विद्यालयी शिक्षा में नैतिक मूल्यों का एकीकरण : चुनौतियाँ और संभावनाएँ. भारतीय शैक्षिक समीक्षा, 15(3), 102-118।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

A STUDY OF PROBLEMS OF CHILDREN WITH SPECIAL NEEDS IN ACCESSING THE EDUCATION IN DELHI NCR

Dr. Krishan Kant
Research Director
(Assistant Professor)
Faculty of Education
Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

Vikas Kumar Tiwari
Researcher
Faculty of Education
Tantia University,
Sri Ganganagar (Raj.)

Introduction

The concept of special needs education in India has evolved significantly over the past several decades, moving from a charitable and medical model to a rights-based approach (Singal, 2016). According to the Census of India 2011, there are 26,814,944 persons with disabilities in the country, constituting approximately 2.21% of the total population (Office of the Registrar General & Census Commissioner, 2011). Among this population, the literacy rate stands at only 54.52%, while 45.48% remain illiterate, indicating a substantial educational gap compared to the general population literacy rate of 74.04% (National Sample Survey Office, 2011).

The educational exclusion of children with disabilities has far-reaching consequences not only for the individuals themselves but also for national development. UNESCO (2017) emphasises that excluding any segment of society from education undermines economic growth, social cohesion, and the achievement of sustainable development goals. In the Indian context, where approximately 78 lakh children with special needs are of school-going age (UDISE+ 2019-20), ensuring their educational access becomes a matter of both social justice and national priority.

The evolution toward inclusive education accelerated in the 1990s with India's ratification of international commitments including the World Declaration on Education for All (Jomtien, 1990) and subsequent Dakar Framework for Action (2000). These international commitments catalyzed domestic policy reforms emphasizing universal access and equity. The introduction of the Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, 1995, represented landmark legislation establishing educational rights and anti-discrimination protections, though implementation challenges limited impact (Singal, 2006). The shift from integration to inclusion reflected paradigmatic change: integration focused on preparing children with disabilities to fit existing systems, while inclusion emphasized transforming systems to accommodate all learners (UNESCO, 1994).

India's constitutional framework establishes comprehensive protections for educational access. Article 21(A), inserted through the 86th Amendment in 2002, declares that the State shall provide

free and compulsory education to all children aged 6-14 years (Government of India, 1950). Additional provisions including Article 15(3) enabling special provisions for children, Article 41 directing state assistance for disability, and Article 46 promoting educational interests of weaker sections create robust constitutional foundation (Singal, 2016).

Global discourse on inclusive education has evolved significantly over three decades. The Salamanca Statement (UNESCO, 1994) established inclusive education as the guiding principle worldwide, asserting that schools should accommodate all children regardless of physical, intellectual, social, or emotional conditions. The UN Convention on the Rights of Persons with Disabilities (CRPD), ratified by India in 2007, establishes inclusive education as a human right requiring States to ensure inclusive education systems at all levels (UN, 2006).

Despite constitutional mandates and policy frameworks, children with special needs encounter multidimensional barriers limiting educational participation. Physical accessibility barriers include architectural impediments, inadequate toilet facilities, and insufficient assistive technology (Singal et al., 2019). Communication barriers arise from inadequate sign language interpretation and limited accessible materials (Alur & Bach, 2010). Attitudinal barriers reflecting societal stigma and low expectations constitute formidable obstacles (Kalyanpur, 2011). Instructional barriers including limited teacher training and rigid curricula create challenges for differentiated learning (Sharma, 2015).

Children with special needs encompass diverse populations requiring additional support, accommodations, or specialized services to participate fully in educational settings. The RPWD Act 2016 defines persons with disabilities as those with long-term physical, mental, intellectual, or sensory impairments that, in interaction with barriers, hinder full participation on equal basis (Government of India, 2016). This definition aligns with international frameworks and reflects contemporary understanding that disability arises from interaction between individual characteristics and environmental factors.

Contemporary inclusive education represents comprehensive paradigm transformation in responding to learner diversity. Booth and Ainscow (2011) define inclusion as a process of increasing participation and reducing exclusion, requiring continuous examination of school cultures, policies, and practices. The Index for Inclusion organizes inclusion around three dimensions: creating inclusive cultures (building community, establishing inclusive values), producing inclusive policies (developing school arrangements, organizing support), and evolving inclusive practices (orchestrating learning, mobilizing resources).

UNESCO (2020) defines inclusive education as strengthening education system capacity to reach all learners, emphasizing that inclusion concerns removing barriers for any vulnerable student. International evidence demonstrates that inclusive education benefits all learners, as teaching strategies designed for diversity enhance outcomes across populations (Mitchell, 2014; Hehir et al., 2016). Success depends on adequate teacher preparation, supportive leadership, appropriate resources, barrier removal, and flexible curricula (Florian & Black Hawkins, 2011).

Objectives of the Study

1. To assess the problems faced by children with special needs in accessing education in schools of Delhi NCR.

2. To analyse the role of teachers in facilitating inclusive education for children with special needs.

3. To compare the educational challenges faced by children with special needs across different demographic variables including gender, location (rural-urban), and age groups.

Hypotheses :-

1. There is no significant difference between male and female children with special needs in the problems faced while accessing education in Delhi NCR.

2. There is no significant difference between male and female teachers in their role effectiveness toward facilitating education for children with special needs.

Finding of the Study :-

1. Key Findings : Students with special needs encounter multidimensional educational barriers spanning eight interconnected domains. Mean total problem score reached 222.0 out of 390 maximum (57% severity), indicating substantial barrier prevalence affecting majority of educational experience dimensions. Problem severity distribution revealed 7% experiencing minimal problems, 53% mild problems, 33% moderate problems, and 7% severe problems, establishing that approximately 40% of students encounter moderate-to-severe educational access constraints. Highest severity domains included physical accessibility (M = 35.8/60, 60% severity), instructional accommodations (M = 42.3/70, 60%), and specialist support services (M = 31.2/50, 62%), while lowest included parental engagement (M = 16.8/30, 56%) and overall experience (M = 14.2/25, 57%). Qualitative analysis revealed that toilet inaccessibility (52% of students), assessment inflexibility (71%), and assistive technology absence (76%) constitute most pervasive specific barriers. Strong positive intercorrelations among problem domains (mean r = .63) establish interconnected barrier structure wherein students experiencing difficulties in one area typically encounter challenges across multiple domains simultaneously, creating cumulative disadvantage patterns.

2. Key Findings : Teacher role effectiveness assessment across 150 teachers revealed moderate overall performance at 228.2/325 (70.2%), suggesting meaningful commitment accompanied by substantial improvement potential. Distribution analysis showed 8% low effectiveness, 72% moderate, and 20% high effectiveness, with concentration in moderate category indicating systemic rather than individual constraints. Dimensional analysis identified strongest performance in attitudes toward inclusion (74.2%) and classroom management (72.4%), contrasted with weakest areas of professional development engagement (64.0%) and professional knowledge (66.8%). This gap between positive attitudes and lower knowledge/ training establishes critical preparation-implementation disconnect. Teacher-reported barriers revealed training inadequacy as most prevalent concern (70% citing this as major barrier), followed by time constraints (65.3%) and large class sizes (64.0%), establishing these as systemic challenges beyond individual teacher control. Critically, comparison of teachers with versus without special education training demonstrated 44.6-point effectiveness difference (Cohen's d = 1.15, very large effect), establishing training as single most powerful determinant of inclusive practice quality. Only 43.3% of teachers possessed special education credentials, revealing gross inadequacy relative to system-wide inclusive education

implementation needs. Qualitative teacher voices confirmed quantitative patterns, describing preparation gaps ('only one course on special education'), resource constraints ('no time to plan individualized lessons'), and systemic barriers ('curriculum is not flexible') preventing effective inclusive practice despite positive attitudes.

3. Key Findings : Demographic comparative analysis revealed systematic variation patterns establishing that educational experiences fundamentally differ based on student characteristics. Geographic location emerged as strongest demographic predictor, explaining 37% of variance in student problems ($ç^2 = 0.37$, very large effect), with rural students experiencing 32.5% more severe barriers than urban counterparts across all problem domains. Age group analysis demonstrated progressive problem intensification with advancing age ($F = 8.92$, $p < .001$), particularly affecting post-secondary students (>18 years) who face transition-related challenges and service discontinuity. Gender comparison revealed female students reporting significantly higher problems than males (14.4-point difference, $d = 0.30$, small-medium effect), with largest gender disparities in social acceptance, physical accessibility, and parental engagement, reflecting intersecting gender disability discrimination. School type comparison showed 25.6-point advantage for private over government schools ($d = 0.54$, medium effect), establishing socioeconomic stratification wherein economically disadvantaged students encounter substantially greater barriers. Disability type analysis revealed students with multiple disabilities and physical/locomotor impairments experiencing highest problem severity, while those with speech/language disorders and hearing impairments demonstrated lowest levels. Cross tabulation analyses illuminated intersectional patterns, particularly geographic-economic stratification wherein rural students from low-income families attending government schools in segregated settings experience quadruple jeopardy combining location, socioeconomic status, school quality, and placement disadvantages.

Bibliography

1. Adukia, A. (2017). Sanitation and education. American Economic Journal: Applied Economics, 9(2), 23-59.
2. Ahsan, M. T., Sharma, U., & Deppeler, J. M. (2012). Exploring pre-service teachers' perceived teaching-efficacy, attitudes and concerns about inclusive education in Bangladesh. International Journal of Whole Schooling, 8(2), 1-20.
3. Ainscow, M. (2016). Diversity and equity: A global education challenge. New Zealand Journal of Educational Studies, 51(2), 143-155.
4. Ainscow, M. (2020). Promoting inclusion and equity in education: Lessons from international experiences. Nordic Journal of Studies in Educational Policy, 6(1), 7-16. https://doi.org/10.1080/20020317.2020.1729587
5. Ainscow, M., & Miles, S. (2008). Developing inclusive education systems: What are the levers for change? Journal of Educational Change, 9(4), 363-381. https://doi.org/10.1007/s10833-008-9077-3
6. Ainscow, M., & Miles, S. (2008). Making Education for All inclusive: Where next? Prospects, 38(1), 15-34.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भाषायाः व्यवहारे सरलतायाः उपयोगः

Dr. P. SRIVALLI
Lecturer In Sanskrit
Skr Govt. Degree College(w), Rajamahendravaram
Cell No. : 9640604153
Email : prabhalasv@gcrjy.ac.in

उपोद्घातः :-

भाष्यते इति भाषा। अस्माकं मनसि विद्यमानाः भावाः प्रकटरूपेण कथनम् एव भाषाशब्देन व्यवह्रियते। भाष्-व्यक्तायां वाचि इत्यस्मात् धातोः "आङ् स्त्रियाम्" इति सूत्रेण आङ् प्रत्ययययोजनेन "भाषा" इति पदं निष्पन्नम्।

वस्तुतः भाषायाः आवश्यकता का? मनसि विद्यमानभावाः हस्ताद्यवयवचालनेन अपि प्रकटयितुं शक्यते खलु! परन्तु तत्र सर्वदा स्पष्टता न भवति, अर्थभ्रान्तिः अपि भवति। अतः भाषाविज्ञानमतानुसारं विचाराणाम् आदानप्रदानस्य माध्यमं भाषा एव। सा च भाषा संवादशीला, अतः भाषणेन विना भाषात्वमेव न सिद्ध्यति कस्याः अपि भाषायाः।

तत्र कीदृशी भाषा सम्पूज्या इत्यत्र भर्तृहरेः प्रसिद्धः श्लोकः-

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्तेऽखिलभूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥[1]

संस्कृता वाक् एव सर्वदा भूषणं मानवाय (स्त्रीपुरुषयोः अपि) इति निष्कर्षतया वक्तुं शक्यते। विशिष्य अस्माकं भारतीयानां प्रतिष्ठा संस्कृतस्य तथा संस्कृतेश्च उपरि आधारिता वर्तते। अत एव "भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा" इति प्रसिद्धिः अस्माकं संस्कृतिसम्बद्धाः सर्वे व्यवहाराः संस्कृतभाषामाध्यमेन एव आसन् इदानीमपि सन्तीत्यत्र न संशयः। तथैव पूर्वं संस्कृतभाषा व्यवहारपथे आसीत् इत्यत्र बहवः सन्ति उदाहरणानि।

विषयविवरणम्:-

व्याकरणमहाभाष्ये पस्पसाह्निके पतञ्जलिः संस्कृतं सर्वेषु प्रदेशेषु अपि व्यवहारे असीत् इति वदन् केचन शब्दाः तावत्- तत्तत्प्रदेशे एव आधिक्येन प्रचारे आसन् इति स्पष्टं निर्दिशति - "शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहतिः प्राच्यमध्येषु, गमिमेव तु आर्याः प्रयुञ्जते" एतादृशप्रयोगाः पूर्वं संस्कृतं व्यवहारपथे वर्तते इति ज्ञापयन्ति।

केवलं भाषितभाषासु एव पर्यायशब्दाः तत्तत् प्रदेशे रूढाः भवन्ति, न तु ग्रान्थिकभाषासु। किञ्च कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति इति वाक्ये पतञ्जलिः, भाषितो भवति इति प्रयुक्तवान्, न तु पठितो भवति, लिखितो भवतीति वा न प्रयुक्तवान्। सा भाषिता संस्कृतभाषा वेदभाषा, लोकभाषा इति द्विधा विभक्तुं शक्यते। पूर्वकाले वेदविद्यायाः अधिकं प्राधान्यं दीयते स्म। "षडङ्गसहितः वेदः अध्येतव्यः" इत्यत्र प्रमाणश्लोकः --

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥[2]

षडङ्गेषु व्याकरणं मुखस्थानं भजते।

महाभाष्ये व्याकरणमित्यस्य व्याख्या प्रयुक्तानाम इदम् अन्वाख्यानम् इति कृता, अत्र प्रयुक्तानाम् इति शब्दः अवधातव्यः। लोके भाषया ये व्यवहाराः क्रियन्ते स्म तान् अधीत्य नियमाः रचिताः। तथा व्याकरणं संवर्धितञ्च। प्रथमं व्यवहारः आसीत्, पश्चात् व्याकरणमागतम् इति कृत्वा "प्रयोगशरणं व्याकरणम्" इति प्रसिद्धिः।

भाषायाः अधिगमनम् :-

अस्माकं मातृभाषायाः अभ्यासः कथं भवति ? जन्मतः शिशुः मातृभाषाशब्दान् श्रृणोति, न तु जन्मतः, गर्भस्थः अपि शिशुः मातृभाषाशब्दान् श्रृणोति । वारं वारं श्रवणेन सः ध्वनिः शिशोः मनसि मुद्रितः भवति। तदनन्तरं भाषते, तत्पश्चात् लिपिं ज्ञात्वा शब्दमुच्चारयति, नाम पठति, तदनन्तरं लेखनाभ्यासं करोति। नाम श्रवणं, भाषणं, पठनं, लेखनमिति क्रमः। LSRW - इति आंग्लभाषायां वदन्ति। मातृभाषाभ्यासः सोपानक्रमेण भवति। परन्तु प्रस्तुतकाले संस्कृतभाषाभ्यासः विपरीतक्रमेण भवति।

आधुनिककाले प्रथमं लेखनं, द्वितीयं पठनं तत्रैव स्थगयति संस्कृताभ्यासः, न तु भाषणं श्रवणं वा। वस्तुतः भाषणकौशलमेव सर्वकौशलानां मूलम्। तस्मात् शिक्षणे भाषणस्यैव सर्वाधिकप्राधान्यं भवेत्। व्याकरणमहाभाष्ये पस्पशाह्निके शब्दज्ञानस्य धर्मजनकताधिकरणे जिज्ञासा अस्ति शब्दस्य ज्ञाने धर्मः, आहोस्वित् प्रयोगे इति तस्य समाधानं वर्तते एवं नापि ज्ञाने एव धर्मः, नापि प्रयोगे एव। किं तर्हि "शास्त्रपूर्वके प्रयोगे अभ्युदयः, अर्थात् ज्ञानपूर्वके प्रयोगे एव धर्मोत्पत्तिः इति। अतः प्रयोगाभावे केवलं शब्दज्ञानमात्रेण प्रयोजनं नास्ति। ज्ञानपूर्वकः प्रयोगः कर्तव्यः। भाषां ज्ञात्वा प्रयोगः कर्तव्यः ।

अतः कस्याश्चिदपि भाषायाः सामान्यव्यवहारज्ञानं सम्पादयितुं सम्भाषणमेव शरणम्। भाषाशिक्षणस्य सरलविधिरूपेण सम्भाषणमाध्यमेन पाठनं करणीयं भवति। सरलता नास्ति चेत् कठिनमिति मत्वा जनाः न पठन्ति, वदन्ति च। सम्भाषणद्वारा भाषाभ्यासेन विना भाषा स्वाधीना न भवति। अत एव संस्कृतभारतीकार्यकर्तारः दशदिनसम्भाषणशिबिरै: सरलसंस्कृतभाषाशिक्षणं कुर्वन्ति।

संस्कृतसम्भाषणमेव अस्माकम् अन्तिमं लक्ष्यं न। सम्भाषणं प्रथमसोपानम् एव। सम्भाषणतः शास्त्रपर्यन्तम् इति अस्माकं अध्ययनमार्गः। सम्भाषणं प्रवेशद्वार: इव। संस्कृतभाषायाः सर्वतोमुखविकाससम्पादनकार्ये सम्भाषणमेकं साधनम्। तत्सम्भाषणं सरलं भवेत्। सरलं नाम व्याकरणादिनियमविरुद्धमिति न। व्याकरणनियमानुसारमेव सुलभतया ग्रहीतुं योग्यां भाषां स्वीकुर्मः ।

यथा :- भवतः नाम किम?

भवत्याः नाम किम् ? इति ।

वस्तुतः तव नाम किम्? इति प्रश्नः परन्तु भवच्छब्दप्रयोगः गौरववाचकः। "भवतेः सम्मानार्थे प्रयोगः" इति काशिकावचनानुसारं "सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति सूत्राधारेण च बालकं वा युवकं वा वृद्धजनं वा भवच्छब्दसम्बोधनं गौरववाचकं भवति अतः केवलम् एकवचन प्रयोगः अलम्, बहुवचनस्य आवश्यकता नास्तीति अत्र सारल्यम् विद्यते।

सः पठति - प्रथमपुरुषः

त्वं पठसि - मध्यमपुरुषः

अहं पठामि - उत्तमपुरुषः

यदि भवच्छब्दप्रयोगः क्रियते तर्हि अत्र मध्यमपुरुषप्रयोगस्य आवश्यकता नास्तीति सरलता।

उदा :- **सः पठति**
भवन् पठति
भवती पठति इति ।

"भवत्संज्ञायां प्रथमपुरुषः"[3] इति पाणिनीयसूत्रम् । सरलता नाम व्याकरणनियमविरुद्धता न। व्याकरणनियमबद्धं भवेत्, सारल्यमपि भवेत् इति आशयः।

पर्यायशब्दप्रयोगेऽपि इदमन्वेति। लक्ष्मीशब्दस्य पर्यायपदानि सन्ति बहूनि। लक्ष्मीः, पद्मालया, पद्मा, कमला, श्रीः, हरिप्रिया, इन्दिरा, लोकमाता, मा, रमा, मङ्गलदेवता, भार्गवी, लोकजननी, क्षीरसागरकन्यका इति ।

सामान्यव्यवहारे लोकमाता इति पदप्रयोगेण न केवलं लक्ष्मीदेवीम्, अपितु पार्वतीदेवीं वा सरस्वतीदेवीं वा स्मर्तुं शक्यते। तत्तत्सन्दर्भेषु "प्रकरणमभिधानियामकमिति" तत्प्रकरणमनुसृत्य अर्थः स्वीक्रियते। उदा :- लक्ष्मीस्तुतिसन्दर्भे लोकमाता इति पदप्रयोगेण लक्ष्मीदेवीं स्मरामः। परन्तु सामान्यव्यवहारे लक्ष्मीः इत्येव प्रयोगं कुर्यात् तेन स्पष्टता भवतीति सारल्यता।

तथैव नानार्थकपदानां विषयेऽपि। उदा :- हरिशब्दस्य विष्णुः, सूर्यः, इन्द्रः, कपिः, सर्पः, मण्डूकः इत्याद्यर्थाः सन्ति। परन्तु हरिं वन्दे इत्यत्र विष्णुं वा, इन्द्रं वा, कपिं वा वन्दे इति जिज्ञासायां प्रकरणात् तदर्थः ज्ञायते एव शास्त्रेषु काव्येषु च। परन्तु नित्यव्यवहारे विष्णुं वन्दे, इन्द्रं वन्दे इत्येव व्यवहरामः सारल्यतां मनसि निधाय।

भोजराजस्य परिपालनाकाले सामान्यजनः अपि संस्कृतभाषायां कवित्वरचनां करोति स्म, तदानीं जनभाषारूपेण संस्कृतं वर्तते स्म ।

उदा :- **काव्यं करोमि न हि चारुतरं करोमि**
यत्नात्करोमि यदि चाहुतरं करोमि।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ !
हे साहसाङ्क, कवयामि वयामि यामि॥[4]

व्यवहारभाषाप्रयोगेषु प्रयत्नकाले दोषाः आगच्छन्तु नाम। यथा सैकिलयानचालनाभ्यासे द्वित्रिवारं पतामः यानात्, तथापि अभ्यासेन एव चालननिपुणः भवेत्। । भाषापि तथैव। प्रतिदिनसम्भाषणेन, श्रवणेन च भाषा सुलभमागच्छति। जनसामान्ये व्याप्तिर्भवति, व्यवहारे तिष्ठति चेत् भाषात्वं सार्थकं भवति। जनेषु संस्कृतभाषा मृतभाषा इति या अपप्रथा तद्दूरीकर्तुं शक्यते। तदर्थमेव संस्कृतभारतीसंस्था सरल संस्कृतगीतैरपि संस्कृतव्याप्तिं करोति।

उदा :

(1) सुरससुबोधा विश्वमनोज्ञा
ललिता हृद्या रमणीया
अमृतवाणी संस्कृतभाषा
नैव क्लिष्टा न च कठिना

(2) मनसा सततं स्मरणीयम्
वचसा सततं वदनीयम्
लोकहितं मम करणीयम् ।

(3) ग्रामे नगरे समस्तराष्टे
रचयेम संस्कृतभवनम्
इष्टिकां विना, मृत्तिकां विना
केवलसम्भाषणविधया
संस्कृतसम्भाषणकलया

(4) अवनितलं पुनरवतीर्णा स्यात्
संस्कृतगङ्गाधारा
धीरभगीरथवंशोस्माकं
वयं तु कृतनिर्धारा .....

(5) जागृहि त्वं भारतीय प्रभातं समुपस्थितम्
संस्कृतज्ञ प्रयामश्चल वयं राष्ट्रे जागृयाम ।

एतादृशगीतैः संस्कृतभाषायां रुचिमुत्पादयितुं प्रयत्नः क्रियते।

वाल्मीकिव्यासभासकालिदासादीनां ग्रन्थाः अपि सारल्यताकारणेनैव अद्यावधि लोके तिष्ठन्ति, अनन्तरमपि स्थास्यन्तीत्यत्र नास्ति विप्रतिपत्तिः।

उदा:-

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥[5]
अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥[6]
धर्मे चार्थेच कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं हि नानृतं ब्रूयात् एष धर्मस्सनातनः॥[7]

प्रजानां विनयाधानात् रक्षणाद्भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥[8]

भासविरचित नाटकेषु सुप्रसिद्धं प्रतिमानाटकं तत्र तृतीयाङ्के भरतस्य च रथचालकस्य च मध्ये सम्भाषणमेवं वर्तते-

भरतः : पितुर्मे को व्याधिः?

सूतः : हृदयपरितापः खलु महान् ।

भरतः : किमाहुस्तं वैद्याः?

सूतः : न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः

भरतः : किमाहारं भुङ्क्ते? शयनमपि ?

सूतः : भूमौ, निरसनः ।

एवं न केवलं सामान्यव्यवहारेषु अपि तु काव्येष्वपि सरलभाषाव्यवहारेणैव जनसामान्ये भाषायाः व्याप्तिः भवति। अतः भाषायाः व्यवहारे सरलतायाः उपयोगः महान् वर्तते ।

-: इति शम् :-

उपयुक्तग्रन्थसूची :

1. व्याकरणमहाभाष्ये-पतञ्जलिः-मोतीलाल् बेनारसी दास्-वाराणसी
2. श्रीमद्रामायणम्-वाल्मीकिः-प्राच्यविद्यासंशोधनालयः, मैसूर् विश्वविद्यालयः-मैसूर्-१९६६
3. महाभारतम् भारतभावद्दीपव्याख्या समेतम्- ओरियण्टल् बुक्स् रीप्रिंट् कार्पोरेशन्, आन्सीरोड्, नई दिल्ली-१९७९
4. रघुवंशम्-कालिदासः-गोपाल् नारायण् &को , मुम्बई-१९२२
5. प्रतिमा नाटकम्-भासः-चौखम्बा संस्कृत सीरीज्-वाराणसी-१९७७
6. सुभाषितत्रिशतिः-भर्तृहरिः- निर्णयसागर् प्रेस्-मुम्बई-१९१४
7. भोजप्रबन्धः- बल्लाल सेनः-राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थान्-नवदेहली-२०१०

उद्धरणानि :

1. सुभाषितत्रिशतिः-नीतिशतकम्-श्लो-१९-पृ.-१४
2. पाणिनीय शिक्षा —श्लो- ४१
3.पाणिनीयसूत्रम्-१-४-१०९
4. भोजप्रबन्धम्-चोकम्भा विद्या भवन्-श्लो-१७०
5. श्रीमद्रामायणम्-युद्धकाण्डम्- सर्गः- १०७- श्लो- ५२-५३
6. श्रीमद्रामायणम्-युद्धकाण्डम्- सर्गः- १२४- श्लो- १७
7. मनुस्मृतिः-अ-4-श्लो- 138
8. रघुवंशम्-स-१-श्लो-२४

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय शिक्षा प्रणाली में असमानता एवं आर्थिक गतिशीलता

डॉ. राजकुमारी परिहार
अतिथि व्याख्याता (अर्थशास्त्र)
शासकीय स्नातक महाविद्यालय डभरा
जिला - शक्ति (छ.ग.)

सारांश

भारतीय शिक्षा प्रणाली में असमानता और आर्थिक गतिशीलता के मध्य संबंध एक गहन, बहुआयामी और संरचनात्मक विमर्श का विषय है, जिसे समाजशास्त्रीय, आर्थिक तथा नीतिगत दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था की असमानता का मूल इसकी ऐतिहासिक, औपनिवेशिक और सामाजिक संरचना में निहित है। औपनिवेशिक काल से ही शिक्षा एक समिति, अभिजात वर्ग तक केंद्रित रही, जिसका प्रभाव स्वतंत्रता के पश्चात भी पूर्णतः समाप्त नहीं हो सका। आज भी विद्यालय और उच्च शिक्षा स्तर पर सार्वजनिक और निजी संस्थाओं के बीच गुणवत्ता, संसाधन, पाठ्यक्रम और अवसरों की गहराई खाई विद्यमान है। यह द्वैध संरचना शिक्षा को एक सार्वजनिक कल्याण के बजाय एक बाजरोन्मुख वस्तु में परिवर्तित कर देती है, जहाँ आर्थिक पूंजी शैक्षणिक पूंजी में और शैक्षणिक पूंजी सामाजिक-आर्थिक प्रभुत्व में रूपांतरित होती है। आर्थिक गतिशीलता का तात्पर्य केवल आय वृद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति अवसरों और निर्णय क्षमता में परिवर्तन से है। जब शिक्षा प्रणाली असमान होती है, तब वह सामाजिक स्तरीकरण को चुनौती देने के बजाय उसे स्थाई बना देती है। जाति, वर्ग, लिंग और क्षेत्रीय असमानताएँ इस शैक्षणिक विषमता को और अधिक जटिल बनती है। यद्यपि संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत आरक्षण, छात्रवृत्ति और सकारात्मक भेदभाव संस्थागत पूर्वाग्रह और सामाजिक बहिष्कार शिक्षा की समानता को सीमित करते। विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य वंचित समुदायों में उच्च ड्रॉप आउट दर यह दर्शाती है कि मात्र औपचारिक पहुँच पर्याप्त नहीं है, जब तक शिक्षा की गुणवत्ता और सामाजिक वातावरण समावेशी ना हो।

मूल शब्द - शिक्षा, प्रणाली, आर्थिक गतिशीलता, वातावरण, गुणवत्ता, व्यवस्था, संस्था।

प्रस्तावना

शिक्षा और आर्थिक असमानता के बीच का संबंध जटिल और बहुआयामी है। शिक्षा को अक्सर सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह व्यक्तियों को कार्यबल में सफल होने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्रदान करता है। हालांकि, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच अक्सर सामाजिक-आर्थिक स्थिति द्वारा सीमित होती है, और उच्च शिक्षा की लागत कई निम्न आय वाले परिवारों के लिए निषेधात्मक हो सकती है। परिणामस्वरूप, शिक्षा तक असमान पहुंच के माध्यम से आर्थिक असमानता को कायम रखा जा सकता है। इसके अलावा, यहां तक कि जब निम्न आय पृष्ठभूमि के व्यक्ति शिक्षा का उपयोग करने में सक्षम होते हैं, तब भी उन्हें काम पर रखने और पदोन्नति प्रथाओं में भेदभाव और प्रणालीगत पूर्वाग्रहों के कारण आर्थिक गतिशीलता में बाधाओं का सामना करना पड़ सकता

है। इससे ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है जहाँ आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए केवल शिक्षा ही काफी नहीं है। दूसरी ओर, कुछ तर्क देते हैं कि शिक्षा आर्थिक असमानता का समाधान नहीं है, और यह कि कर नीति और श्रम सुरक्षा जैसे अन्य कारक आय और धन असमानताओं को कम करने में अधिक प्रभावी है। आर्थिक असमानता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका के बारे में चल रही बहस के बावजूद, अधिक न्यायसंगत और समृद्ध समाज बनाने के साधन के रूप में शिक्षा में निवेश के महत्व की मान्यता बढ़ रही है।

शिक्षा उपलब्धता की अधिकता भी आर्थिक समानता को प्रोत्साहित करती है। इसलिए, सरकारें शिक्षा के लिए बजट अधिक करती हैं ताकि अधिक संख्या में लोगों को शिक्षा प्राप्त करने में मदद मिल सके। आर्थिक असमानता को कम करने के लिए, सरकारें आर्थिक सहायता और बेहतर रोजगार के अवसर प्रदान करती हैं। यह लोगों के आर्थिक स्थिति में सुधार करने में मदद कर सकता है। शिक्षा और आर्थिक समानता के बीच एक अन्य संबंध यह है कि शिक्षित लोगों का उत्पादकता स्तर अधिक होता है। इसलिए, उन्हें अधिक वेतन दिया जाता है जो उनकी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाता है। इसलिए, शिक्षा के माध्यम से लोग अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकते हैं। शिक्षा और आर्थिक समानता दोनों एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और शिक्षा की उपलब्धता आर्थिक समानता को प्रोत्साहित करने में मदद कर सकती है।

उपरोक्त बिंदुओं के अलावा, शोध से पता चला है कि शिक्षा का किसी व्यक्ति की कमाई क्षमता और समग्र आर्थिक कल्याण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD) की एक रिपोर्ट के अनुसार, उच्च स्तर की शिक्षा वाले व्यक्ति शिक्षा के निम्न स्तर वाले लोगों की तुलना में अधिक कमाते हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षा को अक्सर आर्थिक विकास और नवाचार के प्रमुख चालक के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह एक कुशल और अनुकूलनीय कार्यबल बनाने में मदद करता है जो उत्पादकता और नवाचार को चला सकता है। शिक्षा के संभावित लाभों के बावजूद, गुणवतापूर्ण शिक्षा तक पहुँच पूरे समाज में समान रूप से वितरित नहीं है। कम आय वाले परिवारों के छात्र अक्सर कम संसाधनों और कम अनुभवी शिक्षकों वाले स्कूलों में जाते हैं, जो उनके शैक्षिक परिणामों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। यह आर्थिक असमानता के चक्र को स्थायी बना सकता है, क्योंकि निम्न आय पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति कार्यबल में सफल होने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर सकते हैं। इसके अलावा, हाल के वर्षों में उच्च शिक्षा की लागत में काफी वृद्धि हुई है, जिससे कई कम आय वाले छात्रों के लिए कॉलेज या विश्वविद्यालय का खर्च उठाना मुश्किल हो गया है। इससे छात्र ऋण में वृधद्धि हुई है, जिसका किसी व्यक्ति की वित्तीय भलाई के लिए दीर्घकालिक प्रभाव हो सकता है। जबकि शिक्षा को अक्सर आर्थिक असमानता को कम करने में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में देखा जाता है, गुणवतापूर्ण शिक्षा तक पहुंच कम आय वाले पृष्ठभूमि वाले कई व्यक्तियों के लिए एक प्रमुख बाधा बनी हुई है। इस मुद्दे को संबोधित करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी जिसमें शिक्षा तक पहुंच बढ़ाना और व्यापक संरचनात्मक कारकों को संबोधित करना शामिल है जो आर्थिक असमानता में योगदान करते हैं।

- शिक्षा गरीबी को कम करने और आर्थिक विकास को बढ़ाने में मदद कर सकती है, क्योंकि शिक्षा के उच्च स्तर वाले व्यक्तियों में नौकरी की स्थिरता, उच्च वेतन और बेहतर समग्र आर्थिक परिणाम होते हैं।
- शिक्षा में असमानता का असमानता के अन्य रूपों, जैसे लिंग और नस्लीय असमानता पर जटिल प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, महिलाओं और रंग के लोगों को अक्सर शिक्षा तक पहुँचने में अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है और परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता का अनुभव करने की अधिक संभावना हो सकती है।
- आर्थिक असमानता को कम करने में शिक्षा की गुणवत्ता भी एक महत्वपूर्ण कारक है। कुछ मामलों में, छात्रों की शिक्षा तक पहुंच हो सकती है, लेकिन अपर्याप्त संसाधनों पुराने पाठ्यक्रम या अप्रभावी शिक्षण विधियों के कारण शिक्षा की गुणवत्ता प्राप्त होती है।
- शिक्षा सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देने में भी एक भूमिका निभा सकती है, क्योंकि गुणवतापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के पास आर्थिक सीढ़ी को आगे बढ़ाने और अपनी वित्तीय स्थिति में सुधार करने के अधिक अवसर हो

सकते हैं।

● आर्थिक असमानता को कम करने के साधन के रूप में प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में निवेश के महत्व की मान्यता बढ़ रही है। शोध से पता चला है कि उच्च गुणवत्ता वाली प्रारंभिक बचपन की शिक्षा बच्चों के दीर्घकालिक परिणामों पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकती है, जिसमें उनकी शैक्षणिक सफलता, आर्थिक कल्याण और समग्र स्वास्थ्य शामिल है।

● कुछ देशों में शिक्षा के निजीकरण की ओर रुझान है, जो कम आय वाले छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच को सीमित करके आर्थिक असमानता को बढ़ा सकता है।

● शिक्षा केवल तकनीकी कौशल प्राप्त करने के बारे में नहीं है, बल्कि महत्वपूर्ण सोच, समस्या समाधान और संचार कौशल विकसित करने के बारे में भी है जो आधुनिक अर्थव्यवस्था में तेजी से मूल्यवान हैं। यह आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा देने और श्रम बाजार की बदलती मांगों के अनुकूल व्यक्तियों को सक्षम करके आर्थिक असमानता को कम करने में मदद कर सकता है।

● शिक्षा घरों के भीतर आय असमानता को कम करने में भी भूमिका निभा सकती है, क्योंकि अध्ययनों से पता चला है कि उच्च स्तर की शिक्षा वाले परिवारों में आय असमानता का स्तर कम होता है।

● औपचारिक शिक्षा के अलावा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षुता भी श्रम बाजार में मांग वाले व्यावहारिक कौशल के साथ व्यक्तियों को प्रदान करके आर्थिक असमानता को कम करने में प्रभावी हो सकती है।

जिससे शिक्षा आर्थिक असमानता को प्रभावित कर सकती है वह मानव पूंजी के विकास के माध्यम से है। मानव पूंजी जान, कौशल और क्षमताओं को संदर्भित करती है जो व्यक्तियों के पास होती है और वे आर्थिक मूल्य बनाने के लिए उपयोग कर सकते हैं। शिक्षा प्राथमिक तरीकों में से एक है जिसमें व्यक्ति अपनी मानव पूंजी का विकास करते हैं, और अधिक शिक्षा वाले लोगों की कमाई की संभावना अधिक होती है। शिक्षा तक पहुंच सभी सामाजिक आर्थिक समूहों में समान नहीं है, जो गरीबी और सीमित आर्थिक गतिशीलता का एक चक्र बना सकता है। कम आय वाले परिवारों के बच्चे अक्सर कम संसाधनों और कम अनुभवी शिक्षकों वाले स्कूलों में जाते हैं, जो उनके शैक्षिक परिणामों और भविष्य की कमाई की क्षमता को सीमित कर सकता है। शिक्षा तक पहुंच को सीमित करने के अलावा, आर्थिक असमानता छात्रों को मिलने वाली शिक्षा की गुणवत्ता को भी प्रभावित कर सकती है। उदाहरण के लिए, कम आय वाले क्षेत्रों के स्कूलों की तुलना में, अमीर पड़ोस के स्कूलों में अधिक संसाधन हो सकते हैं, जैसे कि अप-टू-डेट तकनीक, अनुभवी शिक्षक और पाठ्येतर गतिविधियों की एक विस्तृत विविधता। यह विभिन्न सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के छात्रों के बीच शैक्षिक परिणामों में असमानता पैदा कर सकता है। शिक्षा आर्थिक असमानता को प्रभावित कर सकती है वह है सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को बनाए रखना। शिक्षा आर्थिक असमानता सहित सामाजिक मुद्दों के प्रति व्यक्तियों के विश्वासों और दृष्टिकोणों को आकार देने में भूमिका निभा सकती है। उदाहरण के लिए, सामाजिक न्याय और समानता के महत्व पर जोर देने वाली शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति आर्थिक समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियों और पहलों का समर्थन करने की अधिक संभावना रखते हैं।

ऐसे व्यक्ति जो ऐसी शिक्षा प्राप्त करते हैं जो मौजूदा सामाजिक और आर्थिक पदानुक्रमों को मजबूत करता है, आर्थिक असमानता को बनाए रखने वाली नीतियों और पहलों का समर्थन करने की अधिक संभावना हो सकती है। इस प्रकार, शिक्षा आर्थिक असमानता के प्रति लोगों की धारणाओं को आकार देने और इसे दूर करने के लिए कार्रवाई करने की उनकी इच्छा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष

शिक्षा में आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा देने और असमानता को कम करने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण होने की क्षमता है, लेकिन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच अक्सर आर्थिक असमानताओं से सीमित होती है। कम आय वाले परिवारों के बच्चों की उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच की संभावना कम होती है, जो आर्थिक उन्नति के उनके अवसरों को सीमित

कर सकता है इसके अलावा, आर्थिक असमानता शिक्षा की गुणवता को प्रभावित कर सकती है जो छात्र प्राप्त करते हैं और सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को कायम रख सकते हैं जो मौजूदा आर्थिक पदानुक्रमों को सुदृढ़ करते हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक समान पहुंच सुनिश्चित करने वाली नीतियों और पहलों को बढ़ावा देकर और आर्थिक असमानता को बनाए रखने वाले सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को बदलने के लिए काम करके इन चुनौतियों का समाधान करना महत्वपूर्ण है। आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के लिए, हमें एक अधिक न्यायसंगत शिक्षा प्रणाली बनाने के लिए काम करना चाहिए जो सभी व्यक्तियों को ज्ञान, कौशल और सफल होने के लिए आवश्यक अवसर प्रदान करे। ऐसा करके, हम एक अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज बना सकते हैं जहाँ सभी को अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने का अवसर मिले।

संदर्भ

1. गोल्डिन, सी, और काट्ज, एलएफ (2008)। शिक्षा और प्रौघ्योगिकी के बीच दौड़। कैम्ब्रिज, एमएः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस का बेलकनैप प्रेस।
2. हेकमैन, जे जे (2008)। स्कूल, कौशल और सिनैप्स। आर्थिक पूछताछ 46(3), 289-3241
3. कोजोल, जे। (1991)। बर्बर असमानताएँः अमेरिका के स्कूलों में बच्चे। क्राउन प्रकाशक।
4. रियरडन, एस एफ (2013)। अमीर और गरीब के बीच व्यापक शैक्षणिक उपलब्धि की खाईः नए साक्ष्य और संभावित स्पष्टीकरण। जी. जे. डंकन और आर. जे. मुर्ने (ईडीएस) में, कहां अवसर? बढ़ती असमानता, स्कूल और बच्चों के जीवन के अवसर (पीपी. 91-116)। न्यूयॉर्कः रसेल सेज फाउंडेशन।
5. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम। (2019)। मानव विकास रिपोर्ट 2019 आय से परे, औसत से परे, आज से परेः 21वीं सदी में मानव विकास में असमानताएं। न्यूयॉर्कः संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम।
6. विश्व आर्थिक मंच। (2020)। द ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट 20201 जिनेवाः वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के बीच संघर्ष, कारण और समाधान

पवन कुमार
(शोधार्थी)
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार-812007
Pawanggis2@gmail.com Mob. : 9471228641

प्रो. (डॉ.) रमेश चन्द्र राय
(शोध निर्देशक)

शोध सार (Abstract)

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान की गई है, जबकि व्यवस्थापिका को कानून निर्माण तथा संविधान संशोधन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों के संदर्भ में इन दोनों शक्तियों के प्रयोग के दौरान समय-समय पर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती रही है। संघर्ष लोकतंत्र की विफलता नहीं, बल्कि संस्थागत संतुलन की प्रक्रिया है। भारतीय संविधान कठोर शक्ति-विभाजन नहीं अपनाता, बल्कि संतुलित मॉडल स्वीकार करता है। यह शोध-पत्र इन संघर्षों का विश्लेषण संविधान की सर्वोच्चता, न्यायिक समीक्षा, शक्ति-विभाजन तथा मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में करता है और यह भी बताता है कि व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के बीच संघर्षों को किस प्रकार समझा और संतुलित किया जाए।

बीज शब्द : मौलिक अधिकार, न्यायिक समीक्षा, संविधान संशोधन, प्रस्तावना एवं संविधान की सर्वोच्चता।

परिचय

भारतीय संविधान में व्यवस्थापिका को जहां अनुच्छेद-368 के द्वारा मौलिक अधिकार सहित भारतीय संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है, वही न्यायपालिका को भी अनुच्छेद-13, 32, 137 एवं 226 के तहत् व्यवस्थापिका द्वारा किए गए संविधान संशोधन की संवैधानिकता की जांच करने तथा उसे पूरी तरह से बदलने या उसमें संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है।

व्यवस्थापिका और न्यायपालिका द्वारा इन्हीं शक्तियों का प्रयोग किया जाता रहा है, जिससे दोनों संवैधानिक संस्थाओं के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती रही है।

व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संघर्ष की स्थिति

1993 में न्यायपालिका ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के वाद में निर्णय दिया कि अनुच्छेद 16(4) के अधीन कुल आरक्षित स्थानों की संख्या 50% से अधिक नहीं होनी चाहिए और अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के अधिकारियों और

कर्मचारियों को पदोन्नति में आरक्षण अनुमान्य नहीं होगा। इस निर्णय से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए व्यवस्थापिका ने 76वां एवं 77वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया। 76वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1994 के द्वारा तमिलनाडू में स्थित शिक्षण संस्थाओं तथा सरकारी नौकरियों में 69% आरक्षण की व्यवस्था को 9वीं अनुसूची में डाल दिया गया। 77वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1995 के द्वारा संविधान के अनुच्छेद-16 के खंड (4) में एक नया उपखंड (4A) जोड़ कर एक उपबंध किया गया है जिसके अनुसार राज्य के अधीन सेवाओं में पदोन्नति के लिए अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण प्रदान किया जा सकेगा।

वीरपाल सिंह चौहान बनाम भारत संघ (1995) तथा अजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य (1996) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 16 सितम्बर,1999 को अपने निर्णय के द्वारा यह व्यवस्था दी थी कि पदोन्नति में आरक्षण तो दिया जा सकता है, लेकिन वरिष्ठता नहीं मिलेगी।

सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए व्यवस्थापिका के द्वारा 85वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 पारित किया गया, जिसके द्वारा संविधान के अनुच्छेद-16(4A) में संशोधन कर राज्य के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्गों के पदों पर अनुवती वरिष्ठता सहित प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण को 17 जून, 1995 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू कर दिया गया।

एम. नागराज बनाम भारत संघ (2006) के मामले में 77वां एवं 85वां संविधान संशोधन अधिनियम को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दिया गया। न्यायालय ने अपने निर्णय में इन संवैधानिक संशोधनों को तो सही माना, लेकिन यह भी कहा कि सरकार को इन वर्गों के अधिकारियों और कर्मचारियों के पिछड़ेपन, राजकीय सेवाओं में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व एवं कामकाज की दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव के संबंध में आंकड़ों का आधार तैयार करना होगा।

एम. नागराज बनाम भारत संघ (2006) के निर्णय के बाद से ही सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई कई जनहित याचिकाओं में इस पर पुनर्विचार की मांग उठती रही थी। इस मामले में विभिन्न राज्यों की सरकारों एवं केंद्र सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे अटॉनी जनरल के. वेणुगोपाल ने पदोन्नति में आरक्षण के पक्ष में गुहार लगाते हुए कहा था कि एक सात सदस्यीय संविधान पीठ को इस निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए।

26 सितम्बर, 2018 को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पांच जजों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से अपने फैसले में कहा कि एम. नागराज बनाम भारत संघ (2006) के फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए उसे बड़ी संविधान पीठ के पास भेजने की कोई जरूरत नहीं है और न ही पदोन्नति में आरक्षण देने के लिए 2006 के निर्णय में लिखे गए पिछड़ेपन के मापदंडों को पूरा करने और इससे संबंधित जानकारी जुटाने की ही कोई जरूरत है। परन्तु पर्याप्त प्रतिनिधित्व एवं प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभाव वाली बात आज भी लागू है, क्योंकि इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कुछ नहीं कहा है।

30 जुलाई, 2020 को सर्वोच्च न्यायालय ने बी. के. पवित्रा बनाम भारत संघ के वाद में अपने निर्णय में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग को दिए गए परिणामी वरिष्ठता के साथ पदोन्नति में आरक्षण की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा है तथा पुनर्विचार याचिका को खारिज कर दिया है। उक्त पुनर्विचार याचिका में आए निर्णय से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति में क्रीमीलेयर की संकल्पना लागू नहीं होगी एवं परिणामी वरिष्ठता के साथ पदोन्नति में आरक्षण मिलता रहेगा।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश अरुण मिश्रा की अध्यक्षता वाली पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने 27 अगस्त, 2020 को दिए फैसले में कहा है कि आरक्षण का लाभ सभी तक समान रूप से पहुँचाने के लिए राज्य सरकार को अनुसूचित जाति एवं जनजाति श्रेणी में वर्गीकरण का अधिकार है। इसके लिए राज्य आरक्षण देते समय अनुच्छेद-14, 15 और 16 की अवधारणा के आधार पर सूची में दी गई अनुसूचित जातियों में तर्कसंगत उपवर्गीकरण भी कर सकता है। राज्य सरकार सूची में छेड़छाड़ नहीं कर सकती और न ही वह किसी जाति को जोड़ अथवा घटा सकती है लेकिन जाति की जांच कर सकती

है। न्यायालय ने कहा कि विभिन्न रिपोर्ट दर्शाती हैं कि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग में सभी जातियां समान नहीं है। अतः, आरक्षण का लाभ सबसे जरूरतमंद तक नहीं पहुंच रहा है। जबकि आरक्षण का उद्देश्य सभी वर्गों को ऊपर उठाना है जो राष्ट्र की प्रगति के लिए जरूरी है।

2004 में ईसी चिन्नैया मामले में सर्वोच्च न्यायालय की ही पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने कहा था कि अनुसूचित जाति/ जनजाति की श्रेणी में उपवर्गीकरण का राज्यों को अधिकार नहीं है।

अतः जस्टिस अरुण मिश्रा की अध्यक्षता वाली पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने कहा कि ईसी चिन्नैया मामले का फ़ैसला भी समान क्षमता का पीठ ने सुनाया था इसलिए वह मुख्य न्यायाधीश से मामले को सात न्यायाधीशों या उससे बड़ी पीठ के समक्ष विचार के लिए लगाने का आग्रह करते हैं।

व्यवस्थापिका द्वारा 103वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 पारित किया गया जिसके द्वारा संविधान के अनुच्छेद-15 में एक नया उपखंड(6) तथा अनुच्छेद-16 में एक नया उपखंड(6) जोड़ा गया। इस प्रावधान के द्वारा सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़े व्यक्ति को सरकारी नौकरियों एवं शिक्षण संस्थाओं में 10% आरक्षण का प्रावधान किया गया। सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ा वर्ग के स्थान पर अब सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक पिछड़ा वर्ग प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

आर्थिक रूप से पिछड़े सामान्य वर्ग को आरक्षण देने वाले 103वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 को यूथ फॉर इक्वालिटी सहित कई संगठनों और लोगों ने सर्वोच्च न्यायालय में इसे चुनौती दिया है। चुनौती देने वालों का दलील है कि संविधान में अनुच्छेद-15(6) और 16(6) को जोड़ कर संविधान के मूल ढांचे में बदलाव किया गया है। इसमें इंदिरा साहनी मामले में सर्वोच्च न्यायालय की नौ सदस्यीय संविधान पीठ के फ़ैसले को उद्धृत करते हुए कहा था कि आर्थिक मापदंड आरक्षण का एकमात्र आधार नहीं हो सकता। साथ ही उस फ़ैसले में यह भी कहा था कि आरक्षण 50% से अधिक नहीं होनी चाहिए।

एम. नागराज मामले में भी संविधान पीठ ने अनुच्छेद-16(4A) और 16(4B) को इस शर्त पर संवैधानिक रूप से वैध कहा था बशर्ते कि राज्य यह प्रमाणित कर दे कि उनका प्रतिनिधित्व अपर्याप्त है।

26 अप्रैल, 2020 को जस्टिस अरुण मिश्रा, जस्टिस इंदिरा बनजी जस्टिस विनीत शरण, जस्टिस एम. आर. शाह और जस्टिस अनिरुद्ध बोस की पीठ ने आंध्र प्रदेश की व्यवस्थापिका के फ़ैसले को खारिज करते हुए कहा कि आरक्षण 50% से ज्यादा नहीं हो सकता।

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एस. ए. बोवडे की अध्यक्षता वाली तीन जजों की पीठ ने 103वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 को असंवैधानिक तो नहीं ठहराया लेकिन इस पर विचार करने के लिए 5 अगस्त, 2020 को पांच सदस्यीय संविधान पीठ को सौंपने का फ़ैसला किया। जब तक संविधान पीठ द्वारा इसे असंवैधानिक नहीं ठहराया जाता तब तक सामान्य वर्ग के पिछड़े को 10% आरक्षण मिलता रहेगा।

व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के बीच संघर्ष का कारण

(1) संविधान की व्याख्या में वैचारिक अंतर : संविधान एक जीवंत दस्तावेज है जिसकी व्याख्या समय, परिस्थितियों और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होती रहती है। व्यवस्थापिका और न्यायपालिका संविधान की व्याख्या भिन्न दृष्टिकोणों से करती हैं। व्यवस्थापिका का दृष्टिकोण सामाजिक-आर्थिक सुधारों, जनहित योजनाओं और बहुमत की आकांक्षाओं के अनुरूप कानून का निर्माण करना है। जबकि न्यायपालिका का दृष्टिकोण संविधान की मूल भावना और मौलिक अधिकारों की रक्षा को प्राथमिकता देना है। उदाहरण के लिए केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य में न्यायालय ने 'आधारभूत संरचना का सिद्धांत' प्रतिपादित कर व्यवस्थापिका की संशोधन शक्ति को सीमित किया। जबकि व्यवस्थापिका का मत था कि जनादेश प्राप्त होने के कारण उसे व्यापक संशोधन का अधिकार प्राप्त हैं। यह वैचारिक अंतर व्यवस्थापिका की संप्रभुता बनाम न्यायपालिका की स्वतंत्रता, संघर्ष का मूल आधार है।

(2) व्यवस्थापिका की बहुमत आधारित राजनीति : भारतीय संसदीय प्रणाली में संसद का संचालन बहुमत के सिद्धांत पर आधारित है। जब किसी राजनीतिक दल को प्रचंड बहुमत प्राप्त होता है, तो वह अपनी नीतियों को लागू करने हेतु व्यापक विधायी परिवर्तन करता है। किन्तु बहुमत की इच्छा सदैव संवैधानिक मर्यादा के अनुरूप हो, यह आवश्यक नहीं। कभी-कभी राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित संशोधन मौलिक अधिकारों को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, आपातकाल के दौरान पारित 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से न्यायिक समीक्षा को सीमित करने का प्रयास किया गया, जिसे मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ वाद में निरस्त कर दिया गया। अतः बहुमत आधारित राजनीति और संवैधानिक सीमाओं के बीच संतुलन का अभाव संघर्ष को जन्म देता है।

(3) न्यायपालिका की संरक्षक वाली भूमिका : भारतीय संविधान ने न्यायपालिका को मौलिक अधिकारों का संरक्षक बनाया है। अनुच्छेद-32 को बी. आर. अम्बेडकर ने संविधान की "आत्मा" कहा था। न्यायपालिका कानूनों की संवैधानिकता की समीक्षा करती है, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर हस्तक्षेप करती है और संविधान की आधारभूत संरचना की रक्षा करती है। मेनका गांधी बनाम भारत संघ वाद में अनुच्छेद-21 की विस्तृत व्याख्या कर न्यायालय ने 'जीवन' के अर्थ को शारीरिक अस्तित्व से आगे बढ़ाकर गरिमामय जीवन तक विस्तारित किया। इस प्रकार न्यायपालिका की सक्रिय संरक्षक वाली भूमिका कभी-कभी व्यवस्थापिका को सीमित करती प्रतीत होती है, जिससे संस्थागत संघर्ष उत्पन्न होता है।

(4) मौलिक अधिकारों की गतिशील अवधारणा : मौलिक अधिकार स्थिर नहीं हैं; वे समयानुकूल विकसित होते हैं। न्यायपालिका ने इन्हें "जीवंत अधिकार" के रूप में व्याख्यायित किया है। प्रारंभ में अनुच्छेद-21 का अर्थ सीमित था, परंतु बाद में इसमें गोपनीयता, पर्यावरण, शिक्षा, गरिमामय जीवन आदि को शामिल किया गया। 'उचित प्रक्रिया' की अवधारणा ने अधिकारों के दायरे को अत्यंत व्यापक बना दिया। इस गतिशीलता के कारण न्यायपालिका अधिकारों का विस्तार करती है, जबकि व्यवस्थापिका को नई कानून बनाते समय व्यापक संवैधानिक परीक्षण से गुजरना पड़ता है। इससे यह धारणा बनती है कि न्यायपालिका विधायी क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रही है, जबकि न्यायपालिका इसे अधिकारों की सुरक्षा के रूप में देखती है।

व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संघर्ष का समाधान

व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संघर्ष का समाधान संविधान की सर्वोच्चता है। संविधान निर्माताओं के द्वारा व्यवस्थापिका को कानून निर्माण के लिए संप्रभु शक्ति प्रदान की गई तथा न्यायपालिका को मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए स्वतंत्रता प्रदान की गई। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य संविधान की सर्वोच्चता को स्थापित करना था। अतः व्यवस्थापिका को कानून निर्माण के लिए अपनी संप्रभु शक्ति का तथा न्यायपालिका को मौलिक अधिकारों की सुरक्षा एवं संविधान की संरक्षा के लिए अपनी स्वतंत्रता का उतना ही प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे संविधान की सर्वोच्चता स्थापित होता हो।

व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संघर्ष का एक अन्य समाधान अभिव्यक्ति की स्वतंतता पर युक्तियुक्त निर्बंधनों को अधिरोपित करना है। ताकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हवाला देकर लोकतंत्र का चौथा खंभा मीडिया के द्वारा न्यायपालिका की सुनवाई से पहले और उसके समानांतर सुनवाई शुरू नहीं किया जा सके और व्यवस्थापिका में प्रस्तुत किसी विधेयक पर चर्चा से पूर्व एवं उसके समांतर किसी विधेयक पर चर्चा शुरू नहीं किया जा सके। मीडिया के इस कार्य से दोनों संवैधानिक संस्था जनांकांक्षाओं के दबाव में आ जाती है और संवैधानिक उत्तरदायित्वों के वास्तविक निर्वहन में पीछे रह जाती है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने प्रस्तावना को संविधान की आत्मा माना है। प्रस्तावना के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या है? भारत का संविधान किस प्रकार के सरकार की स्थापना करता है तथा नागरिकों को किस प्रकार की स्वतंत्रता और अधिकार प्रदान करता है? प्रस्तावना ही संविधान के लक्ष्यों, उद्देश्यों, आदर्शों और आकांक्षाओं

को स्पष्ट करती है। प्रस्तावना, व्यवस्थापिका के लिए एक ऐसा आदर्श है जिसके अनुरूप कानून का निर्माण करना उसका पवित्र कर्तव्य है। यह न्यायपालिका के लिए एक प्रकाश स्तंभ का कार्य करती है। जब भी कोई विवादपूर्ण संवैधानिक कानून न्यायपालिका में आता है जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं है तो न्यायाधीश प्रस्तावना की ओर देखते हैं जिसमें संविधान निर्माताओं के वास्तविक उद्देश्य छूपे रहते हैं।

उच्चतम न्यायालय के शब्दों में ''हमारे संविधान की संरचना प्रस्तावना में वर्णित बुनियादी तत्त्वों पर खड़ा है। यदि इनमें से किसी भी तत्त्व को हटा दिया जाए तो सारा संरचना ही ढह जाएगा और संविधान अभी जो है वह नहीं रह जायेगा बल्कि अपना व्यक्तित्व और पहचान खो देगा।'' डॉ. सुभाष कश्यप के शब्दों में, ''संविधान शरीर है तो प्रस्तावना उसकी आत्मा, प्रस्तावना आधारशिला है तो संविधान उस पर खड़ी अट्टालिका, प्रस्तावना तथ्य निर्देश है तो संविधान के विभिन्न अनुच्छेद उस तथ्य की सिद्धि के साधन।''

अतः प्रस्तावना, दोनों संवैधानिक संस्थाओं के लिए साझे लक्ष्यों, उद्देश्यों, आदर्शों और आकांक्षाओं को स्पष्ट करती है। जब व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का लक्ष्य, आदर्श, उद्देश्य और आकांक्षा एक है तब उसकी पूर्ति के लिए दोनों संवैधानिक संस्थाओं के बीच संघर्ष के समाधान का निदान प्रस्तावना में ही निहित है।

निष्कर्ष

प्रस्तावना, भारतीय संविधान के आदर्शों, उद्देश्यों, आकांक्षाओं एवं लक्ष्यों का दर्पण है। व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका को भी समय-समय पर अपना चेहरा इसी दर्पण में देखना चाहिए जिसमें इन दोनों संवैधानिक संस्थाओं के बीच संघर्ष का समाधान और उसके किन्तु, परन्तु का भी निदान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डा० जय नारायण पाण्डेय (2019) : भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद।
2. ब्रजकिशोर शर्मा (2019) : भारत का संविधान एक परिचय, पेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
3. एम० लक्ष्मीकान्त (2019) : भारत की राजव्यवस्था, टाटा मैग्रो हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. डा० पुखराज जैन (2020) : भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. सुभाष कश्यप (2015) : हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली।
6. बालमुकुंद अग्रवाल (2015) : हमारी न्यायपालिका, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली।
7. सुभाष कश्यप (2015) : हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली।
8. डा० दुर्गा दास बसु (2019) : भारत का संविधान एक परिचय, जैन बुक एजेंसी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
9- hindi.livelaw.in

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

मुर्दहिया' का पुनर्पाठ : दलित आत्मानुभूति, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विडंबनाओं का विस्तृत विश्लेषण

प्रिंस गुप्ता
पी.एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
ई.मेल - prince-gupta-rewa-mp@gmail.com

शोध-सारांश

'मुर्दहिया' हिंदी दलित आत्मकथा साहित्य की एक प्रतिनिधि कृति है, जिसमें डॉ. तुलसीराम ने अपने बचपन और सामाजिक परिवेश के अनुभवों के माध्यम से भारतीय ग्रामीण समाज की जाति-आधारित संरचना का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह आत्मकथा व्यक्तिगत जीवन-वृत्तांत से आगे बढ़कर सामूहिक दलित स्मृति का जीवंत दस्तावेज़ प्रस्तुत करती है। वर्ष 2010 में प्रकाशित इस कृति में भूख, अपमान, सामाजिक बहिष्कार और श्रम की अनिवार्यता जैसे प्रसंग केवल संवेदना उत्पन्न नहीं करते, बल्कि यह स्पष्ट करते हैं कि जाति-व्यवस्था किस प्रकार मनुष्य की संभावनाओं को सीमित करती है। 'मुर्दहिया' सांस्कृतिक विडंबनाओं—विशेष रूप से धर्म और सामाजिक भेदभाव के अंतर्विरोध को उजागर करती है तथा लोक-भाषा के माध्यम से दलित जीवनानुभव को वैचारिक गरिमा प्रदान करती है। यह रचना दलित समाज में फैले अंधविश्वासों, अशिक्षा और उससे उपजे शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। साथ ही यह दिखाती है कि गरीबी के बावजूद लोककथाओं और लोकगीतों के माध्यम से दलित समुदाय अपनी सांस्कृतिक जीवंतता बनाए रखता है। लेखक ने अपने गाँव के लगभग सभी अनुभवों को अत्यंत सरल और निष्पक्ष भाव से आत्मकथा में व्यक्त किया है। इस प्रकार, यह कृति आत्मानुभूति को सामाजिक आलोचना में रूपांतरित करते हुए अस्मिता, प्रतिरोध और सामाजिक न्याय की वैचारिक भूमि तैयार करती है।

बीज शब्द : दलित आत्मकथा, अस्मिता, प्रतिरोध, आत्मानुभूति, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विडंबना, अंबेडकरवादी चेतना, सामाजिक न्याय, शिक्षा और मुक्ति।

शोध-पत्र

'मुर्दहिया' तुलसीराम की आत्मकथा है, जो हिंदी दलित साहित्य का एक मील का पत्थर मानी जाती है। इसमें लेखक ने अपने बचपन और युवावस्था के अनुभवों के ज़रिए जाति-आधारित ग्रामीण जीवन के कष्टों, बहिष्कार और श्रम को वर्णित किया है। 'मुर्दहिया' शब्द स्वयं एक प्रतीक है, जो दलित समुदाय के बहिष्कार और अपमानित जीवन-स्थितियों का संकेत देता है। लेखक ने अपनी आत्मकथा में शिक्षा, सामाजिक न्याय, और दलित अस्मिता की खोज को मुख्य रूप से उभारा है। जिससे यह केवल एक व्यक्तिगत कथा नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव की पुकार भी बन जाती है। हिंदी दलित आत्मकथा-साहित्य ने भारतीय समाज की उन परतों को उद्घाटित किया है, जिन्हें मुख्यधारा साहित्य लंबे समय तक

हाशिए पर रखता रहा। इस परंपरा में तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' विशेष महत्व रखती है। यह कृति केवल एक व्यक्ति की जीवन-गाथा नहीं, बल्कि उत्तर भारत के ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिगत संरचना, सांस्कृतिक अंतर्विरोधों और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

दरअसल 'मुर्दहिया' उस स्थान को कहा जाता है जहाँ शवों को जलाया या दफनाया जाता है। राजकमल प्रकाशन के ग्यारहवें संस्करण के अनुसार मुर्दहिया 184 पृष्ठ की आत्मकथा है जो सात अध्यायों में विभक्त है। इसमें लेखक ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा से लेकर मैट्रिक तक की शैक्षिक यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि इस कृति का केंद्र स्वयं तुलसीराम नहीं हैं; इसके मूल में उनका गाँव और वहाँ का दलित जीवन है। गाँव के दलित समुदाय की अंधश्रद्धा, उससे जुड़े कर्मकांड, अशिक्षा, अफवाहों का फैलाव, भूत-प्रेत के प्रति व्याप्त भय, गहरी गरीबी, आजीविका के लिए निरंतर संघर्ष, उनके पर्व-त्योहार, पूजा-पाठ और लोकगीत - इन सबका जीवंत चित्रण इसमें मिलता है। साथ ही गाँव में रहने वाले कुछ विचित्र किंतु असाधारण व्यक्तित्व भी कथा को विशिष्ट आयाम देते हैं। कुल मिलाकर, यह आत्मकथा एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे गाँव और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ की सामूहिक गाथा बन जाती है।

मुर्दहिया में तुलसीराम ने अपने परिवार और निजी जीवन की अत्यंत सूक्ष्म घटनाओं को भी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ चित्रित किया है। उन्होंने अपने गाँव के अनेक पात्रों जैसे उनकी दादी, फक्कड़ बाबा, पग्गल बाबा, बंकिया डोम या फिर चिंतामणि सिंह और सुग्रीव सिंह को बड़ी स्वाभाविकता से उकेरा है। धरमपुर से जुड़ी स्मृतियों को संजोते हुए लेखक ने दुःख, अभाव और संघर्ष से भरे जीवन के साथ-साथ मनुष्य की निराशा, अवसाद और अपमानजनक परिस्थितियों को बिना किसी लाग-लपेट के शब्दों में व्यक्त किया है। वे केवल अपने गाँव तक सीमित नहीं रहते, बल्कि आसपास के गाँवों का भी वर्णन करते हैं, जिससे पाठक पूर्वांचल के ग्रामीण जीवन, उसकी संस्कृति और सामूहिक मानसिकता को गहराई से समझ सकें।

इस आत्मकथा में यह स्पष्ट किया गया है कि दलित समुदाय लंबे समय तक अशिक्षा और अंधविश्वास की जकड़न में उलझा रहा। अन्य वर्गों की तुलना में शिक्षा के प्रति उनकी दृष्टि भी अलग थी, जिसका एक बड़ा कारण आर्थिक अभाव था। लगातार गरीबी में जीवन बिताते हुए यह समुदाय अनेक प्रकार की यातनाएँ सहता आया है; दरिद्रता मानो उनके हिस्से का स्थाई अभिशाप बन गई थी। लेखक की शिक्षा की शुरुआत भी किसी आदर्शवादी उद्देश्य से नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक आवश्यकता से हुई - ताकि वे दलितों की चिट्ठियाँ पढ़ सकें। गाँव के ब्राह्मण प्रायः उनकी चिट्ठियाँ पढ़ने से इंकार कर देते थे, और यदि पढ़ते भी थे तो बहुत आग्रह-विनय के बाद। ऐसे में तुलसीराम ने अपनी प्रतिभा और जिज्ञासा के बल पर पढ़ना सीखा और धीरे-धीरे पूरे गाँव के दलितों के पत्र पढ़ने लगे। वे परिश्रम और एकाग्रता से अध्ययन करते थे। घरवालों को कभी-कभी लगता कि वे काम से बचने के लिए पढ़ाई का बहाना बना रहे हैं, पर वास्तविकता यह थी कि उनका मन शारीरिक श्रम की अपेक्षा अध्ययन में अधिक रमता था। उनका अंग्रेजी के प्रति अलग आकर्षण था। वे लिखते हैं— ''अंग्रेजी के प्रति मेरा आकर्षण एक तरह के पागलपन में बदल गया। मुंशी जी जो कुछ सिखाते-पढाते, मैं सब कुछ रट लेता था। यहाँ तक कि किताब से जो भी पाठ पढ़ाते मैं दूसरे दिन ही उसे जबानी सारा कुछ बोल देता था।.....शीघ्र ही मैं अनेक अंग्रेजी के स्वतंत्र वाक्यों का मालिक बन बैठा। और जब मैं दलित बस्ती में किसी के सामने इन वाक्यों को बोलता तो लोग चकाचौंध होकर मुझे घूरने लगते थे।''[1]

'मुर्दहिया' भारतीय ग्रामीण समाज की जाति-आधारित संरचना को भीतर से उद्घटित करती है। ऊँची जातियों का आर्थिक और धार्मिक वर्चस्व दलित समुदाय को निम्नतम पायदान पर बनाए रखता है। मृत पशुओं को ढोना, चमड़ा उतारना, या 'अछूत' माने जाने वाले श्रम करना - ये सब केवल पेशागत भूमिकाएँ नहीं, बल्कि जातिगत निर्धारण हैं। यहाँ सामाजिक संरचना का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट होता है कि जाति केवल सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि जीवन-परिस्थितियों को नियंत्रित करने वाली शक्ति है। मुर्दहिया में दलित जीवन का चित्रण केवल सामाजिक स्थितियों का विवरण नहीं, बल्कि गहरी पीड़ा की अभिव्यक्ति है। दलितों के संघर्षों के साथ सदैव एक स्थायी वेदना जुड़ी रहती है, जो सामान्य जन की पीड़ा से भिन्न और अधिक जटिल होती है। तुलसीराम केवल अपनी व्यक्तिगत कथा नहीं कहते, बल्कि वे समूचे दलित बालकों और युवाओं की

सामूहिक पीड़ा को स्वर देते हैं। वे स्वयं चमार जाति से थे; ऊपर से चेचक के गहरे दाग और एक आँख की दृष्टि का अभाव - इन शारीरिक और सामाजिक दोनों प्रकार की चुनौतियों ने उनके जीवन को और कठिन बना दिया। इन परिस्थितियों से उत्पन्न हीनता, उपेक्षा और मानसिक आघात से वे निरंतर संघर्ष करते रहे, किंतु इन्हीं अनुभवों ने उनकी संवेदना और जिजीविषा को आकार भी दिया। वे लिखते हैं— "बार - बार दोहराई जाने वाली वह पुरानी कनवा-कनवा की बौछार उन सियारों के जबड़ों से कई गुना ज्यादा तेजी से मेरे मस्तिष्क को बेधती थी।"[2]

मुर्दहिया में अभावग्रस्त जीवन की त्रासदी अत्यंत मार्मिक रूप में सामने आती है। जो व्यक्ति स्वयं भूख और गरीबी का अनुभव करता है, वही जान सकता है कि पेट की आग किस हद तक मनुष्य को तोड़ देती है। जब जीवन निर्वाह का संकट गहराता है, तो सही और गलत के बीच की रेखा धुंधली पड़ जाती है। आत्मकथा में तुलसीराम भी ऐसी ही परिस्थितियों से गुजरते हुए दिखाई देते हैं। आजमगढ़ की ओर जाने वाली सड़क पर वे भूखे-प्यासे चलते रहते हैं। भूख की तीव्रता उन्हें इतना विवश कर देती है कि अंततः वे खेत से गन्ना तोड़ लेने जैसे कदम उठाने को बाध्य हो जाते हैं। यह प्रसंग केवल एक घटना नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था का संकेत है जहाँ अभाव मनुष्य की नैतिकता को भी चुनौती देने लगता है। मुर्दहिया में अभाव को जीवन की मूल पीड़ा के रूप में देखा गया है। गरीबी मनुष्य की इच्छाओं को कुंठित कर देती है और दलितों के लिए यह पीड़ा बहुआयामी तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। तुलसीराम स्वयं भी इसी दंश से गुजरते हैं। आर्थिक तंगी के कारण अनेक दलित बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं; फीस जुटाना भी उनके लिए कठिन होता है। तुलसीराम को भी दसवीं की परीक्षा के लिए 30 रुपये की फार्म-फीस न होने की समस्या का सामना करना पड़ा।

मुर्दहिया में तीसरा अध्याय अकाल पर केंद्रित है, जिसमें 1958-59 के भीषण सूखे का मार्मिक चित्रण है। लगातार दो वर्षों तक कम वर्षा होने से फसलें नष्ट हो गईं और गाँव में भुखमरी की स्थिति पैदा हो गई। प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव विशेष रूप से दलित जीवन पर और भी भयावह रूप में सामने आता है। सबसे अधिक कष्ट कमजोर वर्गों, विशेषकर मुसहरों को हुआ, जिनके लिए जीविका के साधन भी समाप्त हो गए। खेतों की सूखी, फटी जमीन पर बनी दरारें लेखक को विचित्र आकृतियों जैसी प्रतीत होती हैं, किंतु उस दृश्य के पीछे भूख और पीड़ा की गहरी त्रासदी छिपी हुई थी। तुलसीराम इस आपदा का हृदय विदारक वर्णन करते है— ''मुसहरों की बहुत दयनीय हालत हो गई थी। वे मेढक तथा चूहे खाने के लिए भी जाने जाते थे, किन्तु बरसात न होने के कारण उस वर्ष मेढकों का कहीं अता-पता नहीं था, इसलिए उनकी परेशानी बहुत ज्यादा बढ़ गई थी।"[3]

मुर्दहिया में दलितों पर होने वाले शोषण और अत्याचार का सजीव चित्रण है। आर्थिक मजबूरी के कारण उन्हें जीविका के लिए जमींदारों पर निर्भर रहना पड़ता था। सामंती मानसिकता वाले लोग उनकी गरीबी और अशिक्षा का लाभ उठाकर उनसे कठोर श्रम कराते, अपमानित करते और कई बार हिंसा तक करते थे। आज़ादी के बाद जमींदारी व्यवस्था भले समाप्त हो गई, पर सामाजिक उत्पीड़न जारी रहा। मुर्दहिया में जमींदारों की आर्थिक शक्ति और क्रूरता का उल्लेख मिलता है। धन और गुंडों के बल पर वे दलितों को दबाए रखते, उनकी जमीन हड़प लेते, मनमाना लगान वसूलते और मार-पीट करते थे। अकाल के समय भी उनके गोदाम अनाज से भरे रहते, पर बीज के नाम पर दी जाने वाली 'बेंगही' को वे ऊँचे ब्याज पर लौटाने की शर्त रखते, जिससे भूख से जूझते दलित और अधिक शोषित होते। उस समय तौल में भी धांधली होती थी - सेर के नाम पर छोटे या टूटे पत्थर से नाप कर कम अनाज दिया जाता था। इस प्रकार अकाल और गरीबी के दौर में भी शोषण और मुनाफाखोरी जारी रहती थी।

मुर्दहिया में हिंदू समाज की छुआछूत जैसी अमानवीय परंपरा की तीखी आलोचना की गई है। केवल जाति के आधार पर मनुष्य को अछूत मानना और उसे छूना तक पाप समझना सामाजिक विडंबना को उजागर करता है। लेखक दिखाते हैं कि जहाँ लोग पशुओं या निर्जीव वस्तुओं की पूजा करते हैं, वहीं जीवित मनुष्य से दूरी बनाते हैं। यह कृति गाँव में दलितों के प्रति भेदभाव, असंवेदनशीलता और सवर्ण समाज की स्वार्थपूर्ण मानसिकता को स्पष्ट रूप से सामने लाती है। अनीता भारती लिखतीं हैं— दलितों को गाँव से दूर भगाने, उन पर गाँव के दक्षिण में अपनी बस्ती बसाने या श्दक्खिन टोलीश बनाने में भी

सवर्णों का यही जहरीला अन्धविश्वास काम करता है। हिन्दू लोगों के अन्धविश्वास, और उससे उपजा भयानक डर, जिसमें हमेशा खुद का और अपने परिवार की जान-माल सुरक्षा का खतरा केंद्र में होता है।''[4]

'मुर्दहिया' में धार्मिक जीवन का वर्णन अत्यंत मार्मिक है। गाँव में कथा-कीर्तन, पूजा-पाठ और धार्मिक अनुष्ठानों की बहुलता है, परंतु दलितों को मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। यह द्वंद्व भारतीय संस्कृति की गहरी विडंबना को प्रकट करता है। लेखक ने कई स्थानों पर दिखाया है कि धार्मिक कर्मकांड सामाजिक पदानुक्रम को वैधता प्रदान करते हैं। मुर्दहिया में देवी-देवताओं और धार्मिक आस्थाओं से जुड़े लोकविश्वासों का भी विस्तार से चित्रण है। धर्म के प्रति गहरी आस्था के कारण लोग अनेक देवी-देवताओं की कल्पना कर लेते हैं और पारंपरिक रीति-रिवाजों के अनुसार उनकी पूजा करते हैं। तंत्र-मंत्र, बलि और चढ़ावे जैसी विधियों के माध्यम से अनुष्ठान किए जाते हैं। जब किसी पर देवी-देवता का 'संचार' माना जाता है, तो लोग उसे विशेष शक्ति संपन्न समझते हैं; भूत-प्रेत उतारने जैसी क्रियाएँ भी इसी आस्था का हिस्सा होती हैं। गाँव के लोग इन मान्यताओं पर आँख मूँदकर विश्वास करते हैं। उल्लेखनीय है कि दलित समुदाय के अपने अलग देवी-देवता होते हैं– कोई चमरिया माई की पूजा करता है तो कोई डीह बाबा की। इस प्रकार यह प्रसंग दलित समाज की विशिष्ट धार्मिक संरचना और उसमें व्याप्त अंधविश्वासों को उजागर करता है। वे लिखतें है– ''हमारे गाँव में 'चमरिया माई' और 'डीह बाबा' दो ऐसे देवी-देवता थे, जिनकी पूजा दलित करते थे। इन दोनों को सूअर तथा बकरे की बलि दी जाती थी। बलि के अलावा इन्हें 'हलवा - सोहारी' (पुड़ी), 'धार' तथा पुजौरा भी चढ़ाया जाता था। एक लोटा पानी में कुछ जायफल, छुआरा, लौंग आदि मिला दिया जाता, जिसे 'धार' कहते थे।.....घर वाले भूत की पूजा करते थे, किन्तु गाँव में चमरिया माई या डीह बाबा की तरह उसका कोई स्थान निर्धारित नही था।.....चेचक निकलने पर मनौती के अनुसार देवी श्शीतला माई की भी पूजा की जाती थी। वहाँ साल में एक बार गाँव के सारे दलित मिलकर जाते और शीतला माई को सूअर के बच्चे की बलि के अलावा 'हलवा - सोहरी' भी चढाई जाती थी।''[5]

मुर्दहिया के एक अध्याय 'मुर्दहिया के गिद्ध तथा लोक जीवन' में दलित गाँव की कलात्मक परंपराओं का सजीव परिचय मिलता है। इसमें लोकगीत, लोकनृत्य और लोकशैली की विविध झलकियाँ प्रस्तुत हैं, जो विशेष रूप से दलित समुदाय में संरक्षित रही हैं। इन लोककलाओं के जातिसूचक नाम - जैसे चमरउवा नाच, धोबियउवा नाच, करउवा धुन और गोड़ता नाच उनकी सांस्कृतिक पहचान को रेखांकित करते हैं। मुर्दहिया में दलित लोक-संस्कृति का जीवंत चित्रण मिलता है। उत्सव, त्योहार और लोकगीत उनकी सांस्कृतिक पहचान का आधार हैं, जिनके माध्यम से वे सुख-दुख, ऋतु-परिवर्तन और जीवनानुभवों को मातृभाषा में व्यक्त करते हैं। लोकजीवन से गहराई से जुड़े होने के कारण उनकी सांस्कृतिक परंपराएँ अब भी सुरक्षित हैं। यह कृति लोकचरित्र, लोकभाषा और लोकगीतों के साथ दलित बस्ती के संघर्ष की सशक्त गाथा प्रस्तुत करती है। आत्मकथा में लेखक को भांड मंडलियों द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर लोकशैली में तरह-तरह के व्यंग्य प्रस्तुत करना बहुत ही मार्मिक लगता था जैसे–

''हरिजन जाति सहै दुख भारी हो।
हरिजन जाति सहै, दुख भारी ॥
जेकर खेतवा दिन भर जोतली,
कहै देला गारी हो, दुख भारी ॥
हरिजन जाति सहै, दुख भारी ॥''

इसी तरह बालविवाह जैसी कुरीतियों पर तीखी टिप्पणियां, जो नंगी सच्चाइयों का पर्दाफाश कर देने वाली होती थीं, उन्हें हरवाहे नर्तक गा-गाकर अपनी नृत्यकला को बेहद आकर्षक बना देते थे। उदाहरण के लिए–

''मं त हौं जवान मोर बलमा लरिकइयां।
आधी-आधी रतिया क बाबा मांगै पनिया ॥

मं त जनि पियासल बाबा ले के गइलों पनिया,
बाबा के बोहरिया परै, धइलै करिहइयां
ऊ त लगलैं बोलै, जइसे बकरन की नइयां ॥''[6]

मुर्दहिया में लोकजीवन के साथ-साथ गहरे अंधविश्वासों का भी चित्रण है। गाँव में यह मान्यता प्रचलित थी कि मंगलवार को साँप के काटने पर ज़हर असर नहीं करता। लेखक के पिता भी ब्राह्मणों के शाप और पाप-पुण्य की धारणाओं से अत्यधिक भयभीत रहते थे। ब्राह्मण धर्म के नाम पर दलितों को डराकर उनसे काम करवाते और पाप-पुण्य के भ्रम में उलझाकर अपना स्वार्थ साधते थे। परिणामस्वरूप भोले-भाले दलितों के मन में पाप का भय इतनी गहराई से बैठ गया था कि उससे मुक्त होना उनके लिए लगभग असंभव हो गया। आत्मकथा में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जो इस मानसिक बंधन को उजागर करते हैं। एक प्रसंग कुछ इस तरह से है– ''मेरे पिता जी गृह कलह से ऊबकर आसनसोल चले गये। वे वहाँ किसी 'कोइलरी' में काम करने के लिए गये थे। किन्तु मुश्किल से 15 दिन रहने के बाद उन्हें सुदेस्सर पांडे की हरवाही छोड़ देने का श्पाप श्सताने लगा। अतः अपने अन्धविश्वासी श्ब्रह्महत्याश के पाप से बचने के लिए वे गाँव वापस आ गए।''[7]

लेखक ने आत्मकथा में प्रमाणों सहित यह दिखाया है कि दलित समाज लोककला का संवाहक और संरक्षक रहा है। गाँव में अलग-अलग जातियों के अपने विशिष्ट लोकगीत प्रचलित हैं। दादी द्वारा गाई जाने वाली छोटी काव्यमय कथाएँ भी इसी लोकपरंपरा का हिस्सा हैं, जिनमें स्नेह, संवेदना और लोकजीवन की आत्मा समाहित है। 'मुर्दहिया' की भाषा लोक-जीवन से उपजी है। पूर्वांचल की बोलियों, कहावतों और मुहावरों का प्रयोग आत्मकथा को प्रामाणिकता प्रदान करता है। यह भाषिक संरचना दलित अनुभव को उसकी अपनी जमीन पर स्थापित करती है। शरणकुमार लिंबाले दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में लिखते हैं कि दलित साहित्य की भाषा अनुभव की सच्चाई से जन्म लेती है। 'मुर्दहिया' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। भाषा यहाँ प्रतिरोध का औजार बनती है—वह संस्कृतनिष्ठ, अभिजात भाषा को चुनौती देती है और लोक-भाषा को वैचारिक गरिमा प्रदान करती है।

वर्तमान समय में, जब भारतीय समाज विकास और आधुनिकता की बात करता है तो 'मुर्दहिया' का पुनर्पाठ यह प्रश्न उठाता है कि क्या जातिगत असमानताएँ समाप्त हुई हैं? यह कृति हमें स्मरण कराती है कि सामाजिक न्याय केवल संवैधानिक प्रावधानों से संभव नहीं, बल्कि मानसिकता के परिवर्तन से भी जुड़ा हुआ है। दलित आत्मकथा का पुनर्पाठ सामाजिक संवेदनशीलता को जाग्रत करता है और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करता है। 'मुर्दहिया' का पुनर्पाठ हमें यह समझने की दृष्टि देता है कि दलित आत्मकथा केवल पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि प्रतिरोध की वैचारिक घोषणा है। डॉ. तुलसीराम का जीवन-संघर्ष यह प्रमाणित करता है कि सामाजिक रूप से हाशिए पर धकेला गया मनुष्य भी अपनी चेतना और शिक्षा के बल पर संरचनात्मक अन्याय को चुनौती दे सकता है। यह कृति भारतीय समाज के उस द्वंद्व को बेनकाब करती है, जहाँ आध्यात्मिकता की आड़ में असमानता को संरक्षित किया गया। 'मुर्दहिया' इस विडंबना को शब्द देती है और पाठक को आत्ममंथन के लिए विवश करती है। अंततः, 'मुर्दहिया' दलित अस्मिता की पुनर्स्थापना का दस्तावेज़ है—यह बताती है कि इतिहास के हाशिए पर लिखी गई कहानियाँ ही समाज के वास्तविक केंद्र को उजागर करती हैं। यह आत्मकथा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य के अधिक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की वैचारिक नींव है।

संदर्भ सूची

1. तुलसीराम, 'मुर्दहिया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2024, पृ. 101
2. वही, पृ. 44
3. वही, पृ. 72
4. श्रीधरम (सं.), 'तुलसीराम व्यक्तित्व एवं कृतित्व', अंतिका प्रकाशन, 2016, पृ. 161

5. तुलसीराम, 'मुर्दहिया', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2024, पृ. 11
6. वही, पृ. 106
7. वही, पृ. 127

अन्य सहायक ग्रंथ

- वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001
- नैमिशराय, मोहनदास, 'भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013
- सिंह, डॉ. एन., 'दलित साहित्य के प्रतिमान', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
- बेचैन, श्यौराज सिंह, 'चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य', नवलेखन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001
- सिंह, डॉ. एन., 'दलित चिंतन अनुभव और विचार', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015
- नैमिशराय, मोहनदास, 'हिंदी दलित साहित्य', साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011
- वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020
- लिंबाले शरणकुमार, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', लोकचेतन प्रकशन, 2016
- गुप्ता रमणिका, 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Tariff Wars and the Crisis of Multilateral Trade Law

Dr. Sureshwer Tiwari
Principal HLM Law College, Duhai,
Ghaziabad, Uttar Pradesh- 201206

Abstract

The resurgence of tariff wars in contemporary international trade marks a critical rupture in the foundations of multilateral trade law. Once designed to replace power-based economic relations with a rule-based legal order, the multilateral trading system has increasingly been challenged by unilateral tariff measures, retaliatory escalation, and strategic invocations of national security. This paper examines tariff wars not merely as economic disputes, but as a systemic legal crisis that exposes doctrinal, institutional, and enforcement failures within multilateral trade law.

Through a doctrinal and analytical approach, the study evaluates how tariff wars undermine core legal principles such as tariff bindings, most-favoured-nation treatment, and peaceful dispute settlement. Particular attention is given to the paralysis of the WTO Appellate Body, the expansive use of security exceptions, and the resulting erosion of compliance incentives. The paper argues that tariff wars have transformed from exceptional deviations into rational policy instruments in an environment where legal enforcement has weakened.

The analysis further assesses ongoing reform proposals aimed at restoring appellate review, recalibrating security exceptions, and strengthening collective compliance mechanisms. It concludes that while institutional reform is necessary, the survival of multilateral trade law ultimately depends on renewed political commitment to legal self-restraint. Without such commitment, tariff wars risk becoming a permanent feature of global trade, signalling a shift from rule-based governance toward managed economic rivalry.

Keywords : Tariff Wars, Multilateral Trade Law, World Trade Organization, GATT 1994, Appellate Body Crisis, National Security Exceptions, Trade Dispute Settlement, Rule-Based Trade Order, Economic Unilateralism

1. Introduction

The resurgence of tariff wars in the twenty-first century marks a profound rupture in the normative foundations of multilateral trade law. Long regarded as a system governed by predictability, reciprocity, and rule-based discipline, the global trading order has increasingly been reshaped by unilateral tariff measures, retaliatory trade actions, and strategic economic coercion. The escalation of tariff

conflicts—most visibly between major economies—has exposed deep structural weaknesses in the multilateral trade regime, particularly within the framework of the World Trade Organization (WTO).[1]

Multilateral trade law was designed to restrain precisely such unilateralism. The General Agreement on Tariffs and Trade (GATT) and its successor agreements institutionalized binding tariff commitments, non-discrimination principles, and dispute settlement mechanisms intended to replace power-based trade relations with law-based governance. However, the contemporary wave of tariff wars suggests a gradual reversion to geopolitics-driven trade policy, where economic power increasingly overrides legal obligation.[2]

The crisis is not limited to the proliferation of tariffs alone, it is fundamentally a crisis of legal authority and compliance. The paralysis of the WTO Appellate Body, the expansive invocation of national security exceptions, and the growing preference for bilateral or regional trade arrangements have collectively weakened the enforcement capacity of multilateral trade law. As a result, tariff wars have become both a symptom and a catalyst of systemic erosion within the global trade legal order.[3]

From a legal perspective, tariff wars challenge core principles of multilateralism—most-favoured-nation treatment, tariff bindings, and peaceful dispute resolution. When states justify tariff escalations through contested interpretations of security, public interest, or emergency powers, the normative coherence of trade law is undermined. This raises critical questions about whether existing legal frameworks are capable of disciplining modern economic conflicts, or whether multilateral trade law is entering a phase of managed irrelevance.[4]

This research paper examines tariff wars not merely as economic disputes, but as a constitutional crisis of the multilateral trade legal system. It seeks to analyse how tariff wars expose doctrinal gaps, institutional fragilities, and enforcement failures within multilateral trade law, and whether the existing legal architecture can adapt to contemporary geopolitical realities. By situating tariff wars within the broader decline of multilateralism, the study evaluates the future viability of rule-based global trade governance.[5]

2. Research Methodology

This research adopts a **doctrinal and analytical methodology** to examine tariff wars as a legal and institutional crisis within the framework of multilateral trade law. The study is grounded in the interpretation of treaty texts, jurisprudence, and institutional practice, with particular emphasis on the normative structure of the World Trade Organization and its predecessor, the General Agreement on Tariffs and Trade.

Primary sources include multilateral trade agreements, especially the GATT 1994 and related WTO agreements governing tariffs, non-discrimination, and dispute settlement. The research also draws upon dispute settlement practice, including panel and appellate jurisprudence, to analyse how tariff measures and retaliatory actions have been legally framed and contested within the multilateral system.

Secondary sources comprise scholarly writings in international economic law, policy analyses by international organisations, and contemporary legal commentary addressing the Appellate Body crisis, national security exceptions, and the fragmentation of trade governance. These materials are

used to situate tariff wars within broader debates on the decline of multilateralism and the resurgence of power-based trade relations.

3. Conceptual Framework: Tariff Wars in International Trade Law

Tariff wars may be defined as sustained and reciprocal escalations of customs duties adopted unilaterally by states, often accompanied by retaliatory measures, and pursued outside the ordinary discipline of multilateral dispute settlement. Unlike conventional trade disputes—where disagreements over tariff measures are resolved through negotiation or adjudication—tariff wars are marked by strategic defiance of legal commitments and an explicit willingness to absorb legal and economic costs for perceived geopolitical advantage. In this sense, tariff wars represent a departure from law-based trade governance toward power-centred economic statecraft.[6]

The multilateral trading system rests on the principle of **legal self-restraint**. States voluntarily bind their tariff levels, accept non-discrimination obligations, and submit to compulsory dispute settlement in exchange for stability and predictability in international trade relations. This balance between sovereignty and obligation is the conceptual cornerstone of the system institutionalised under the **World Trade Organization**. Tariff wars fundamentally disrupt this equilibrium by reasserting unilateral tariff authority and reducing legal commitments to instruments of convenience rather than binding norms.[7]

From a normative standpoint, tariff wars reveal a structural tension inherent in multilateral trade law: the coexistence of binding economic obligations with broadly framed exception clauses. States engaged in tariff escalation frequently rely on expansive interpretations of national security or public interest exceptions, particularly under Article XXI of the **General Agreement on Tariffs and Trade**. While such provisions were historically conceived as narrowly exceptional safeguards, their contemporary invocation as routine justifications for trade restrictions risks transforming exceptions into default tools of trade policy. This development weakens the normative hierarchy of the legal system and erodes the credibility of treaty obligations.[8]

Tariff wars also carry profound systemic implications for multilateral trade law. First, they undermine **normative certainty**, as tariff bindings lose their stabilising function when states openly demonstrate a readiness to disregard them. Second, they weaken **institutional authority**, particularly when tariff disputes are pursued outside the framework of multilateral adjudication or in direct defiance of dispute settlement outcomes. Third, they accelerate **fragmentation of the trading system**, as states increasingly privilege bilateral arrangements, retaliatory coalitions, or regional trade blocs over multilateral engagement.[9]

Conceptually, tariff wars must therefore be understood not as isolated policy choices, but as manifestations of a deeper constitutional stress within the multilateral trade regime. They expose the fragility of consent-based legal systems in the absence of effective enforcement and illustrate how geopolitical rivalry can override legal discipline. This framework provides the foundation for analysing whether multilateral trade law retains the capacity to constrain contemporary economic conflict, or whether it is gradually evolving into a permissive order that accommodates unilateralism under the veneer of legal flexibility.[10]

4. Tariff Wars and the Erosion of Multilateral Trade Norms

A. Breakdown of Tariff Bindings and Predictability

One of the central legal achievements of multilateral trade law has been the binding of tariff commitments. Through successive negotiation rounds, states agreed to cap their tariff levels, thereby replacing uncertainty with predictability. Tariff wars fundamentally undermine this structure by demonstrating that tariff bindings can be set aside when geopolitical or strategic interests are invoked. Once major trading powers disregard bound rates, the normative force of tariff schedules weakens across the system, encouraging emulation by other states.[11]

This erosion of predictability has a cascading legal effect. Smaller and developing economies, which rely most heavily on stable tariff commitments, face heightened vulnerability when powerful states abandon restraint. The credibility of negotiated concessions is diminished, and the incentive to comply with binding obligations is correspondingly reduced. As a result, tariff bindings risk devolving from enforceable legal commitments into aspirational benchmarks.[12]

B. Most-Favoured-Nation Principle under Strain

The principle of most-favoured-nation treatment constitutes a cornerstone of multilateral trade law. By prohibiting discriminatory tariff treatment among trading partners, it seeks to prevent fragmentation and power-based preferentialism. Tariff wars, however, routinely violate this principle by targeting specific states through punitive tariffs while exempting others for strategic or political reasons. Such conduct reintroduces selective economic pressure as a legitimate tool of trade policy.[13]

When discriminatory tariffs become normalized, the multilateral trading system shifts from a rules-based order to a managed system of bilateral leverage. This not only weakens the legal status of the most-favoured-nation obligation but also incentivizes retaliatory discrimination, thereby accelerating systemic fragmentation. The cumulative effect is the erosion of the universality that once distinguished multilateral trade law from pre-war power politics.[14]

C. National Security Exceptions and Legal Indeterminacy

The increasing reliance on national security justifications represents one of the most legally consequential aspects of contemporary tariff wars. Article XXI of the **General Agreement on Tariffs and Trade** was historically regarded as an exceptional safeguard, intended for rare and extreme circumstances. In the context of modern tariff wars, however, states have adopted expansive and self-judging interpretations of security, extending the exception to encompass economic competitiveness and strategic industrial policy.[15]

This trend introduces profound legal indeterminacy. If national security claims are insulated from meaningful review, the distinction between lawful exception and unlawful protectionism collapses. The authority of multilateral trade law is thereby weakened, as legal constraints become subordinate to unilateral political determinations. Tariff wars thus expose the vulnerability of exception clauses to systemic abuse.[16]

D. Dispute Settlement Bypass and Institutional Marginalisation

Multilateral trade law was designed to channel conflicts into adjudicatory mechanisms rather than retaliatory escalation. The weakening of dispute settlement—most notably through the paralysis of appellate review—has deprived the system of its primary enforcement tool. In this environment,

tariff wars flourish precisely because the legal consequences of non-compliance are uncertain or unenforceable.[17]

The marginalisation of adjudication reinforces a cycle of unilateralism. States increasingly calculate that retaliatory tariffs yield greater strategic advantage than prolonged legal proceedings with uncertain outcomes. This behavioural shift further diminishes institutional authority and entrenches the perception that compliance with multilateral rulings is optional rather than obligatory.[18]

E. Normative Consequences for the Multilateral Trade Order

Collectively, these developments signify more than episodic non-compliance, they reflect a transformation in how states perceive multilateral trade law itself. Tariff wars signal a reorientation from legal obligation to strategic discretion, where rules are observed selectively and enforced asymmetrically. The multilateral trading system thus risks losing its normative character as a binding legal order and evolving into a forum for managed rivalry.[19]

From a systemic perspective, the erosion of trade norms undermines the legitimacy of multilateral governance. Law loses its coordinating function when compliance becomes contingent on relative power. Tariff wars, therefore, are not merely trade conflicts but indicators of a deeper crisis in the authority and coherence of multilateral trade law.[20]

5. The Appellate Body Crisis and Enforcement Breakdown

A. Centrality of Adjudication in Multilateral Trade Law

A defining feature of the multilateral trading system has been the transformation of trade obligations from diplomatic commitments into enforceable legal rules. This transformation was achieved through the establishment of a compulsory dispute settlement mechanism under the **World Trade Organization**, culminating in appellate review by the Appellate Body. The availability of binding adjudication replaced unilateral retaliation with legal resolution and conferred unprecedented legitimacy upon multilateral trade law.[21]

The dispute settlement system functioned not merely as a forum for resolving specific disputes, but as the constitutional backbone of the trading system. Through consistent interpretation of treaty provisions, appellate jurisprudence fostered coherence, predictability, and confidence in compliance. The erosion of this mechanism therefore strikes at the heart of multilateral trade governance.[22]

B. Paralysis of the Appellate Body

Since 2019, the Appellate Body has been effectively incapacitated due to the failure to appoint new members. This paralysis has created a legal vacuum at the highest level of trade adjudication. Panel reports can now be appealed "into the void," preventing their adoption and rendering dispute settlement outcomes unenforceable. The consequence is a system in which legal obligations formally persist, but effective remedies are unavailable.[23]

The absence of appellate review has fundamentally altered state behaviour. States engaged in tariff wars increasingly calculate that adverse panel findings can be neutralised through procedural obstruction. This has reduced the deterrent effect of dispute settlement and emboldened unilateral tariff action, particularly by economically powerful members.[24]

C. Impact on Compliance and Retaliation Dynamics

The enforcement deficit created by the Appellate Body crisis has intensified reliance on self-help remedies. Where adjudication fails, states revert to retaliatory tariffs and countermeasures as the primary means of dispute resolution. This dynamic directly contradicts the foundational objective of multilateral trade law: the substitution of law for power in managing economic conflict.[25]

Moreover, the asymmetry of economic power magnifies the consequences of enforcement breakdown. Smaller and developing economies face structural disadvantages in retaliatory capacity, rendering formal legal rights ineffective in practice. The crisis thus exacerbates inequality within the trading system and undermines its claim to fairness and neutrality.[26]

D. Legal Uncertainty and Fragmentation

The inability to secure final and binding interpretations of trade rules has introduced significant legal uncertainty. Divergent panel interpretations may persist unresolved, weakening the coherence of treaty law. In response, states increasingly seek legal certainty through bilateral or regional trade agreements that incorporate their own dispute settlement mechanisms. While such arrangements may offer short-term stability, they contribute to the fragmentation of the global trade legal order.[27]

This fragmentation further accelerates the decline of multilateralism. As states invest resources in alternative regimes, the incentive to restore and comply with multilateral adjudication diminishes. The Appellate Body crisis thus operates both as a cause and a consequence of systemic disintegration.[28]

E. Appellate Crisis as a Catalyst for Tariff Wars

The crisis of enforcement has transformed tariff wars from exceptional events into viable policy instruments. Without credible adjudicatory restraint, tariffs function as tools of strategic bargaining rather than legally regulated measures. This shift normalises economic coercion and weakens the normative authority of multilateral trade law.[29]

In this context, tariff wars are no longer aberrations but rational responses to institutional failure. The erosion of enforcement mechanisms has altered the cost-benefit calculus of compliance, making unilateral action increasingly attractive. The Appellate Body crisis therefore represents not merely an institutional malfunction, but a structural turning point in the evolution of the multilateral trading system.[30]

6. Reform Proposals and the Future of Multilateral Trade Law

A. Restoring Appellate Review and Institutional Legitimacy

Any meaningful response to the crisis of multilateral trade law must begin with the restoration of a credible appellate mechanism. The paralysis of appellate review has not only weakened enforcement but has also undermined the interpretive coherence of treaty obligations. Proposals advanced by several members emphasize procedural restraint, clarification of the standard of review, and reaffirmation of the limited mandate of adjudicators as means to rebuild confidence in appellate adjudication. The central challenge lies in reconciling judicial independence with member control, without sacrificing legal certainty.[31]

Institutional legitimacy depends upon the perception that adjudication serves the collective interest

of the membership rather than encroaching upon domestic regulatory autonomy. Reform initiatives therefore increasingly stress transparency, timeliness, and adherence to treaty text as foundational principles for restoring trust in multilateral adjudication.[32]

B. Recalibrating National Security Exceptions

The expansive use of national security justifications has emerged as one of the most destabilising features of contemporary tariff wars. Reform discourse increasingly recognises the need to recalibrate security exceptions to prevent their transformation into open-ended authorisations for protectionism. While absolute justiciability of security claims remains politically sensitive, a growing body of scholarship supports limited review mechanisms aimed at distinguishing genuine security concerns from economic opportunism.[33]

Clarifying the scope and application of security exceptions would serve a dual function: preserving essential sovereign prerogatives while safeguarding the integrity of multilateral commitments. Without such recalibration, the normative hierarchy of trade law risks collapse, as exception clauses become tools for systemic evasion rather than narrowly tailored safeguards.[34]

C. Strengthening Compliance through Collective Enforcement

Beyond adjudicatory reform, proposals have emerged advocating collective compliance mechanisms to counterbalance unilateral tariff escalation. These include enhanced surveillance of trade measures, collective responses to persistent non-compliance, and greater use of multilateral peer review. Such mechanisms aim to shift enforcement from bilateral retaliation toward coordinated institutional oversight, thereby reducing the incentive for tariff wars.[35]

Collective enforcement also addresses structural asymmetries within the trading system. By pooling institutional authority, smaller economies gain protection against coercive trade practices that they lack the capacity to counter individually. This approach reaffirms the foundational premise of multilateral trade law: that legal equality should mitigate disparities in economic power.[36]

D. Managing Plurilateralism without Fragmentation

The rise of plurilateral trade arrangements presents both an opportunity and a risk for the future of multilateralism. On one hand, issue-specific agreements among willing members may facilitate progress where consensus is unattainable. On the other, unchecked plurilateralism risks entrenching fragmentation and marginalising non-participating members. Reform proposals therefore emphasise the integration of plurilateral initiatives within the multilateral framework, subject to transparency and openness principles.[37]

Embedding plurilateral agreements within multilateral disciplines preserves systemic coherence while allowing regulatory experimentation. Properly designed, such arrangements can complement rather than undermine multilateral trade law, provided they remain inclusive in orientation and subordinate to core multilateral norms.[38]

7. Conclusion

The contemporary resurgence of tariff wars represents a fundamental challenge to the normative and institutional foundations of multilateral trade law. What initially appeared as episodic trade disputes have evolved into sustained patterns of unilateral tariff escalation, revealing deep structural

weaknesses in the rule-based global trading system. This study has demonstrated that tariff wars are not merely economic confrontations, but legal phenomena that expose the fragility of multilateral discipline in an era marked by geopolitical rivalry and strategic economic statecraft.

At the doctrinal level, tariff wars undermine core legal principles that have long defined multilateral trade law. Tariff bindings lose their stabilising function when states openly disregard negotiated commitments, while the most-favoured-nation principle is weakened by selective and punitive tariff targeting. The expansive invocation of national security exceptions further destabilises the legal order by blurring the distinction between lawful derogation and disguised protectionism. Collectively, these developments erode the normative coherence of multilateral trade law and diminish its capacity to constrain unilateral economic power.

Looking forward, the future of multilateral trade law depends on its capacity to adapt without surrendering its core legal identity. A reconstituted system must balance sovereign regulatory autonomy with enforceable legal constraints, accommodate legitimate security concerns without permitting systemic abuse, and integrate plurilateral initiatives without accelerating fragmentation. Whether tariff wars persist as a defining feature of global trade or recede as transitional disruptions will ultimately depend on the willingness of states to privilege rule-based cooperation over power-based confrontation.

In conclusion, tariff wars signify not the obsolescence of multilateral trade law, but a critical moment of reckoning. They compel a reassessment of how law functions in a world of shifting power relations and contested multilateralism. The survival of the multilateral trading system as a credible legal order will hinge on whether law can once again serve as a meaningful constraint on economic conflict, rather than a rhetorical justification for its escalation.

References

1. World Trade Organization, World Trade Report (recent editions) – analysis of rising trade restrictions and tariff escalation.
2. John H. Jackson, The World Trading System: Law and Policy of International Economic Relations, 2nd ed. – foundational principles of multilateral trade law.
3. WTO Dispute Settlement Body Reports and Secretariat Statements on the Appellate Body crisis.
4. General Agreement on Tariffs and Trade 1994, Articles I, II, XXI – core legal norms affected by tariff wars.
5. Dani Rodrik, The Globalization Paradox – tension between sovereignty and multilateral trade commitments.
6. Douglas A. Irwin, Clashing over Commerce: A History of US Trade Policy, University of Chicago Press — analysis of retaliatory tariff cycles and trade escalation.
7. John H. Jackson, The World Trading System: Law and Policy of International Economic Relations, MIT Press — legal self-restraint and reciprocity in trade law.
8. General Agreement on Tariffs and Trade 1994, Article XXI — scope and controversy of the national security exception.
9. Joost Pauwelyn, "The Rule of Law without the Rule of Lawyers?", Journal of International Economic Law — institutional erosion and fragmentation of trade governance.
10. Ernst-Ulrich Petersmann, International Economic Law in the 21st Century, Oxford University Press — constitutional stress in multilateral economic law.
11. World Trade Organization, World Trade Report (recent editions) — analysis of tariff bindings and rising

trade restrictions.
12. Kyle Bagwell and Robert W. Staiger, The Economics of the World Trading System, MIT Press — predictability and reciprocity in tariff commitments.
13. General Agreement on Tariffs and Trade 1994, Article I — legal foundation of the most-favoured-nation principle.
14. Robert Howse, "The End of the Global Trading System as We Know It", International Economic Law Journal — discrimination and systemic fragmentation.
15. GATT 1994, Article XXI — scope and interpretation of national security exceptions.
16. Joost Pauwelyn, "National Security and Trade Law", American Journal of International Law — risks of self-judging security claims.
17. WTO Dispute Settlement Body reports and Secretariat statements on the Appellate Body impasse.
18. Gregory Shaffer, Emerging Powers and the World Trading System, Cambridge University Press — strategic disengagement from adjudication.
19. Dani Rodrik, Straight Talk on Trade, Princeton University Press — shift from legal multilateralism to strategic trade policy.
20. Ernst-Ulrich Petersmann, "Multilateralism and International Economic Law", Oxford scholarship — legitimacy crisis in trade governance.
21. Understanding on Rules and Procedures Governing the Settlement of Disputes, Articles 17 and 23 — institutional role of appellate review.
22. John H. Jackson, The Jurisprudence of GATT and the WTO, Cambridge University Press — adjudication as constitutional function.
23. WTO Dispute Settlement Body records and Secretariat reports on the Appellate Body vacancy crisis.
24. Gregory Shaffer and David Pruzin, analyses on appeals into the void and enforcement paralysis.
25. Robert Hudec, Enforcing International Trade Law, Butterworths — retaliation versus adjudication.
26. Andrew T. Guzman, Global Governance and the WTO, Oxford University Press — power asymmetry and compliance.
27. Henrik Horn and Petros Mavroidis, writings on fragmentation and legal uncertainty in WTO law.
28. Joost Pauwelyn, "WTO Dispute Settlement Post-Crisis", international economic law scholarship.
29. Dani Rodrik, Straight Talk on Trade, Princeton University Press — coercive trade strategies.
30. Ernst-Ulrich Petersmann, writings on enforcement legitimacy in international economic law.
31. WTO General Council discussions and reform submissions on appellate review restoration.
32. Thomas J. Schoenbaum, International Trade Law, Foundation Press — legitimacy and adjudicatory restraint.
33. Joost Pauwelyn, "Security Exceptions in Trade Law", international economic law scholarship.
34. General Agreement on Tariffs and Trade 1994, Article XXI — reform-oriented interpretations.
35. World Trade Organization, Trade Policy Review Mechanism reports — surveillance and compliance.
36. Robert Hudec, writings on equality and enforcement in the trading system.
37. Henrik Horn and Petros Mavroidis, analyses of plurilateral agreements and systemic coherence.
38. Ernst-Ulrich Petersmann, scholarship on multilevel trade governance.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

संसद से पंचायतों तक भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता : एक अध्ययन

सरिता
(शोधार्थी), राजनीति विज्ञान विभाग
चौधरी बंसी लाल विश्वविद्यालय

21वीं सदी में महिला सशक्तिकरण का मुद्दा न केवल भारत बल्कि विश्व में गहन चिन्तन का विषय बना हुआ है। जब तक आधी आबादी यानि महिलाओं की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में सहभागिता सीमित रहेगी, तब तक समग्र विकास का सपना अधूरा रहेगा। हालांकि, प्राचीन काल से ही शासन में महिलाओं की सहभागिता सीमित रही है, भारतीय संविधान में महिलाओं को समान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार और स्वतंत्रता प्रदान की गई, परन्तु राजनीति में महिलाओं की भागीदारी आज भी बहस का मुद्दा बना हुआ है। पंचायतों से संसद तक महिलाओं की समान भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन जब तक जीवन के सभी क्षेत्रों और निर्णय करने की प्रक्रिया के सभी स्तरों पर महिलाओं और पुरुषों को समान रूप से भागीदार नहीं बनाया जाएगा, तब तक व्यावहारिक रूप में लोकतंत्र और शासन में लोगों की वास्तविक सहभागिता सुनिश्चित नहीं हो पाएगी। दूसरा, न केवल विकास प्रक्रिया बल्कि लक्ष्य निर्धारित करने में भी महिलाओं की पूर्ण और सक्रिय सहभागिता के बिना विकास के लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सकते। वर्तमान शोध का प्रश्न यह है कि भारत ने शासन के सभी स्तरों पर महिलाओं की सक्रिय राजनीतिक सहभागिता सुनिश्चित करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त की। प्रस्तुत शोध अध्ययन को मौलिकता प्रदान करने के लिए सैद्धांतिक, ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया जाएगा।

मुख्य शब्द : राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक प्रक्रिया, लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण, आरक्षण, राजनीतिक सक्रियता।

राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता जनता की ऐसी भूमिका को ईंगित करती है जिसमें वह राजनीतिक प्रक्रिया के विभिन्न चरणों और पक्षों में संचेतन रीति से अपनी भूमिका का निर्वाह करती है तथा अपना योगदान देती है। राजनीतिक सहभागिता के विविध आयामों जैसे; राजनीतिक प्रश्नों के संबंध में जिज्ञासा, स्पष्ट दृष्टिकोण का अभिकल्पना, राजनीतिक दलों की गतिविधियों में भागीदारी, मतदान व निर्वाचन में भागीदारी आदि को दर्शाती है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष से भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता और सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों के लिए संघर्ष का प्रथम चरण प्रारम्भ होता है। माहात्मा गाँधी के जन-आंदलनों से प्रोत्साहित महिलाओं ने होम रूल आंदोलन, नमक सत्याग्रह एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भी भाग लिया। इन आन्दोलनों में एनी बेसेंट, सरोजनी नायडू, कमला देवी, चट्टोपाध्याय, राजकुमारी अमृत कौर, लेडी फिरोज मेहता, अरुणा आसफ अली आदि यशस्वी महिलाओं के बारे में मार्गरिट कजन्स ने कहा है कि 'भारतीय महिलाओं की चैतन्य एकता के प्रादुर्भाव का प्रतीक है'।

महिलाएं तथा शासन राज्य की पुनर्कल्पना एक रिपोर्ट (2002) के अनुसार, द्वितीय गोलमेज कॉन्फ्रेंस में तीन महिला संगठनों; विमेन्स इन्डियन एसोसिएशन, ऑल इंडिया विमेन कॉन्फ्रेंस तथा नेशनल काउन्सिल ऑफ विमेन इन इन्डिया ने एक

ज्ञापन पेश किया कि नए संविधान में वयस्क मताधिकार तथा सामान्य निर्वाचकों की व्यवस्था की जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व, 1939 में नेहरू द्वारा नियुक्त उपसमिति की रिपोर्ट - 'नियोजित अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका' का मुख्य तर्क यह था कि महिलाओं को व्यक्ति के रूप में देखा जाए तथा उन्हें भी राजनीतिक, नागरिक एवं कानूनी अधिकार, सामाजिक समानता, आर्थिक स्वतंत्रता एवं विकास में पुरुषों के समान हिस्सा मिलना चाहिए।

स्वतंत्रता प्राप्ति तथा देश के विभाजन के साथ हुए खून-खराबे तथा एक बड़ी जनसंख्या के विस्थापन के बाद धर्म निरपेक्ष, बहुलवादी, बहुधार्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से समन्वित राजनीतिक व्यवस्था को बढ़ावा दिया गया। इस वातावरण तथा संवैधानिक गारंटी से कुछ महिलाएं लाभान्वित हुई। मध्यम वर्ग की बहुत-सी महिलाओं को विभिन्न सेवाओं एवं शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रवेश प्राप्त करने के अवसर मिले। सरकार ने 'महिला मंडलों' की व्यवस्था की तथा महिलाओं के उत्थान के लिए कार्यक्रम बनाए, हालांकि ये समाज कल्याण के परिप्रेक्ष्य से बनाए गये थे। इस दौरान महिला आंदोलन उतना सक्रिय नहीं रह सका था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने वादों को पूर्ण करने में असमर्थ रहीं क्योंकि महिलाओं को कानूनी समानता, आर्थिक स्वतंत्रता आदि प्रदान करता, ऐसा कोई कानून जारी नहीं किया जा सका। हिन्दू कोड बिल भी अपने प्रारंभिक रूप में नहीं पारित किया जा सका। वर्ष 1955-56 में, इसका बहुत ही कटा-छंटा रूप चार विभिन्न अधिनियमों के रूप में पारित हो पाया जो विवाह, उत्तराधिकार, संरक्षण, दत्तक-ग्रहण तथा भरण-भत्ते से संबंधित है।

भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति ने कहा कि राष्ट्रीय आन्दोलन और महात्मा गाँधी का नेतृत्व, ये दो ऐसी प्रमुख शक्तियां थीं जिन्होंने महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों और उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनाया। उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार आन्दोलन और सामाजिक संगठन के आधारभूत एकक के रूप में परिवार को सुदृढ़ करने से ज्यादा संबंधित रहा। भारत में महिलाओं की स्थिति सम्बन्धी समिति ने महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, महिलाओं को शक्ति के निर्धारण और भागीदारी में प्राप्त समानता और स्वतंत्रता और उनकी इस भूमिका हेतु समाज द्वारा दिये गये महत्व के रूप में परिभाषित किया है। महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की प्रभावकारिता तथा उनके समानता के दर्जे की स्थिति की परख के तीन संकेतक दिए गए हैं–

- राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी
- राजनीतिक रुझान
- राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं का प्रभाव

अध्ययन के उद्देश्य

- महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों के संबंध में पिछड़ेपन के कारणों की पहचान करना।
- शासन में महिलाओं की भागीदारी का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
- महिलाओं की राजनीतिक निर्णय-निर्माण प्रकिया में सहभागिता के स्तर का पता लगाना एवं उनका चुनावों में सफलता का स्तर तथा राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को दी जाने वाली प्राथमिकताओं का तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
- संसद से पंचायतों तक महिलाओं की सक्रिय राजनीतिक सहभागिता के मार्ग में आने वाली चुनौतियों एवं महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की सहभागिता

भारतीय इतिहास में वैदिक काल को छोड़कर महिलाओं की शासन में भागीदारी और स्वतंत्रता सीमित रही है। लेकिन आधुनिक राजनीति में महिलाओं की भागीदारी अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि रानी लक्ष्मीबाई, मैडम बीकाजी कामा, कस्तूरबा, अरुणा आसफ अली, सरोजनी नायडू, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित आदि ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वाधीनता की राजनीति में नदिनी सत्पथी, मोहसिना किदवई, गिरिजा व्यास, सुभाष स्वराज, मायावती, वसुंधरा राजे,

शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, रेणुका चौधरी, सोनिया गांधी आदि ने सक्रियता दिखाई। स्वतंत्रता के पश्चात, संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान में महिलाओं को न केवल पुरुषों के समान वोट देने का अधिकार दिया गया, बल्कि पंचायतों से लेकर संसद तक जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुनाव लड़ने का भी अधिकार दिया गया (आर्य, 2015)। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात, संसद में विशिष्ट-वर्ग और राजनीतिक परिवारों से संबंधित महिलाओं द्वारा ही राजनीति में सहभागिता दर्ज की गई। परन्तु जमीनी स्तर की राजनीति में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन के तहत एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था से पंचायत स्तर पर सभी जनप्रतिनिधि मंचों पर राजनीति में महिला सहभागिता का संख्यात्मक प्रतिनिधित्व बढ़ा है। महिलाओं के लिए सार्वजनिक प्रतिनिधित्व कानून द्वारा एक-तिहाई आरक्षण के प्रतिनिधित्व के कारण समाज में पुरुषों और महिलाओं के समानता का विचार तेजी से बदल रहा है। इससे महिलाओं में नया आत्मविश्वास पैदा हुआ और समाज में महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर विशेष जोर दिया जाने लगा। महिलाओं के खिलाफ अत्याचार, हिंसा आदि के विरोध में जागरूकता बढ़ी है।

महिला मतदाताओं की भागीदारी सभी चुनावों में अपेक्षाकृत कम रही है। तथापि, इन सभी वर्षों में महिला मतदाताओं की भागीदारी निरन्तर बढ़ते हुए 1962 में 46.6 प्रतिशत, 1984 में 59.2 प्रतिशत, 1998 में लगभग 62.0 प्रतिशत और 2024 में 65.78 हो गई है। महिला भागीदारी में वृद्धि ने लगातार बढ़ते हुए, पुरुष और महिला भागीदारी के बीच के अन्तर कम हो गया है। वर्ष 2014 में यह अन्तर 4.4 से घटकर 1.5 प्रतिशत, 2019 में अंतर 0.3 और वर्ष 2024 में अंतर 0. 2 रह गया है। अतः भारतीय राजनीति में महिलाएं मतदाता के रूप में सक्रिय भूमिका निभा रही है। लेकिन फिर भी मतदाता के रूप में महिलाओं की सहभागिता बेहतर नहीं मानी जा सकती, क्योंकि मतदान करने वाली महिलाओं का बड़ा हिस्सा मतदान का निर्णय स्वयं नहीं कर पा रही हैं; किस पाटी, किस नेता या किस आधार पर मतदान करना है।

लोकसभा चुनावों के विश्लेषण से पता चलता है कि महिला जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक सहभागिता सीमित रही है। प्रथम लोकसभा में 4.4 प्रतिशत महिलाएं सामान्य चुनावों में निर्वाचित हुईं, हालांकि सत्रहवीं लोकसभा चुनावों में यह प्रतिशत बढ़कर 14.4 हो गया। 18वीं लोकसभा चुनावों में महिला सांसदों की भागीदारी 15.00 प्रतिशत रह गया है। लेकिन ये चुनावी परिणाम भारतीय राजनीति में आ रहे सकारात्मक बदलाव का ही संकेत है— ये चुनाव परिणाम महिला उम्मीदवारों से जुड़ें कई राजनैतिक पूर्वाग्रहों को दूर करने में मददगार साबित होंगे।

लोकसभा में महिलाओं की ध्भागीदारी, सभा में वित्तीय, विधायी और अन्य मामलों से संबंधित महत्वपूर्ण कामकाज में उनकी भागीदारी के स्तर से प्रकट हो सकती है। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के दौरान की चर्चाएं, आम बजट और रेलवे बजट, कम अवधि की चर्चाएं, विश्वास प्रस्ताव इत्यादि सामान्यतः कामकाज के महत्वपूर्ण मुद्दें है। उदाहरण के रूप में, ग्यारहवीं लोकसभा में अनुदानों संबधी सामान्य मांगों और रेलवे के लिए अनुदानों संबंधी मांगों पर चर्चाओं में भाग लेने वाले सदस्यों की कुल संख्या में महिलाओं की सहभागिता केवल 6.23 प्रतिशत रही। महिलाएं सभा के कार्य संचालन नियमों के नियम-193 के अन्तर्गत सार्वजनिक महत्व के अति महत्वपूर्ण मामलों जैसे; आवश्यक वस्तुओं की कीमत में वृद्धि, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का निष्पादन, प्राकृतिक आपदाओं, महिलाओं पर अत्याचार इत्यादि पर कम अवधि की चर्चाओं में कुछ ज्यादा गहनता से भाग लेती हैं। स्पष्टतः ये वे मुद्दे हैं जो सामान्यतः महिलाओं से सरोकार रखते हैं। यह भी स्पष्ट है कि राजनीतिक दल अधिक गम्भीर मुद्दों पर महिलाओं के लिए समय के आवंटन हेतु पर्याप्त ध्यान नहीं देते। संसद सदस्य विशिष्ट मुद्दों पर बोलने हेतु दलों द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। उनके भाषणों के लिए उन्हें आवंटित किया गया समय प्रायरू दल हेतु आवंटित समय का एक भाग होता है। राजनीतिक दल वाद-विवाद में भागीदारी हेतु सदस्यों में अपेक्षाकृत वरिष्ठ, मुखर और अनुभवी सदस्य को प्राथमिकता देते हैं। प्रायः अधिक प्रसिद्ध और सुपरिचित चेहरे विपक्ष को प्रभावी रूप से दबाने के अतिरिक्त दल को अपनी पहचान देते हैं। नए प्रवेश करने वाले और दल के पदानुक्रम में कनिष्ठ सदस्य और महिला दोनों - भाषण देने का अवसर पाने से वंचित हो जाते हैं। महिला सदस्य विशेष रूप से, संसद के वाद-विवादों में अपने दृष्टिकोण प्रभावी रूप से रखने के लिए अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

संसद/राज्य विधानमंडलों में महिलाओं के लिए आरक्षण

विश्व में महिला सांसदों का औसत 26 फीसदी है। भारतीय संसद में महिला सदस्यों की संख्य 13.6 प्रतिशत है, जबकि अफ़्रीकी देश रवांडा में महिला सांसदों की भागीदारी 61 प्रतिशत है और क्यूबा एवं बोलीविया जैसे देशों में भी महिला सांसदों की भागीदारी 50 प्रतिशत से अधिक है। भारतीय संसद में महिलाओं की राजनीतिक प्रतिनिधित्व की स्थिति बहुत निराशाजनक है। पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के 16 साल तक प्रधानमंत्री रहने से संसद में घ्महिलाओं की स्थिति को बेहतर नहीं माना जा सकता है। इंदिरा गांधी, भंडारनायके, चंद्रिका कुमारतुंगा, बेनजीर भुट्टो, खालिद जिया आदि महिलाएँ दक्षिण-एशिया के देशों की राजनीति में बढ़ती महिला भागीदारी का परिणाम नहीं है, क्योंकि वे वंशानुगत संस्कारों के राजतंत्रीय संस्कारों के कारण पूर्वजों की प्रसिद्ध से लाभान्वित रही हैं। भारत की संसदीय राजनीति में न केवल महिलाओं की भागीदारी सीमित रही है बल्कि महिलाओं ने भी कम सक्रिय भागीदारी दिखाई है। महिलाओं पर पुरुष-वर्चस्व के स्वरूप के उदाहरण के रूप में बिहार की पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी को देखा जा सकता है।

भारत में महिलाओं को लोक सभा तथा राज्य विधान सभाओं में एक-तिहाई आरक्षण देने के लिए 81वां संविधान संशोधन विधेयक 12 सितम्बर, 1996 को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। किन्तु इस विधेयक को विचारार्थ किए जाने से पूर्व ग्यारहवीं लोक सभा भंग हो गयी और परिणामस्वरूप यह विधेयक व्यपगत हो गया। इस विधेयक को 12वीं लोक सभा में 14 दिसम्बर, 1998 को पुनः 84वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया गया, लेकिन 12वीं लोक सभा के भंग होने के साथ ही यह भी व्यंगत हो गया। 13वीं एवं 14वीं लोक सभा में यह विधेयक फिर प्रस्तुत किया गया, किन्तु यह विधेयक पास नहीं हो सकाध्। वर्तमान भारतीय राजनीतिक पृष्ठभूमि में संसद और विधानसभाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए एक-तिहाई आरक्षण का प्रावधान पारित किया गया है, जो भारतीय राजनीति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन है, जिसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त होंगे।

पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी

73वाँ एवं 74वाँ सवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायती राज में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत करने के लिए भारतीय संविधान में बुनियादी बदलाव किया गया। अतरू ग्राम पंचायत स्तर, पंचायत समिति स्तर और जिला परिषद स्तर पर एक-तिहाई सीटें महिलाओं, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षित की गयी। वर्तमान में, देश की कुल 2.25 लाख पंचायतों में प्रत्येक स्तर पर एक-तिहाई सीट महिला सदस्यों के लिए आरक्षित है। वर्तमान में जमीनी स्तर पर महिलाओं की भगीदारी बढ़ाने के लिए 21 राज्यों एवं 2 केंद्र शासित क्षेत्रों में 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था कर दी गयी। अतः त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था से लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को बल मिला और इस तरफ विश्व का ध्यान आकर्षित हुआ। इस सम्बन्ध में इसमें राज्य चुनाव आयोग और वित्त आयोग की नियुक्ति का प्रावधान किया गया और पंचायतों की अवधि, नियमित चुनाव और निलंबन की शर्ते निर्धारित की गई। राज्यों से कहा गया कि 29 क्षेत्रों से संबंधित शक्तियों तथा कार्यों को स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करके धीरे-धीरे विकेन्द्रीकरण करे। इसके अतिरिक्त, 74वें संशोधन के तहत शहरी स्थानीय शासन अधिनियम के तहत एक जिला योजना समिति का प्रावधान यह समिति पंचायत तथा म्युनिसिपल क्षेत्र, दोनों के लिए मिली-जुली योजना समिति है, प्रत्येक जिला योजना समिति जिले के लिए विकास योजना का मसौदा तैयार करेगी और राज्य सरकार को भेजगी। राज्य के विधानमंडल को इन समितियों के गठन की विधि और इनके पदों को भरने, अध्यक्षों के कार्यों और उनके निर्वाचन के लिए कानून बनाने का अधिकार है। 73वें एवं 74वें संशोधन के बाद स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी निश्चित रुप से बढ़ी है, लेकिन बहुत कम महिलाएँ सक्रिय व स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। हरियाणा, बिहार व उत्तरप्रदेश जैसे; कुछ अन्य राज्यों में निर्वाचित महिलाओं के पति ही उनके कार्यों का संचालन करते हैं। महिला पंचायत सदस्यों का परिवार के पुरुषों के लिए पिछले दरवाजे से राजनीति में प्रवेश करने का एक

साधन बन गई हैं।

महिलाओं की सक्रिय राजनीतिक सहभागिता की वर्तमान स्थिति

पंचायत स्तर के राजनीतिक परिदृश्य में महिला प्रतिनिधियों की हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए आरक्षण महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ। जहाँ पंचायतों में एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई है, वहीं कुछ राज्यों में निर्धारित सीटों से अधिक महिलाएं निर्वाचित हो रहीं है। कुछ राज्यों ने जमीनी स्तर पर राजनीति में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था कर दी गई है। लेकिन चुनावी राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की मांग के पीछे सिर्फ यही सोच नहीं होनी चाहिए कि महिलाओं की संख्यात्मक भागीदारी बढ़े बल्कि राजनीतिक-विमर्श, राजनीतिक सक्रियता, नीति-निर्माण आदि में महिलाओं की सहभागिता में परिवर्तन आना चाहिए। वर्तमान में मतदाता के रूप में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता बढ़ रही है। 106वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से लोकसभा एवं राज्य विधानसभा में महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई, जो महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता बढ़ाने में सार्थक कदम साबित होगा। क्योंकि जब तक देश के महत्त्वपूर्ण मुद्दों में महिलाओं (आधी आबादी) की सहभागिता नहीं होगी, तब तक कोई देश विकास नहीं कर सकता।

निष्कर्ष रूप में, अब तक भारतीय राजनीति में विशिष्ट-वर्ग की महिलाएं सक्रिय भूमिका निभा रही है। इसलिए राजनीति में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता के लिए महिला शक्ति, संगठन एवं लामबंदी को अधिक सुदृढ़ करना होगा तथा निर्णय-निर्माण तक पहुंच बढ़ानी होगी एवं राज्य को भी महिलाओं के लिए न्यायोचित एवं समान अधिकार देने वाली संस्था के रूप में परिवर्तन करने के लिए सक्रिय होना पड़ेगा। शिक्षा का निम्न स्तर भी महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में बाधक है। अतः सर्वप्रथम महिलाओं को शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है एवं अन्य संदर्भ में पंचायत स्तर के आरक्षण ने लाखों महिलाओं को निर्वाचन में भाग लेने का अवसर प्रदान किया है। यह सत्य है कि कई महिलाएं 'प्रोक्सी' के रूप में काम करती है तथा परिवारों के पुरुष सदस्यों द्वारा नियंत्रित हैं क्योंकि जिन्होंने वर्षों तक सत्ता पर शासन किया हो वे इससे वंचित नहीं होना चाहते है। परन्तु बहुत-सी महिलाओं ने चुनौतियों को स्वीकार किया है और इनमें से कुछ महिलाएं अनारक्षित सीटों पर निर्वाचित हुई हैं। निर्वाचन के दौरान महिलाओं को हिंसा, चरित्र हनन, भ्रष्टाचार इत्यादि जैसी विपरीत परिस्थितियों का समाना करना पड़ता है। अतः यहाँ दो मुख्य मुद्दे हैंरू एक ओर तोध महिलाओं को उन चुनौतियों का सामना करने के लिए सशक्त बनाना है, जिनका सामना महिलाओं को राजनीति में सक्रिय सहभागिता के दौरान करना पड़ता है तथा दूसरी ओर विद्यमान राजनीतिक माहौल को संवेदनशील बनाना है ताकि वे प्राप्त अवसरों का सदुपयोग कर सकें। स्वामी विवेकानंद ने कहा 'स्त्रियों की दशा में सुधार न होने तक विश्व के कल्याण का कोई मार्ग नहीं'।

संदर्भ ग्रंथ

महिलाएं तथा शासन राज्य की पुनर्कल्पना एक रिपोर्ट (2002), सोसाइटी फॉर डेवलपमेंट आल्टरनेटिवस फॉर वीमेन, नई दिल्ली, 9-11.

गोपालन, स.(2002), समानता की ओर अपूर्ण कार्य रू भारत में महिलाओं की स्थिति 2001, राष्ट्रिय महिला आयोग, 281-283.

आर्य, अ.(जुलाई, 2015),भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका, जर्नल ऑफ़ अडवांस एंड स्कॉलर रिसर्च इन अलाइड एजुकेशन, 10, आईएसएसएन 2230-7540.

खन्ना, मा.(जनवरी-मार्च, 2009),पोलिटिकल पार्टिसिपेशन ऑफ़ वीमेन इन इंडिया, द इंडियन जर्नल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस, इंडियन पोलिटिकल साइंस एसोसिएशन, 70, 55-64.

https://www.jstor.org/stable/41856495.

शर्मा, प्र.(2011),महिला विकास और सशक्तिकरण, जयपुर, आविष्कार पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

वर्गीज, टी.(2020),विमेंस पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन एंड लीडरशिप इन इंडिया रू एक्सामिंग द चैलेंज, पब्लिक पालिसी एंड एडमिनिस्ट्रेशन, 19, 111-125.
http://dx.doi.org/10.5755/j01.ppaa.19.1.25228

वृंदा, क.(20 जुलाई, 2020),हिन्दुस्तान.
http://www.hindustan.com.

मिनिस्ट्री ऑफ़ पंचायती राज(2015), लेटर टु सेलिब्रेट इंटरनेशनल विमेंस डे.
http://www.panchayat.gov.in/documents/10198/355951/women%20day%20celebration11.pdf.

राय. प्र.(2017),वीमेन पार्टिसिपेशन इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इंडिया : साइलेंट फेमिनिजेशन, साउथ एशिया रिसर्च, 37(1), 58-77.
https://www.orfonline.org/hindi/research/role-women-strengthening-indian-democracy-51915.
https://www.epw.in/hi/journal/2019/18/editorials/edit-2.html#.YZBjz7duwrQ.whatsapp.
https://prsindia.org/parliamenttrack/vital-stats/women-in-parliament-and-state-assemblies

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में मुण्डकोपनिषद में वर्णित परा एवं अपरा विद्या की अवधारणा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के कौशल विकास एवं आध्यात्मिक बोध के सन्दर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन

निष्ठा श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)।
सम्पर्क एवं अणु-डाक सूत्र : dsvv96@gmail.com
सागर सिंह सिरोला
शोध अध्येता, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, शिक्षक शिक्षा विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
लाल बहादुर शास्त्री राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्दूचौड़ (नैनीताल) उत्तराखण्ड।
सम्पर्क एवं अणु-डाक सूत्र : sagarsinghsirola@gmail.com

शोध सारांशिका

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में मुण्डकोपनिषद में वर्णित 'परा' एवं 'अपरा' विद्या की प्राचीन अवधारणाओं का 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के विशेष सन्दर्भ में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान मीमांसा में जिसे 'अपरा विद्या' कहा गया, वही आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'कौशल विकास' एवं 'व्यावसायिक दक्षता' के रूप में प्रतिध्वनित हो रही है। साथ ही, यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि वर्तमान युग की शैक्षिक विसंगतियों एवं नैतिक पतन का समाधान 'परा विद्या' के आध्यात्मिक तथा मानवीय मूल्यों के समावेश में निहित है। इस अध्ययन के अन्तर्गत गुणात्मक शोध पद्धति का अवलंबन करते हुए यह निष्कर्षित किया गया है कि भौतिक कुशलता (अपरा) एवं आध्यात्मिक बोध (परा) का संतुलित समन्वय ही एक 'पूर्ण मानव' व 'सक्षम समाज' के निर्माण का आधार है। यह शोध भारतीय ज्ञान परम्परा की निरंतरता को आधुनिक शिक्षा नीति के लक्ष्यों के साथ सह-सम्बन्धित करते हुए उसकी वैश्विक प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

संकेताक्षर : भारतीय ज्ञान परम्परा, मुण्डकोपनिषद, परा एवं अपरा विद्या, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, कौशल विकास एवं समग्र शिक्षा।

1. भारतीय ज्ञान परम्परा : एक परिचय एवं औपनिषदिक सन्दर्भ

भारतीय वाङ्मय में ज्ञान की संकल्पना केवल सूचनाओं के संकलन या बौद्धिक विलासिता तक सीमित नहीं रही है, अपितु इसे मानवीय चेतना के रूपांतरण का सशक्त माध्यम माना गया है। प्राचीन भारतीय ऋषियों की दृष्टि में ज्ञान एक

जीवन्त प्रक्रिया है जो अज्ञान के अंधकार को मिटाकर व्यक्ति को 'अमृत' की ओर ले जाती है। भारतीय मनीषा का उद्घोष रहा है कि शिक्षा का अभीष्ट लक्ष्य केवल जीविकोपार्जन नहीं, अपितु पूर्ण स्वतंत्रता है यथा—"सा विद्या या विमुक्तये"। जहाँ वेद कर्मकांड और उपासना के माध्यम से जीवन को अनुशासित करते हैं, वहीं उपनिषद ज्ञान काण्ड के रूप में मनुष्य की जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं। उपनिषदिक साहित्य का मूल उद्देश्य उस परम तत्व की खोज करना है, जिसे जान लेने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। इसी उपनिषदिक श्रृंखला में 'मुण्डकोपनिषद' एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह उपनिषद ज्ञान को दो स्तरों पर विभाजित कर एक अत्यन्त वैज्ञानिक एवं संतुलित मार्ग प्रशस्त करता है। इसमें ऋषि अंगिरा स्पष्ट करते हैं कि मानव जीवन की पूर्णता के लिए दो प्रकार की विद्याओं का होना अनिवार्य है :

प्रथम अपरा विद्या : जो दृश्य जगत, विज्ञान, शिल्प एवं समाज के संचालन हेतु आवश्यक है, जिससे भौतिक ज्ञान, तकनीकी कौशल, अर्थशास्त्र एवं सामाजिक व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

द्वितीय परा विद्या : जो आत्म-साक्षात्कार एवं परम सत्य की अनुभूति कराती है, जिससे जीवन के उद्देश्य एवं आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होती है।

वर्तमान समय में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के माध्यम से जब भारतीय शिक्षा व्यवस्था के पुनरुद्धार की प्रक्रिया गतिमान है, तब मुण्डकोपनिषद का यह द्वैत ज्ञान (परा एवं अपरा विद्या) अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है। जहाँ आधुनिक कौशल विकास शिक्षार्थी को 'अपरा' के क्षेत्र में दक्ष बनाने पर केन्द्रित है, वहीं इस शिक्षा नीति में वर्णित मूल्य-बोध एवं समग्र विकास का लक्ष्य व्यक्ति को 'परा' विद्या की आध्यात्मिक चेतना की ओर अग्रसर करना है।

2. शोध अध्ययन की आवश्यकता, औचित्य एवं महत्व

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में शिक्षा मात्र उपाधि प्राप्त करने का साधन बनकर रह गयी है, जिससे समाज में कौशल की कमी एवं मानसिक अशांति व भटकाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं औचित्य निम्नलिखित कारणों से है :

(अ) संतुलन की खोज : आधुनिक शिक्षा प्रणाली भौतिक प्रगति (कौशल) एवं आत्मिक शान्ति (अध्यात्म) के मध्य संतुलन स्थापित करने में विफल रही है। मुण्डकोपनिषद की 'परा' एवं 'अपरा' विद्या का समन्वय इस अन्तराल को परिपूर्ण करने का प्राचीन समाधान प्रदान करता है।

(ब) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का दार्शनिक आधार : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परम्परा पर आधारित है। प्रस्तुत शोध अध्ययन द्वारा यह सुस्पष्ट होगा कि इस नीति में वर्णित कौशल विकास वास्तविक रूप में अपरा विद्या का ही आधुनिक स्वरूप है।

(स) समग्र व्यक्तित्व विकास रू मात्र तकनीकी अथवा व्यावसायिक ज्ञान शिक्षार्थी के दृष्टिकोण को एकांगी अथवा यांत्रिक बना सकता है। परा विद्या के आध्यात्मिक बोध एवं नैतिक मूल्यों को शिक्षा में सम्मिलित करने के औचित्य को सिद्ध करना इस शोध का एक प्रमुख लक्ष्य है। यह अध्ययन इस अवधारणा पर बल देता है कि कौशल एवं आत्म-बोध का समन्वय ही एक पूर्ण मानव की संकल्पना को साकार कर सकता है।

(द) सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सातत्य : प्राचीन भारतीय ज्ञान-मीमांसा एवं आधुनिक शैक्षिक सिद्धान्तों के मध्य ऐतिहासिक अतः सूत्रों को रेखांकित करना शोध की दृष्टि से अपरिहार्य है। जिसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कौशल विकास के रूप में परिभाषित किया जा रहा है, उसके मूलभूत सिद्धान्त एवं अन्तरूतत्व हजारों वर्ष पूर्व उपनिषदों में अपरा विद्या के रूप में प्रतिपादित किए जा चुके थे। अतएव यह शोध भारतीय ज्ञान परम्परा की निरंतरता को स्थापित करते हुए आधुनिक शिक्षा को एक सुदृढ़ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान करने का प्रयास करता है।

3. शोध अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन मुख्य रूप से निम्नलिखित उद्देश्यों पर केन्द्रित है :

प्रथम उद्देश्य : मुण्डकोपनिषद में वर्णित 'परा' एवं 'अपरा' विद्या की अवधारणा का विस्तृत अध्ययन एवं व्याख्या

करना।

द्वितीय उद्देश्य : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख स्तम्भों यथा कौशल विकास एवं मूल्य-आधारित शिक्षा का विवेचन करना।

तृतीय उद्देश्य : प्राचीन अपरा विद्या के शास्त्रीय स्वरूप एवं आधुनिक कौशल विकास के व्यावहारिक आयामों के मध्य विद्यमान ऐतिहासिक एवं प्रकार्यात्मक अन्तःसम्बन्धों को सविस्तार रेखांकित करना।

चतुर्थ उद्देश्य : कौशल विकास की प्रक्रिया में परा विद्या के समावेश द्वारा शिक्षार्थी के अंतःकरण के परिमार्जन एवं उसके व्यावहारिक ज्ञान को नैतिक अधिष्ठान प्रदान करने की संभावनाओं का परीक्षण करना।

पंचम उद्देश्य : समकालीन शिक्षण पद्धति में परा एवं अपरा विद्या के सफल सामंजस्य हेतु प्राचीन प्रज्ञा एवं आधुनिक नवाचारों के समन्वय पर आधारित प्रभावी संस्तुतियाँ प्रस्तुत करना।

4. शोध अभिकल्प

प्रस्तुत शोध की प्रकृति गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। शोध अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित प्रविधियों एवं प्रक्रियाओं का प्रयोग किया गया है :

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध में मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध पद्धतियों का अवलंबन लिया गया है। मुण्डकोपनिषद के प्राचीन सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए उनका आधुनिक शैक्षिक सिद्धान्तों यथा—राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के साथ तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

प्रदत्त संकलन : चूँकि यह शोध सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक प्रकृति का है, अतएव प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत केवल द्वितीयक प्रदत्त का ही प्रयोग किया गया है, जिसमें सामग्री संकलन हेतु पुस्तकालय शोध विधि अपनाई गयी है तथा साक्ष्यों के संकलन हेतु स्रोतों को दो भागों में विभक्त किया गया है :

(क) प्राथमिक स्रोत : मुण्डकोपनिषद के मूल श्लोक, शांकरभाष्य तथा भारत सरकार द्वारा जारी 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' का आधिकारिक दस्तावेज़।

(ख) द्वितीयक स्रोत : भारतीय ज्ञान परम्परा, उपनिषदिक दर्शन एवं आधुनिक शिक्षा पद्धति पर आधारित विभिन्न विद्वानों की पुस्तकें, शोध पत्रिकाएँ, समीक्षा लेख, अकादमिक शोध प्रबन्ध एवं प्रामाणिक इन्टरनेट उद्धरण।

प्रदत्त विश्लेषण प्रक्रिया : संकलित सामग्री का विषय-वस्तु विश्लेषण किया गया है। इसमें मुण्डकोपनिषद के 'परा' एवं 'अपरा' विद्या के सूत्रों का चयन कर, आधुनिक शिक्षा नीति के 'कौशल विकास' एवं 'आध्यात्मिक/मूल्य बोध' के लक्ष्यों के साथ उनके पारस्परिक सम्बन्धों एवं प्रासंगिकता का परीक्षण किया गया है।

शोध अध्ययन का क्षेत्र एवं सीमाएं : प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रमाणिकता, विषयपरक सूक्ष्मता, दार्शनिक एवं तार्किक सुसंगति को सुनिश्चित करने हेतु इसका क्षेत्र मुण्डकोपनिषद के प्रथम मुण्डक में वर्णित विद्या-द्वय (परा-अपरा) की संकल्पना तक सीमित रखा गया है। इसी प्रकार आधुनिक सन्दर्भ में यह शोध राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उन प्रमुख स्तम्भों का ही विश्लेषण करता है जो कौशल एवं आध्यात्मिकता के अन्तर्सम्बन्धों को पुष्ट करते हैं। यह सीमांकन शोध अध्ययन के मुख्य निष्कर्षों को विषयांतर होने से बचाते हुए उसे अधिक सूक्ष्म एवं केंद्रित बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

5. व्यावहारिक ज्ञान का अधिष्ठान : अपरा विद्या एवं NEP 2020 में कौशल विकास के अन्तःसूत्र

किसी भी शैक्षिक दर्शन की सार्थकता इस तथ्य में निहित होती है कि वह व्यक्ति को सांसारिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ आत्मिक उन्नति हेतु कितना सक्षम बनाती है। भारतीय ज्ञान परम्परा में 'विद्या' को दो स्तरों पर विश्लेषित किया गया है, जहाँ 'अपरा विद्या' लौकिक जगत की अनिवार्यताओं एवं दक्षता का आधार निर्मित करती है। प्रस्तुत विवेचन में इसी अपरा विद्या के शास्त्रीय स्वरूप को आधुनिक कौशल विकास के सिद्धान्तों के आलोक में देखने का प्रयास किया गया है।

(अ) अपरा विद्या : एक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण

मुण्डकोपनिषद के प्रथम मुण्डक में ऋषि अंगिरा ने अपरा विद्या के अंतर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के

साथ-साथ छह वेदांगों को सम्मिलित किया है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य को लौकिक व्यवस्था, भाषा, विज्ञान और प्रकृति के नियमों से परिचित कराना है।

"तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।"

उपरोक्त श्लोक का विश्लेषण करने पर यह तथ्य उद्घाटित होता है कि अपरा विद्या को हेय या गौण नहीं, अपितु ज्ञान की प्रारंभिक एवं अनिवार्य आधारशिला माना गया है। इसमें समाहित भाषा विज्ञान (व्याकरण एवं निरुक्त), गणित एवं खगोल विज्ञान (ज्योतिष) तथा प्रयोगात्मक व क्रियात्मक विधि (कल्प) का स्वरूप यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में तकनीकी दक्षता अर्थात कौशल एवं तार्किक सूक्ष्मता को ज्ञान-मीमांसा का मूलाधार स्वीकार किया गया था। इस प्रकार, अपरा विद्या शिक्षार्थी को उस व्यावहारिक धरातल पर सुदृढ़ करती है, जहाँ से वह अंततः 'परा' की ओर प्रस्थान करने योग्य बन पाता है।

(ब) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कौशल विकास : अपरा विद्या का आधुनिक अनुप्रयोग

मुण्डकोपनिषद में वर्णित 'अपरा विद्या' के व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक आयाम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के 'कौशल विकास' एवं 'व्यावसायिक शिक्षा' सम्बन्धी प्रावधानों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। यह नीति प्राचीन भारतीय प्रज्ञा को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का एक सशक्त प्रयास है। इस अंतर्संबंध को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है :

व्यावसायिक एकीकरण एवं 'कल्प' की प्रयोगात्मकता : प्राचीन 'कल्प' वेदांग मुख्य रूप से विधि, प्रक्रिया एवं प्रयोगात्मक पक्ष पर केन्द्रित था। इसी को आधुनिक अनुप्रयोग के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कक्षा 6 से ही व्यावसायिक एकीकरण के रूप में संस्तुत करती है। इसमें स्थानीय शिल्प, कूट-लेखन, कृषि एवं अन्य तकनीकी कौशलों के माध्यम से करके सीखने के जिस सिद्धान्त पर बल दिया गया है, वह वस्तुतः अपरा विद्या की क्रियात्मक परम्परा का ही समकालीन विस्तार है।

भाषायी सूक्ष्मता एवं व्याकरण-निरुक्त की प्रासंगिकता : अपरा विद्या के अंतर्गत 'व्याकरण' एवं 'निरुक्त' का उद्देश्य विद्यार्थी में अर्थबोध एवं तार्किक संप्रेषण विकसित करना था। आधुनिक शिक्षा नीति में बहुभाषावाद एवं मातृभाषा में शिक्षा का समर्थन इसी भाषाई बोध को पुनर्जीवित करने का प्रयास है, जिससे विद्यार्थी के संज्ञानात्मक विकास को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो सके।

गणितीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा ज्योतिषशास्त्र : प्राचीन काल में ज्योतिष गणना, खगोल एवं ब्रह्मांडीय विज्ञान का पर्याय था। वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में STEM (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित) एवं तार्किक चिंतन पर जो विशेष ध्यान दिया गया है, वह उसी वैज्ञानिक अन्वेषण की प्रवृत्ति का आधुनिक अनुप्रयोग है।

कौशल का उद्देश्य एवं सामाजिक सुदृढ़ता : अपरा विद्या का लक्ष्य व्यक्ति को सांसारिक जीवन हेतु समर्थ बनाना था। इसी प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का 21वीं सदी के कौशल यथा : समस्या समाधान एवं रचनात्मकता पर केन्द्रित होना, शिक्षार्थी को मात्र रोजगारोन्मुखी ही नहीं बनाता, अपितु उसे एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में स्थापित करता है।

इस प्रकार यहाँ विचारणीय तथ्य यह है कि अपरा विद्या को 'निम्न' नहीं, अपितु 'प्रारंभिक एवं अनिवार्य' ज्ञान माना गया है। इसमें भाषा विज्ञान (व्याकरण, निरुक्त), गणित एवं खगोल विज्ञान (ज्योतिष), एवं प्रयोगात्मक विधि (कल्प) का समावेश यह सिद्ध करता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में कौशल एवं तर्क को ज्ञान का आधार स्तम्भ माना गया था।

तुलनात्मक निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि मुण्डकोपनिषद की अपरा विद्या एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का कौशल विकास दोनों का मूल उद्देश्य व्यक्ति को इस दृश्य जगत में कार्यकुशल, आत्मनिर्भर एवं बौद्धिक रूप से समर्थ बनाना है।

अपरा विद्या वह सोपान है, जिसके बिना परा विद्या (उच्च सत्य) की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

6. चेतना का उत्कर्ष : परा विद्या एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित मानवीय मूल्य

भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत 'अपरा विद्या' जहाँ बाह्य जगत की कुशलता सुनिश्चित करती है, वहीं 'परा विद्या' आंतरिक चेतना के परिमार्जन का मार्ग प्रशस्त करती है। मुण्डकोपनिषद का यह खण्ड यह स्पष्ट करता है कि मात्र भौतिक कुशलता मनुष्य को पूर्णता प्रदान नहीं कर सकती जब तक कि उसमें आध्यात्मिक बोध का समावेश न हो।

(अ) परा विद्या : आत्म-बोध एवं शाश्वत सत्य की मीमांसा

मुण्डकोपनिषद के अनुसार परा विद्या वह है जिससे उस 'अविनाशी' (अक्षर ब्रह्म) को जाना जाता है :

"अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।"

यह विद्या किसी सूचना का संग्रह नहीं, अपितु एक 'अनुभूति' है। शोध की दृष्टि से इसका महत्व यह है कि यह व्यक्ति को संकुचित 'स्व' से ऊपर उठाकर 'सर्व' के कल्याण की ओर प्रेरित करती है।

(ब) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : मूल्य-आधारित शिक्षा एवं समग्र विकास

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 केवल कौशल पर विमर्श नहीं करती, अपितु यह वैश्विक नागरिक बनाने पर बल देती है। इसके अंतर्गत 'परा विद्या' के गुणों का आधुनिक समावेशन निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है :

नैतिक एवं संवैधानिक मूल्य : इस नीति के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, शांति एवं प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों पर बल दिया गया है। ये मूल्य वस्तुतः परा विद्या के वे व्यावहारिक सोपान हैं जो व्यक्ति को नैतिक अधिष्ठान प्रदान करते हैं।

समग्र स्वास्थ्य : शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य की संकल्पना भी इस नीति में निहित है, जो परा विद्या के आत्म-अनुशासन से सह-सम्बन्धित है।

सहिष्णुता एवं वैश्विक बंधुत्व : परा विद्या समस्त अस्तित्व की तात्विक एकता का बोध कराती है, जो संकुचित भेदों से ऊपर उठकर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के भाव को पुष्ट करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समाहित 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना इसी आध्यात्मिक चेतना का आधुनिक विस्तार है। यह समन्वय शिक्षार्थी को एक संवेदनशील 'वैश्विक नागरिक' के रूप में विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

7. कौशल एवं आध्यात्मिक बोध का समन्वय : एक संतुलित जीवन दर्शन

प्रस्तुत शोध का यह खण्ड इस तर्क को स्थापित करता है कि 'अपरा विद्या' (कौशल) एवं 'परा विद्या' (आध्यात्मिक बोध) एक-दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं। आधुनिक शिक्षा में केवल यांत्रिक दक्षता व्यक्ति को आर्थिक रूप से संपन्न तो बना सकती है, किन्तु उसे मानसिक शांति एवं नैतिक दिशा प्रदान नहीं कर सकती। वस्तुतः, शिक्षा की सार्थकता तब सिद्ध होती है जब वह बाह्य जगत की चुनौतियों हेतु 'कौशल' एवं आंतरिक विकास हेतु 'विवेक' प्रदान करे। इसी समन्वय की आवश्यकता को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है :

(अ) यांत्रिकता से मानवीय संवेदना की ओर

मात्र कौशल मनुष्य को एक 'यंत्र' या 'संसाधन' में बदल देता है। जब इस कौशल में परा विद्या के 'नैतिक मूल्यों' का समावेश होता है, तब वह कौशल 'लोक-कल्याण' का साधन बनता है। उदाहरण स्वरूप, एक चिकित्सक का कौशल (अपरा विद्या) यदि करुणा एवं नैतिकता (परा विद्या) से युक्त है, तभी वह समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वहन कर पाता है।

(ब) मुण्डकोपनिषद एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : एक समन्वित मार्ग

मुण्डकोपनिषद में महर्षि अंगिरा का द्वैत ज्ञान यह सन्देश देता है कि भौतिक संसार में कुशलता (अपरा) अनिवार्य है, किन्तु जीवन की सार्थकता आत्मिक उन्नति (परा) में है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी दर्शन को 'समग्र शिक्षा' के रूप में स्वीकार करती है। यह नीति स्वीकार करती है कि शिक्षार्थी का विकास केवल 'मस्तिष्क' (बौद्धिक/तकनीकी) का विकास नहीं, अपितु 'हृदय' (नैतिक/आध्यात्मिक) का परिमार्जन भी है।

8. उपसंहार एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से प्राचीन भारतीय ज्ञान-मीमांसा एवं आधुनिक शैक्षिक सिद्धान्तों के मध्य एक गहन ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सातत्य दृष्टिगोचर होता है। मुण्डकोपनिषद की 'परा' एवं 'अपरा' विद्या का वर्गीकरण आज सहस्राब्दियों बाद भी उतना ही प्रासंगिक प्रतीत होता है जितना वह उपनिषद काल में था। उक्त शोध अध्ययन के वर्तमान सन्दर्भ में विवेचन के आधार पर इसके मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित इस प्रकार हैं :

ऐतिहासिक सातत्य : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित 'कौशल विकास' कोई नवीन अवधारणा नहीं है, अपितु यह प्राचीन 'अपरा विद्या' का ही आधुनिक एवं परिष्कृत अनुप्रयोग है।

पूरक सम्बन्ध : परा एवं अपरा विद्या एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक ओर जहाँ अपरा विद्या जीवन जीने का आधार प्रदान करती है, वहीं परा विद्या जीवन को उद्देश्य प्रदान करती है।

मानवीय रूपांतरण : कौशल विकास की प्रक्रिया में आध्यात्मिक बोध का समावेश शिक्षार्थी के अंतःकरण का परिमार्जन करता है, जिससे वह तकनीकी रूप से दक्ष होने के साथ-साथ नैतिक रूप से भी सुदृढ़ बनता है।

नीतिगत संस्तुति : आधुनिक शिक्षण पद्धतियों में केवल व्यावसायिक दक्षता पर बल न देकर, प्राचीन भारतीय प्रज्ञा के समन्वय से एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था निर्मित की जानी चाहिए जो 'पूर्ण मानव' का निर्माण कर सके।

निष्कर्षतः, मुण्डकोपनिषद का यह द्वैत मार्ग आधुनिक शिक्षा की वर्तमान समस्याओं यथा—मानसिक तनाव, नैतिक पतन एवं बेरोजगारी का एक शाश्वत समाधान प्रस्तुत करता है। 'सा विद्या या विमुक्तये' का स्वप्न तभी साकार होगा जब हम अपरा के कौशल और परा के प्रकाश को एक साथ लेकर चलेंगे। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में 'सा विद्या या विमुक्तये' का स्वप्न तभी साकार होना सम्भव है, जब अपरा के 'कौशल' एवं परा के 'प्रकाश' का संतुलित समन्वय किया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोत

- मुण्डकोपनिषद : (शांकरभाष्य सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर।
- श्रीमद्भगवद्गीता : (तत्वविवेचनी टीका), गीता प्रेस, गोरखपुर।
- महोपनिषद् : उपनिषद संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार। (आधिकारिक प्रपत्र)।

द्वितीयक स्रोत

- अग्निहोत्री, आर. के. (2021)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं भारतीय उच्च शिक्षा का भविष्य। नई दिल्ली : शिक्षा प्रकाशन।
- गोयन्का, जे. (सम्पा.), (2018)। मुण्डकोपनिषद रू शांकरभाष्य सहित। गोरखपुर : गीता प्रेस।
- राधाकृष्णन, एस. (1953)। द प्रिंसिपल उपनिषद्स [The Principal Upanishads]. लंदन : हार्पर कॉलिन्स।
- शर्मा, आर. वी. (2001)। भारतीय ज्ञान परम्परा एवं आधुनिक शिक्षा। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
- सिरोला, सागर सिंह (2024)। भारतीय ज्ञान परम्परा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च। 6(02), 01-04, ISSN: 2582-2160
- सिरोला, सागर सिंह एवं पाण्डेय एल. एम. (2025)। भारतीय ज्ञान परम्परा एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में श्री हित प्रेमानन्द गोविन्द शरण महाराज की नैतिक एवं मूल्यपरक शिक्षा का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषणात्मक अध्ययन। गीना शोध संगम, 13(09-10), 82-89।

- सिरोला, सागर सिंह एवं पाण्डेय एल0 एम0 (2025)। मानसिक एवं भावात्मक स्वास्थ्य के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा। आई0सी0एस0एस0आर0 स्पेशल इश्यू ऑन रिसेंट रिसर्च इन सोशल साइन्स एण्ड ह्यूमैनिटीज। 12(01), 55-59, ISSN: 2348-3318।
- सिरोला, सागर सिंह एवं पाण्डेय एल0 एम0 (2026)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में श्री हित प्रेमानन्द गोविन्द शरण महाराज की मूल्यपरक शिक्षा द्वारा शिक्षार्थियों की भग्नाशा एवं कुण्ठा का न्यूनीकरण रू एक प्रयोगात्मक अध्ययन। रिसर्च जर्नल ऑफ़ मीमांसा। 1(1-6), 133-138, ISSN: 2394-6458।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

TEACHER'S ATTITUDE TOWARDS TEACHING PROFESSION & THEIR SELF CONCEPT

Dr. Monika Sahai
Assistant Professor and Head,
Departmentt. Of Psychology,
S N Sen B V PG College,
CSJM University Kanpur

ABSTRACT

Teaching is a triangular process where in instructional objectives, learning experience and evaluation procedures lie inseparably intervened. Teachers play an important role in student learning and their teaching is very essential to gain the knowledge of the student. In this paper researcher tried to study the self concept and attitude towards teaching profession of secondary school teachers. To measures the Self concept and Attitude towards teaching of 100 Secondary School Teachers. Self concept list (old personality word list) by Dr. (Mrs.) Prathibha Deo and attitude scale of towards teaching profession, by Dr. (Mrs.) Umme Kulsum scale was used in studied. And their self concept and attitude were calculated and tested for stated hypotheses.

INTRODUCTION

Self concept of a person can be defined as the picture, an individuals has of himself/herself. It comprises of the perceptions and attitudes the person holds. It also includes tangible properties of the person and covers beliefs, convictions, values and choices. The behaviour in any setting, including a learning situation, is influenced by such perceptions, evaluations and attitudes.

Psychologists describe self concept as consisting of the parts, viz. individuals perception of self, individuals perception of self in relation to others and individuals perception of the environment. Self concept of a person is considered as an important parameter in the context of learning. It facilitates understanding a person and motivating him/her to improve his or her performance in Learning.

Teacher's Self-Concept

The self concept i.e., a persons understanding of himself/herself is also an important factor affecting job satisfaction. It enables a person to behave in a socially desirable manner so that he can exert influence upon other people and events. There is no doubt that if a teacher has no real

understanding of his nature of conduct with others, his activities in school and in his life as a whole, he will be a complete failure.

Teacher's Attitude

An Attitude can be defined as an organization of belief, habits and motives associated with a particular object. "An attitude is a readiness to respond in such a way that behaviour is given a certain direction". A teacher who has a positive attitude towards his profession can only bring the desirable changes in the child. The establishment of good relationship between instructor and class is vitally important and determines whether the process of learning is going to be a cooperative effort, an uneasy alliance, or a cold war. Army instructors are given excellent advice in a brief maximum "your attitude must be fair, firm and friendly". It is generally believed that the attitude of teachers towards teaching play a vital role in their development. Teachers favourable attitudes towards teaching are likely to promote creative potentiality of students while unfavourable ones may demote it.

Significance of the study

A good teacher with his proper behaviour and self concept can motivate, inspire and make the students almost in his teaching. Therefore, a teacher should try to imbibe the desirable personality traits and characteristics. He should bring honesty and sincerity in his thinking, doing and feeling and make the best possible efforts on his part to take his students along with his teaching by making them interested in his teaching. Behaviour is composed of so many attributes. One of these important attributes is attitude. Ones behaviour, to a great extent depends upon ones attitude toward the things, idea, person or object in this environment.

Objectives

To study the self concept of male and female secondary school teachers.

To study the attitude of male and female secondary school teachers towards their teaching profession.

Hypotheses

There would not be a significant difference between self concept of male and female secondary school teachers.

There would not be a significant difference between male and female teachers their Attitude towards teaching profession.

METHOD

Sample

One hundred secondary school teachers were considered as sample out of which 50 school teachers were male and 50 school teachers were female of Kanpur city.

Tools used for study

Self concept list (old personality word list) by Dr. Mrs. Prathibha Deo, Pune.

Attitude scale of towards teaching profession by Dr. (Mrs.) Umme Kulsum, Bangalore.

Data Collection

For the present study the total sample of 100 secondary school teachers were selected based on purposive sampling ,based on their gender i.e., 50 school teachers were male and 50 school teachers were female. Researcher has collected the sample using survey method by standardized tools.

RESULTS AND DISCUSSION

The results indicated that male secondary school teachers and female secondary school teachers exhibited statistically significant difference. The data was analyzed using the 't' test. It is clear that there is statistically significant difference between the self concept of male and female secondary school teachers ($t = 3.4$, $p < 0.01$). So the null hypothesis is rejected. Female secondary school teachers have stronger/higher self concept as compared to male secondary school teachers.

The male secondary school teachers and female secondary school teachers exhibited no significance difference. Here also the data was analyzed 't' test. From the results it is clear that there is no significant difference between male and female secondary school teachers in their attitude towards teaching profession ($t = 0.77$, $p > 0.05$). So the null hypothesis is formulated in this study was accepted.

In this study the male and female secondary school teachers shown a similar Attitude towards their teaching profession. Because in teaching profession, both are given equal importance to teaching and hence better performance.

FINDINGS

There is statistically significant difference between the self-concept of male and female teachers. Female teachers have higher self-concept than male teachers. There is no significant difference between male and female teachers in their Attitude towards teaching profession.

CONCLUSION

Quality of education is directly linked with quality of teacher. It was commonly believed that teachers are committed to their teaching profession. In teaching profession teachers give more importance to self concept and their attitude. Self concept as consisting of the parts viz., individuals perception as self, individuals perception of self in relation to others and individuals perception of the environment. The self concept i.e., a persons understanding of himself is also an important factor affecting job satisfaction. It enables a person to behave in socially desirable manner. So that he can exert influence upon other people and events. An attitude is a readiness to respond in such a way that behaviour is given a certain direction. A teacher who has a positive attitude towards his profession can only bring the desirable changes in the child. Teachers favourable attitude towards teaching are likely to promote creative potentiality of students, while unfavourable ones may demote it. The overall observation shows that, there is significant difference between male secondary school teachers and female secondary school teachers. And another variable attitude shows that there is no significant difference between male and female secondary school teachers. Here male and female secondary school teachers are shown a similar attitude towards teaching profession.

REFERENCES

1. Gupta, V. and Sansanwal, D. N. (2003). Effect of treatment, adjustment and their interaction on character self concept. Asian Journal of Psychology and Education, 36, 2–6.
2. Kurup, J. G. (1993). The relationship of self concept and job satisfaction among primary school teachers. Master of education thesis university of Calicut.
3. Nandevan, R. G. (2006). Attitude of teachers towards educational innovations, Edutracks.
4. Singh, R. P. and Das, M. (1989). Attitudes of teachers towards creative learning and teaching, Indian Educational Review.
5. Singh, R. P. (1985). Attitudes of high school teachers towards creative learning and teaching. Prachi Journal of Psycho-cultural Dimensions, 1, 7–12.
6. Ramadas, V. and Divya, T. (2007). Grading in schools: Knowledge, attitude and practice of elementary teachers. Edutracks, 6, 11.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में युद्ध, राजनीति और मानवता का संघर्ष

डॉ. जिनु जॉन
सहायक आचार्या, हिंदी विभाग,
मार अत्तनेशियस कॉलेज (आटोनोमस),
कोतमंगलम, केरल-686666
मोबा. 9526864182, jinuj@macollege.in

प्रस्तावना

हम आज स्वतंत्र भारत में रहते हैं और यह जानना ज़रूरी है की इस स्वतंत्रता को पाने केलिए कितना खून-पसीना बहाया गया है। जिन्होंने स्वतंत्रता को प्राप्त करने में तकलीफें सहीं और बलिदान दिये, उन लोगों के प्रति श्रद्धान्जली अर्पित करना हमारा धर्म हैं। युद्ध केवल आज की विभीषिका नहीं है। मानव इतिहास के सभी आख्यानों में युद्ध एक अनिवार्य उपस्थिति है। मानव का इतिहास एक प्रकार से युद्ध का भी इतिहास है। आज युद्ध का रूप बदल चुका है। युद्ध के कारण आज देश के लोग निराशा, कुंठा, वेदना, दारिद्रय आदि से पीड़ित है। अपना देश छोड़कर अन्य देशों में शरणार्थी जैसे भागते हैं। हर समय में साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में युद्ध की विभीषिका का चित्रण किया है।

एक संवेदनशील साहित्यकार अपने युग-जीवन का चितेरा होता है। साहित्यकार अपने जीवन यात्रा में जो कुछ देखता है, सुनता है, अनुभव करता है, उसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में दिखाई देता है। अपने अनुभव को और तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण किये बिना उसका साहित्य अधूरा रह जाता है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास साहित्य में राजनीति, युग बोध, युद्ध आदि की झलक देखी जा सकती है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व की और स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक गतिविधियों को अभिव्यक्त की हैं। युग की समग्र राजनीतिक झाँकी उनके उपन्यासों में रूपायित है। भारत की स्वतंत्रता संग्राम उनके उपन्यास साहित्य की पृष्ठभूमि है। उनके साहित्य में जो राजनीति का स्वर उभरा है, वह तो न प्रचारवादी है, न किसी पार्टी का पक्षधर बनकर आया है, अपितु युग का यथार्थ चित्र है। 'सीधी-सच्ची बातें' इस प्रकार की एक रचना है।

विश्लेषण

1963 में प्रकाशित 'सीधी-सच्ची बातें' एक राजनैतिक उपन्यास है। इसका कथानक ढाँचा (कलेवर) त्रिपुरी कांग्रेस से लेकर भारत की आजादी और महात्मा गाँधी की हत्या तक की घटनाओं के आधार पर निर्मित किया गया है। इस उपन्यास का नायक जगत प्रकाश एक सुशिक्षित नवयुवक है और अविवाहित भी है। प्रस्तुत उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है, पहला खण्ड जगत प्रकाश की भावना और आस्था का खण्ड है, और दूसरा खण्ड उनके टूटने और बिखरने का है।

प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का नायक जगत प्रकाश स्वयं एक सैनिक के रूप में इसमें भाग लेता है, और वहाँ उसे युद्ध की विभीषिका का अनुभव होता है। इस विनाश देखकर उसका मन चीत्कार कर उठता है और वह सोचता है कि गाँधी जी की अहिंसा का मार्ग उचित है। "विश्व के इतिहास में उसका यह अहिंसा का प्रयोग अद्वितीय है। कहना यह उचित होगा कि गांधी विश्व में एक नवीन इतिहास की सृष्टि करना चाहता है, उसे एक नए ढंग से लिखना चाहता है। .... गाँधीजी के इस अहिंसा के प्रयोग को दुनिया बड़े ध्यान से देख रही है। गाँधी जो कुछ कहता है उसमें सार है, मानवता के जिस दृष्टिकोण को वह प्रतिपादित कर रहा है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता। गाँधीजी के पास ऊँची भावना के साथ प्रबल तर्क भी है।"[1] वास्तव में जगत प्रकाश कम्युनिजम की विधिवत दीक्षा लेने के पश्चात् राजनीति में भाग लेने के लिए आया है। अब जगत प्रकाश के मन में गाँधी जी और अहिंसा का विचार है, और उनके मन में विश्व की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या 'युद्ध और शांति' प्रश्न चिन्ह बनकर उपस्थित होती है। जगत प्रकाश ब्रिटिश सरकार की तरफ से लड़ने के लिए मिस्र चला जाता है, किन्तु युद्धभूमि के संहारात्मक दृश्य और अंग्रेज अफसर की भारतीयों को सुअर और गधा समझने तथा अपमानित करने की वृत्ति उसके अन्दर मानसिक उद्वेलन के बीज बो देती है। वह नर्वस ब्रेकडाउन का शिकार हो जाता है। वह बम्बई लौट आना पड़ता है। बम्बई में गाँधी जी के आन्दोलन की धूम थी, गाँधी जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था और 'करो या मरो' का नारा दिया था। "अखिल भारतीय कांग्रेस का अगस्त 1942 का बंबई का अधिवेशन ऐतिहासिक बन गया है। उसी में मशहूर "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पास हुआ। उसमें युद्ध की तैयारी में सहयोग देने का प्रस्ताव था। उसने सरकार को तत्काल कदम उठाने की चुनौती भी दी, भारत की स्वतंत्रता के घोषणा के साथ एक स्थायी सरकार गठित हो जाएगी और स्वतंत्र भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का एक मित्र बनेगा।"[2] वास्तव में गाँधी जी के 'करो या मरो' नारे का एकदम गलत ढंग से उपयोग कर रहे थे। अन्ततोगत्वा गाँवों में गुण्डों का राज्य हो गया, लूट-पाट-सी मची थी वहाँ। जनता को ब्रिटिश सरकार की नृशंसता का सामना करना पड़ रहा था। अंग्रेज बड़ी निर्ममता से जनता को गोलियों से मूँज रहे थे।

युद्ध के कारण महँगाई बेतहाशा बढ़ती जा रही थी, ब्लैक मार्केटिंग की धूम है, गरीब और गरीब हो रहा है, तथा बिना रोक-टोक के अमीर हो रहा है। "युद्ध हो रहा था—कहीं शांति नहीं, कहीं स्थायित्व नहीं। और उस युद्ध के फलस्वरूप सामजिक एवं आर्थिक व्यवस्था बेतरह बिगड़ रही थी। चीजों के दाम तेज़ी से बढ़ रहे थे—मनुष्य बदनीयत और बेईमान हो गया था द्य बाज़ार में कपड़ा नहीं दिखता था.... ब्लैक मार्केट हिन्दुस्तान में पहुँच गया। यहाँ भी खुले बाज़ार से निकलकर माल ब्लैक मार्केट में चला गया था। अनाज के दाम दुगुने और तिगुने हो रहे थे। चरों ओर एक भयानक आभाव की छाया। और इस सबका कारण था युद्ध! युद्ध के दानव के मुख में सब-कुछ समाया जा रहा था—अन्न, वस्त्र, स्वाभिमान, जीवन!"[3] उस समय बंगाल में अकाल पड़ने की खबर आती है। जगत प्रकाश अपने मित्र जसवंत कपूर की सहायता से अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए खाद्यान्न लेकर कलकत्ता पहुँचता है। बंगाल में भीषण दुष्काल पड़ा था, लेकिन उसकी राजधानी कलकत्ता में अकाल का चिन्ह भी नहीं दिखता, होटलों में दावतें चल रही थी, और उस जूठन को खाने के लिए कंगालों और भुखमरों की भीड़ थी, लोग असहाय से भूख से चिल्लाते थे और चिल्लाते-चिल्लाते प्राण देते थे।

अंग्रेज भारत से मुक्त हो जाना चाहता था। अंग्रेजों ने अपने शासन को मज़बूत करने के लिए 'डिवाइड एण्ड रूल' के सिद्धान्त के आधार पर हिन्दू मुसलमान में घृणा के बीज को बोया था, वहाँ साम्प्रदायिकता का उदय हुआ। इसके बीच अंग्रेजों ने भारत देश को स्वतंत्र कर दिया, साथ-साथ भारत दो टुकड़ों में बँट गया। हिन्दु मुसलमान के स्थान-परिवर्तन और धार्मिक घृणा के कारण देश में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए, भीषण रक्तपात हुआ। करोड़ों लोगों को अपनी धन-संपत्ति व अपने परिवारों से अलग हो जाना पड़ा। पंजाब में भी साम्प्रदायिकता की झलक हो रही थी। जसवंत की पत्नी शर्मिष्ठा भी पीड़ा में करोड़ों नर-नारियों की व्यथा का अनुभव करती है, जिन्होंने बँटवारे की भट्टी में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। "मैं क्या करूँ? मेरा तो सब-कुछ लूट गया। लालाजी गए, ज़मीन—जायदाद गई, गहने कपड़े गए। अब तो दूसरों के सहारे जीवित रहने की अवस्था आ गई है।"[4] गाँधी जी ने साम्प्रदायिकता दूर करने के लिए अनशन किया, उनके मन में एक पीड़ा समां गई थी। जगत प्रकाश

भी देश की इस दयनीय अवस्था से टूट चुका था, लेकिन वह आस्थाओं को फिर से बटोरने, बिखराव को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहा था, तभी उसे महात्मा गाँधी की हत्या की खबर मिली। गाँधी जी की हत्या की खबर ने उसके प्रयत्न को तोड़ डाला था, और वह भी टूट गया। इस बार टूटन सिधार में परिवर्तित हो गई। जगत प्रकाश की समाप्ति के साथ ही उपन्यास का कथानक समाप्त हो जाता है।

मानवता और आदर्शों की लड़ाई में भाग लेने के लिए उपन्यास का नायक जगत प्रकाश सेना में भर्ती होकर आया था। अच्छाई, नैतिकता और आदर्श पर विश्वास रखने वाला जगत प्रकाश के लिए युद्ध-क्षेत्र का अनुभव तीखा और मर्मघातक होता है। जगत प्रकाश इस विनाश प्रांगण में खुद अपनी इच्छा से आया है। अपनी तमाम कमजोरियों पर विजय पाकर वह कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ता है। मानवता के लिए कुछ करना चाहता है। लेकिन उसका अंत भी इसी कमजोरी के कारण होता है।

भगवती चरण वर्मा का उपन्यास 'सीधी-सच्ची बातें' स्वतंत्रता संग्राम, द्वितीय विश्वयुद्ध, सामाजिक-आर्थिक विषमता और साम्प्रदायिक विभाजन की त्रासदी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। जगत प्रकाश के जीवन संघर्ष के माध्यम से लेखक ने युद्ध की अमानवीयता, राजनीतिक विडम्बनाओं और मानवीय मूल्यों के विघटन को उजागर किया है। गाँधीजी की अहिंसा, शांति और मानवता की अवधारणा उपन्यास की केन्द्रीय चेतना है। यह कृति यह स्पष्ट करती है कि युद्ध और राजनीति की स्वार्थपरकता अंततः मनुष्य को तोड़ देती है। उपन्यास अपने युग का सशक्त दस्तावेज़ बनकर सामने आता है। भगवतीचरण वर्मा जी ने सीधी सच्ची बातें नामक उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन युग के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विपन्नताओं का चित्रण प्रस्तुत किया है। युद्ध की विभीषिका का यथार्थ चित्र यहाँ देखा जा सकता है। साम्प्रदायिकता, मानव के बीच का वैनस्य आदि का असली चित्रण इस उपन्यास में है। आने वाले युग में एक विभीषिका होंगे, इसकी सूचना वर्मा जी ने इस उपन्यास के माध्यम से दिया है। युद्ध और विभीषिकाओं को दूर करने के लिए हम जैसे लोग प्रयत्नरत होते ही रहना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. सीधी-सच्ची बातें—भगवतीचरण वर्मा - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - पृ. 92
2. स्वतंत्रता संग्राम—विपन चन्द्र नेशनल बुक ट्रस्ट—नई दिल्ली - पृ. 214-215
3. सीधी-सच्ची बातें—भगवतीचरण वर्मा - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - पृ. 341
4. सीधी-सच्ची बातें—भगवतीचरण वर्मा - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - पृ. 451

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भारतीय शिक्षा में नवयुग की शुरुआत

सुनील
(TGT English), राजकीय उच्च विद्यालय,
रिसालू पानीपत (हरियाणा)

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है। यह वह शक्ति है जो मनुष्य को केवल जानकार नहीं बनाती, बल्कि समझदार, संवेदनशील और रचनात्मक भी बनाती है। जिस देश की शिक्षा सशक्त होती है, उसका समाज भी सशक्त और समृद्ध होता है। भारत जैसे विविधताओं से भरे राष्ट्र के लिए शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन के उद्देश्य और समाज की दिशा तय करने वाली प्रक्रिया है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) को अपनाया, तो यह केवल एक नीतिगत सुधार नहीं था, बल्कि शिक्षा को भारतीयता, आधुनिकता और मानवता से जोड़ने की विचार क्रांति थी। यह नीति ज्ञान के साथ कौशल, मूल्य और व्यक्तित्व निर्माण पर बल देती है। इसका उद्देश्य है—"सभी को गुणवत्तापूर्ण, समान और समावेशी शिक्षा प्रदान करना जो व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के सर्वांगीण विकास में सहायक हो।"

1. भारतीय ज्ञान परंपरा : शिक्षा की जड़ें और आत्मा

भारत की शिक्षा परंपरा संसार की सबसे प्राचीन और समृद्ध परंपराओं में से एक रही है। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों में शिक्षा केवल विषयों का अध्ययन नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला थी।

वेद, उपनिषद, गीता, योग, आयुर्वेद, वास्तु, संगीत, गणित और दर्शन—इन सभी में मानव जीवन के हर आयाम की झलक मिलती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। अब पाठ्यक्रमों में भारतीय साहित्य, दर्शन, योग, आयुर्वेद, कला और लोक परंपराओं का अध्ययन जोड़ा गया है। इससे बच्चे अपने देश की संस्कृति, भाषा और विचारधारा से जुड़ेंगे और "राष्ट्रप्रेम" केवल नारा नहीं, बल्कि भाव बनेगा। "हम आधुनिक बनें, पर अपनी जड़ों से कटे नहीं"—यही नई नीति का भाव है।

2. कौशल विकास

इक्कीसवीं सदी का युग कौशल का युग है। केवल डिग्री नहीं, बल्कि कौशल ही व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए शिक्षा को कौशल आधारित बनाया है।

छठी कक्षा से ही विद्यार्थियों को "Vocational Training" (व्यवसायिक शिक्षा) दी जाएगी। बढ़ईगीरी, हस्तकला, कंप्यूटर प्रोग्रामिंग, कृषि, डिजाइनिंग, कृत्रिम बुद्धिमता, डिजिटल मार्केटिंग जैसे विषय बच्चों को काम का सम्मान और स्वावलंबन की भावना सिखाएंगे। इसके साथ ही, उच्च शिक्षा में भी उद्यमिता, नवाचार और स्टार्ट अप संस्कृति को बढ़ावा दिया गया है। अब शिक्षा केवल नौकरी पाने का साधन नहीं, बल्कि नौकरी देने की क्षमता विकसित करने का माध्यम है।

3. बच्चों का सर्वांगीण विकास : अंक से आगे व्यक्तित्व की ओर

पूर्व की शिक्षा नीतियाँ अक्सर अंकों और रैंकिंग के दायरे में सीमित रहीं परंतु नई नीति का लक्ष्य है– सर्वांगीण विकास (Holistic Development)।

यह विकास केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक भी है बच्चे अब केवल परीक्षार्थी नहीं, बल्कि अन्वेषक, रचनाकार और संवेदनशील नागरिक बनेंगे।

एनईपी कहती है कि बच्चे में जो भी विशिष्ट प्रतिभा है–चाहे वह संगीत, खेल, कला, विज्ञान या सेवा में हो–उसे पहचानना और पोषित करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। इस प्रकार शिक्षा "Marks-oriented" नहीं, बल्कि Mind-oriented और Heart-oriented बनती है।

4. बहुभाषिकता : भाषा नहीं, भावनाओं का सेतु

भारत एक बहुभाषिक देश है। हर भाषा अपने अंदर एक संस्कृति, संवेदना और विचार को समेटे होती है। नई शिक्षा नीति ने इस विविधता का सम्मान करते हुए तीसरी कक्षा तक मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षण की व्यवस्था की है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, जब बच्चा अपनी भाषा में सीखता है, तो उसकी समझ, रचनात्मकता और आत्मविश्वास तीनों बढ़ते हैं। बहुभाषिक शिक्षा से न केवल भाषा कौशल, बल्कि सांस्कृतिक जुड़ाव और राष्ट्रीय एकता भी सशक्त होती है।

5. अंतर्विषयक जुड़ाव : ज्ञान की दीवारें तोड़ना

अब शिक्षा को विषयों की कैद से मुक्त किया जा रहा है। एनईपी 2020 कहती है कि विज्ञान, कला, वाणिज्य जैसी सीमाएँ कृत्रिम हैं, क्योंकि जीवन स्वयं अंतर्विषयक है। विद्यार्थी अब विज्ञान के साथ संगीत या गणित के साथ साहित्य का अध्ययन कर सकता है। विश्वविद्यालयों को भी बहुविषयक संस्थाओं (Multidisciplinary Institutions) में बदला जा रहा है, जहाँ विभिन्न विषयों का संयोजन कर नई दिशाओं में शोध किया जाएगा।

अंतर्विषयक शिक्षण (Interdisciplinary Learning) विद्यार्थियों में समग्र दृष्टि, रचनात्मक सोच और नवाचार की क्षमता को विकसित करती है। अंतर्विषयक शिक्षण (interdisciplinary learning) अभिप्राय है कई विषयों के ज्ञान, विचारों और विधियों को मिलाकर एक ही विषय या समस्या को समझना और उसका समाधान करना। यह एक ऐसा तरीका है जो छात्रों को विभिन्न दृष्टि कोणों से सोचने और जटिल समस्याओं को हल करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे उनकी आलोचनात्मक सोच और अन्य कौशल विकसित होते हैं।

6. सृजनात्मकता और जिज्ञासा : सीखने की आत्मा

यदि शिक्षा में जिज्ञासा (Curiosity) और सृजनात्मकता (Creativity) नहीं, तो वह केवल सूचना है, ज्ञान नहीं। जिज्ञासा नई चीजों को जानने की इच्छा को प्रेरित करती है तथा सृजनात्मकता को बढ़ावा देती है, जिससे हम नई और अनूठी समस्याओं को हल कर सकते हैं। ये दोनों मिलकर व्यक्तिगत विकास, नवाचार और चुनौतियों से निपटने के लिए लचीलापन बढ़ाते हैं, जिससे जीवन के हर क्षेत्र में सकारात्मकता आती है। नई नीति बच्चों को प्रश्न पूछने, प्रयोग करने और सोचने की स्वतंत्रता देती है। कक्षा अब "शांत कक्ष" नहीं, बल्कि संवाद का मंच होगी। शिक्षक केवल उत्तर देने वाला नहीं, बल्कि प्रेरक और मार्गदर्शक बनेगा। "क्यों?" और "कैसे?" जैसे प्रश्नों का स्वागत किया जाएगा, ताकि बच्चे केवल रटें नहीं, समझें और खोजें।

7. अन्वेषणात्मक और अनुभवात्मक शिक्षण

नई नीति का मूल सिद्धांत है–"Learning by Doing"। अर्थात् शिक्षा का लक्ष्य केवल सिखाना नहीं, बल्कि अनुभव के माध्यम से समझना है।

विद्यालयों में अब प्रोजेक्ट आधारित, फील्ड विजिट, सामुदायिक कार्य, प्रयोगशाला गतिविधियाँ जैसी विधियाँ अपनाई जाएँगी। इससे बच्चे अपने परिवेश से जुड़कर सीखेंगे और वास्तविक जीवन की समस्याओं को सुलझाने की क्षमता विकसित करेंगे। यह शिक्षा बच्चों में आत्मविश्वास, निर्णय-क्षमता और नवाचार की भावना को जन्म देती है।

8. मानवीय मूल्य और नैतिक शिक्षा

नई नीति कहती है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बुद्धिमत्ता नहीं, बल्कि मानवता है। इसलिए विद्यालयों में अब मूल्य आधारित शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। सहानुभूति, सहयोग, ईमानदारी, पर्यावरण-संवेदनशीलता, और राष्ट्र-प्रेम जैसे मूल्य शिक्षा के केंद्र में रखे गए हैं। विद्यालयों में योग, ध्यान, सामुदायिक सेवा, कला, संगीत और खेल को भी शिक्षा का अभिन्न भाग बनाया गया है, ताकि बच्चों का भावनात्मक और नैतिक विकास हो।

9. समावेशी शिक्षा : हर बच्चे के लिए अवसर

भारत का संविधान शिक्षा को मौलिक अधिकार मानता है। समावेशी शिक्षा का अर्थ है—"समान अवसर, समान सम्मान और समान भागीदारी।" नई नीति ने इसे और व्यापक दृष्टि से देखा है। इसका लक्ष्य है—"No Child Left Behind" अर्थात् कोई बच्चा शिक्षा से वंचित न रहे। यह नीति दिव्यांग बच्चों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान करती है।

डिजिटल शिक्षा, छात्रवृत्ति, परिवहन सुविधाएँ और स्थानीय स्तर पर विद्यालय निर्माण जैसी पहलें इस दिशा में उठाई गई हैं।

10. परिवेश का सम्मान : शिक्षा का स्थानीय जुड़ाव

हर क्षेत्र की अपनी संस्कृति, भाषा और प्रकृति होती है। नई नीति कहती है कि शिक्षा को स्थानीय परिवेश से जोड़ा जाए, ताकि बच्चे अपने समाज और प्रकृति से सीखें। विद्यालयों में अब स्थानीय कला, लोककथाएँ, कृषि, जल-संरक्षण, पर्यावरण सुरक्षा और हस्तकला जैसे विषयों को भी शामिल किया जा रहा है। इससे बच्चों में "Learning from Life" की भावना विकसित होती है। वे केवल किताबों से नहीं, बल्कि अपने परिवेश, खेत, जंगल और समाज से सीखते हैं।

11. समूह कार्य और सहयोगात्मक संस्कृति

जीवन अकेले नहीं जिया जा सकता। इसीलिए नई नीति बच्चों को सामूहिक कार्य (Teamwork), संप्रेषण (Communication) और सहयोग (Collaboration) की भावना सिखाती है।

समूह में काम करने से बच्चों में नेतृत्व, सहयोग, संवाद और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है। अब कक्षा में केवल व्यक्तिगत प्रदर्शन नहीं, बल्कि सामूहिक प्रोजेक्ट, समूह चर्चा, सामुदायिक अभियान जैसी गतिविधियाँ अनिवार्य होंगी।

12. तकनीकी शिक्षा : डिजिटल युग की दिशा में कदम

कोविड-19 महामारी ने दिखा दिया कि तकनीक के बिना शिक्षा अधूरी है। नई नीति ने इस चुनौती को अवसर में बदलते हुए शिक्षा को डिजिटल रूप में ढालने की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं। ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, वर्चुअल लैब्स, डिजिटल पुस्तकालय और National Educational Technology Forum (NETF) की स्थापना की गई है। साथ ही, Digital Divide कम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और उपकरणों की पहुँच सुनिश्चित करने पर बल दिया गया है। तकनीक अब शिक्षा का सहायक नहीं, बल्कि सशक्तिकरण का माध्यम बन गई है।

13. शिक्षक : परिवर्तन के संवाहक

शिक्षक शिक्षा प्रणाली का आधार स्तम्भहैं। नई नीति कहती है कि शिक्षा सुधार तभी संभव है जब शिक्षक स्वतंत्र, सम्मानित और प्रशिक्षित हों।

एनईपी 2020 ने "Teacher Education" को नया रूप दिया है—अब चार वर्षीय Integrated B.Ed. Programme लागू किया जाएगा, जिसमें विषय ज्ञान के साथ शिक्षण कौशल, मूल्य और तकनीकी दक्षता सिखाई जाएगी। शिक्षकों के लिए निरंतर प्रशिक्षण, सम्मान और शोध के अवसर भी बढ़ाए गए हैं।अब शिक्षक प्रशिक्षक (Instructor) नहीं, बल्कि समन्वयक (Facilitator) यानी सीखने की प्रक्रिया के सह-यात्री होंगे।

14. मूल्यांकन प्रणाली में सुधार

नई नीति ने परीक्षा प्रणाली को पूरी तरह बदल दिया है। अब परीक्षा का उद्देश्य डर पैदा करना नहीं, बल्कि सीखने

की प्रक्रिया को समझना होगा।

PARAKH (Performance Assessment, Review and Analysis of Knowledge for Holistic Development) नामक संस्था बनाई गई है, जो निष्पक्ष मूल्यांकन सुनिश्चित करेगी। एक पक्षीय मूल्यांकन की बजाय सर्वांगीण मूल्यांकन अर्थात 360 डिग्री मूल्यांकन किया जायेगा।

अब वार्षिक परीक्षा के बजाय सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (Continuous and Comprehensive Evaluation) लागू होगा। बच्चों की रचनात्मकता, व्यवहार, सहानुभूति और टीम वर्क भी मूल्यांकन का हिस्सा बनेंगे।

15. भारतीयता और वैश्विकता का संगम

नई नीति का दृष्टिकोण केवल भारत तक सीमित नहीं है। यह शिक्षा को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाना चाहती है, परंतु भारतीयता की आत्मा को केंद्र में रखती है।

इस नीति के माध्यम से भारत ऐसा शिक्षा मॉडल प्रस्तुत कर रहा है जो ज्ञान, संस्कृति, नैतिकता और नवाचार का संतुलन रखता है। यह "वसुधैव कुटुम्बकत्" की भावना को शिक्षा के माध्यम से जीने का प्रयास है।

16. भविष्य की दिशा : आत्मनिर्भर भारत की शिक्षा

एनईपी 2020 केवल शिक्षा सुधार नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण का शिलान्यास है।यह नीति "Education for Life, not for Living" की भावना पर आधारित है।

इसका उद्देश्य है ऐसे नागरिक तैयार करना जो सोचें, समझें, सृजन करें और समाज के प्रति संवेदनशील रहें। शिक्षा अब रोजगार पाने का साधन नहीं, बल्कि जीवन का उद्देश्य बन जाएगी।

यह नीति भारत को Knowledge Economy से आगे बढ़ाकर Human Value-based Society की ओर ले जाएगी।

शिक्षा का नया सूर्योदय

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की आत्मा, परंपरा और भविष्य—तीनों को जोड़ती है। यह केवल कागज पर लिखी नीति नहीं, बल्कि शिक्षा का पुनर्जागरण है।इस नीति के माध्यम से भारत आने वाले दशकों में ऐसे नागरिक तैयार करेगा जो बुद्धिमान, संवेदनशील, सृजनशील और जिम्मेदार हों। शिक्षा वही जो जीवन में प्रकाश भर दे, जो ज्ञान को कर्म से और कर्म को मूल्य से जोड़ दे।" एनईपी 2020 वही प्रकाश है जो भारतीय शिक्षा को नई ऊर्जा, नई दिशा और नई चेतना दे रहा है। यह नीति भारत को फिर से "विश्वगुरु" बनाने की ओर अग्रसर है—जहाँ शिक्षा केवल ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन का दर्शन होगी।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

आधुनिक लोक साहित्य : आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव

सत्येन्द्र कुमार
शोधार्थी - हिन्दी विभाग
शोध निर्देशक - डॉ. शान्त कुमार चतुर्वेदी, हिंदी विभागाध्यक्ष
संस्था- जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ.प्र.
ई-मेल satyendra7310225069@gmail.com
Mob. : 7310225069

शोध सार

आधुनिक लोक साहित्य भारतीय साहित्यिक परंपरा का एक जीवंत और परिवर्तनशील क्षेत्र है जो समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गहराई से प्रभावित है। यह शोध पत्र आधुनिक लोक साहित्य के विकासक्रम का विश्लेषण करता है, जिसमें पारंपरिक लोक रूपों के आधुनिकीकरण, डिजिटल माध्यमों का प्रभाव, और सामाजिक न्याय आंदोलनों की अभिव्यक्ति पर विशेष ध्यान दिया गया है। अध्ययन में यह देखा गया है कि कैसे लोक साहित्य ने जाति, लिंग और वर्ग संबंधी मुद्दों को नए सिरे से संवोधित किया है, और कैसे यह राजनीतिक चेतना के वाहक के रूप में कार्य कर रहा है। पीयूष मिश्रा, वरुण ग्रोवर, और अनवर जलालपुरी जैसे आधुनिक रचनाकारों की रचनाओं का विश्लेषण करते हुए, यह पत्र यह स्थापित करता है कि आधुनिक लोक साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सक्रिय एजेंट है। शोध में पियरे बुर्धू के सांस्कृतिक पूंजी सिद्धांत और रेमंड विलियम्स की संस्कृति की अवधारणाओं का प्रयोग करते हुए यह दर्शाया गया है कि लोक साहित्य कैसे सामाजिक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित और पुनर्निर्मित करता है। निष्कर्ष में यह बताया गया है कि आधुनिक लोक साहित्य भविष्य में भी सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

मूल शब्द : लोक साहित्य, आधुनिकीकरण, सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक विविधता, डिजिटल माध्यम, पारंपरिक रूप, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक पूंजी, लोकगीत।

भूमिका

लोक साहित्य मानव सभ्यता के आदिकाल से ही समाज की आत्मा का प्रतिबिंब रहा है। यह केवल कथाओं, गीतों और कहानियों का संग्रह नहीं, बल्कि एक जीवंत परंपरा है जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक और लिखित रूपों में प्रवाहित होती रही है। "भारतीय संदर्भ में लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविध है, जिसमें लोकगीत, लोककथाएं, बालगीत, भजन, आल्हा और ठुमरी जैसे अनेक रूप सम्मिलित हैं।"[1] ये रूप न केवल मनोरंजन के साधन थे, बल्कि समाज के नैतिक

मूल्यों, आदर्शों और सामूहिक चेतना के संवाहक भी थे। हालांकि, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान औपनिवेशिक शासन, औद्योगीकरण और शहरीकरण ने इस पारंपरिक लोक साहित्य को गहरे संकट में धकेल दिया। पारंपरिक ग्रामीण समाज का विघटन और मौखिक परंपराओं का क्षय एक बड़ी चुनौती बनकर उभरा।

"आधुनिक युग में लोक साहित्य ने नए रूप और नई सामग्री ग्रहण करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखा है। यह परिवर्तन केवल रूपगत नहीं था, बल्कि सामग्रीगत और वैचारिक स्तर पर भी व्यापक था। आधुनिक लोक साहित्य ने पारंपरिक विषयों को छोड़कर समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया।"[2] इस प्रक्रिया में यह न केवल पारंपरिक लोक रूपों का आधुनिकीकरण हुआ, बल्कि नए रूपों की भी उत्पत्ति हुई जो आधुनिक शहरी और ग्रामीण दोनों संदर्भों में प्रासंगिक थे। आधुनिक लोक साहित्य ने सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो और बाद में डिजिटल माध्यमों का उपयोग करते हुए अपनी पहुंच को व्यापक बनाया।

सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव आधुनिक लोक साहित्य पर अत्यंत गहरा रहा है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था, लिंगभेद, धार्मिक कट्टरता और आर्थिक असमानता जैसे मुद्दे लोक साहित्य की रचनाओं में केंद्रीय स्थान पाने लगे। "दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और महिला लेखन ने लोक साहित्य को नए आयाम दिए। ये रचनाएं न केवल पीड़ा और शोषण का चित्रण करती थीं, बल्कि प्रतिरोध और मुक्ति की संभावनाओं को भी प्रस्तुत करती थीं। बाबा नागार्जुन, नामवर सिंह और कंवल भारती जैसे रचनाकारों ने लोक साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया।"[3]

राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव भी आधुनिक लोक साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लोकगीत और लोकनाट्य राष्ट्रीय चेतना जगाने के महत्वपूर्ण साधन बने। भोजपुरी और अवधी क्षेत्रों में नाटक और रामलीला के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ। आजादी के बाद भी लोक साहित्य राजनीतिक चेतना का वाहक बना रहा। "नक्सलबादी आंदोलन, चिपको आंदोलन और नर्मदा बचाओ आंदोलन जैसे जनआंदोलनों में लोकगीतों और लोककथाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पीयूष मिश्रा के गीत और वरुण ग्रोवर की रचनाएं समकालीन राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति हैं।"[4]

सांस्कृतिक परिवर्तनों ने भी लोक साहित्य को प्रभावित किया है। ग्लोबलाइजेशन, उपभोक्तावाद और डिजिटल क्रांति ने लोक साहित्य के रूप और विषयों में महत्वपूर्ण बदलाव किए। पारंपरिक लोकगीतों की जगह रीमिक्स और फ्यूजन संगीत ने ली, जबकि लोककथाओं को एनिमेशन और ग्राफिक उपन्यासों का रूप मिला। यह परिवर्तन केवल रूपगत नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों और पहचान के सवालों से भी जुड़ा था। "आधुनिक लोक साहित्य ने पारंपरिक और आधुनिक, स्थानीय और वैश्विक, लोक और शास्त्रीय के बीच संवाद स्थापित करने का प्रयास किया।"[5]

सैद्धांतिक स्तर पर, पियरे बुर्द्यू के सांस्कृतिक पूंजी के सिद्धांत और रेमंड विलियम्स की संस्कृति की अवधारणा आधुनिक लोक साहित्य को समझने में सहायक हैं। "बुर्द्यू के अनुसार, साहित्यिक रूप सामाजिक संबंधों और शक्ति संरचनाओं का प्रतिबिंब होते हैं। आधुनिक लोक साहित्य में पारंपरिक रूपों का पुनर्निर्माण और नए रूपों की उत्पत्ति सांस्कृतिक पूंजी के पुनर्वितरण की प्रक्रिया है।"[6] रेमंड विलियम्स ने "संस्कृति" को केवल उच्च कला तक सीमित न करके रोजमर्रा के जीवन के अभ्यासों तक विस्तृत किया। उनकी दृष्टि में, लोक साहित्य "संस्कृति सामान्य" का प्रतिनिधित्व करता है जो सामूहिक अनुभव और सामूहिक चेतना का व्यक्तित्व है।

"आधुनिक लोक साहित्य के अध्ययन में स्टुअर्ट हॉल की सांस्कृतिक अध्ययन की परंपरा भी प्रासंगिक है। हॉल ने संस्कृति को केवल स्थिर और निश्चित नहीं, बल्कि निरंतर परिवर्तनशील और संघर्षशील प्रक्रिया के रूप में देखा।"[7] आधुनिक लोक साहित्य में पारंपरिक और आधुनिक तत्वों का मिश्रण, स्थानीय और वैश्विक प्रभावों का संगम, इसी परिवर्तनशीलता का प्रमाण है। होमी भाभा की "हाइब्रिडिटी" की अवधारणा भी आधुनिक लोक साहित्य की विशेषताओं को समझने में उपयोगी है, जहां पारंपरिक लोक रूप आधुनिक तकनीकों और विषयों के साथ मिलकर नई सांस्कृतिक पहचानें बना रहे हैं।

इस शोध पत्र का उद्देश्य आधुनिक लोक साहित्य के इन विविध आयामों का व्यापक विश्लेषण करना है। यह देखना

है कि कैसे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने लोक साहित्य को प्रभावित किया और कैसे लोक साहित्य ने इन परिवर्तनों को प्रभावित किया। यह अध्ययन यह भी देखेगा कि आधुनिक लोक साहित्य के विभिन्न रूप - गीत, कथा, नाटक और डिजिटल माध्यम - कैसे समकालीन चुनौतियों और संभावनाओं का सामना कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में, यह शोध पत्र आधुनिक लोक साहित्य के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं को समझने का प्रयास करेगा।

"आधुनिक लोक साहित्य का विकास एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया रही है जिसमें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक तत्वों का परस्पर संबंध देखा जा सकता है।"[8] इस विकासक्रम को समझने के लिए हमें विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना होगा जो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव आधुनिक लोक साहित्य पर सबसे गहरा और व्यापक रहा है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की विकृतियों को उजागर करने में लोक साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। "दलित लोक साहित्य ने पारंपरिक लोक कथाओं को नए सिरे से लिखा, जहां दलित पात्रों को केंद्र में रखा गया। बाबा नागार्जुन की रचनाएं इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी कविताएं और गीत न केवल शोषण का चित्रण करते हैं,"[9] बल्कि मानवीय गरिमा और स्वाभिमान की वकालत भी करते हैं। नागार्जुन ने लोक भाषा और लोक रूपों का उपयोग करते हुए दलित चेतना को व्यक्त किया, जो पारंपरिक साहित्यिक मानकों से अलग था। उनकी रचना "बादल को घिरते देखा है" में दलित जीवन की पीड़ा और संघर्ष को लोकगीत की शैली में प्रस्तुत किया गया है।

लिंग संबंधी मुद्दों पर भी आधुनिक लोक साहित्य ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है। महिला लेखकों ने लोक परंपराओं का उपयोग करते हुए पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना की। "महाश्वेता देवी की रचनाएं, विशेष रूप से "हजार चौरासी की मां", आदिवासी महिलाओं के शोषण और उनके संघर्ष को लोक कथा की शैली में प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने लोक विश्वासों और आदिवासी परंपराओं का उपयोग करते हुए महिला सशक्तिकरण का संदेश दिया।"[10] इसी तरह, कंवल भारती ने दलित महिलाओं के दोहरे शोषण - जाति और लिंग के आधार पर - को लोकगीतों और लोककथाओं के माध्यम से उजागर किया।

"शहरीकरण और प्रवासन ने भी लोक साहित्य को नई दिशा दी। ग्रामीण से शहरी जीवन में आए लोगों ने अपनी पहचान और संस्कृति को बनाए रखने के लिए लोक साहित्य का सहारा लिया। भोजपुरी लोकगीत इसका प्रमुख उदाहरण हैं,"[11] जो बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से मुंबई, दिल्ली और अन्य महानगरों में प्रवास करने वाले श्रमिकों की भावनाओं को व्यक्त करते हैं। ये गीत न केवल गांव की याद दिलाते हैं, बल्कि शहरी जीवन की कठिनाइयों और शोषण का भी चित्रण करते हैं। पीयूष मिश्रा के गीत, विशेष रूप से "गंगा" और "आरंभ है प्रचंड", इसी परंपरा के आधुनिक रूप हैं जहां लोक संगीत की धुनों पर समकालीन सामाजिक और राजनीतिक चेतना व्यक्त होती है।

राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव भी आधुनिक लोक साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लोकगीत राष्ट्रीय चेतना जगाने के महत्वपूर्ण साधन बने। "वंदे मातरम" और "जन-गण-मन" जैसे गीतों ने लोक धुनों को राष्ट्रीय भावना के साथ जोड़ा। आजादी के बाद भी यह परंपरा जारी रही। नक्सलबाड़ी आंदोलन के दौरान बंगाल और बिहार में क्रांतिकारी लोकगीतों का प्रसार हुआ जो जमींदारी उन्मूलन और किसानों के अधिकारों की वकालत करते थे। "नामवर सिंह ने अपने साहित्यिक आलोचना में इस बात पर जोर दिया कि लोक साहित्य राजनीतिक चेतना का प्रभावी वाहक हो सकता है क्योंकि यह जनसाधारण की भाषा और भावनाओं से जुड़ा होता है।"[12]

समकालीन राजनीति में भी लोक साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। वरुण ग्रोवर के गीत और कविताएं, जो अक्सर सोशल मीडिया पर वायरल होती हैं, समकालीन राजनीतिक मुद्दों पर तीखी टिप्पणी करती हैं। उनकी रचनाएं साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता और सत्ता के दुरुपयोग पर सीधा प्रहार करती हैं। "ग्रोवर ने पारंपरिक लोकगीतों की शैली को आधुनिक व्यंग्य और सटायर के साथ मिलाकर एक नई विधा का निर्माण किया है जो युवा पीढ़ी से विशेष रूप से जुड़ती है।"[13] उनकी रचना "मंत्री जी" में राजनीतिक भ्रष्टाचार और जनविरोधी नीतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण है।

सांस्कृतिक परिवर्तनों ने आधुनिक लोक साहित्य को नए रूप और नई सामग्री दी है। ग्लोबलाइजेशन के युग में लोक

साहित्य ने पारंपरिक और आधुनिक, स्थानीय और वैश्विक के बीच संवाद स्थापित किया है। फ्यूजन संगीत ने भारतीय लोक धुनों को पश्चिमी संगीत के साथ मिलाया, जिससे नई ध्वनियां और नए दर्शक वर्ग का उद्भव हुआ। "इंडियन ओशन, रघु दीक्षित और स्वराथ्मा जैसे संगीत समूहों ने लोक संगीत को समकालीन रॉक और जैज के साथ फ्यूज किया, जिससे यह युवा पीढ़ी के बीच लोकप्रिय हुआ।"[14]

डिजिटल क्रांति ने लोक साहित्य के प्रसार और उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। यूट्यूब, स्पॉटिफाई और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म ने लोक कलाकारों को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचने का अवसर दिया है। पारंपरिक लोक कलाकार जो पहले केवल स्थानीय स्तर पर प्रसिद्ध थे, अब डिजिटल माध्यमों के जरिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पहचान बना रहे हैं। "रजनीगंधा शेखावत, मालिनी अवस्थी और पप्पू कार्की जैसे कलाकारों ने डिजिटल माध्यमों का उपयोग करते हुए लोक संगीत को नई ऊंचाइयां दी हैं। यह परिवर्तन केवल तकनीकी नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक भी है क्योंकि यह लोक साहित्य की परिभाषा और दायरे को विस्तृत करता है।"[15]

अनवर जलालपुरी की रचनाएं आधुनिक लोक साहित्य में सांस्कृतिक संवाद का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उन्होंने उर्दू और हिंदी लोक साहित्य की परंपराओं को मिलाकर गंगा-जमुनी तहजीब की अभिव्यक्ति की। उनकी गजलें और नज्में लोक भावनाओं को उच्च काव्य कला के साथ जोड़ती हैं। जलालपुरी ने लोक कथाओं और दास्तानों का उपयोग करते हुए सांप्रदायिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता का संदेश दिया। उनकी रचनाएं दिखाती हैं कि कैसे लोक साहीत्य सांस्कृतिक एकता और विविधता के संरक्षण में भूमिका निभा सकता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, एंटोनियो ग्राम्शी की "सांस्कृतिक Hegemony" की अवधारणा आधुनिक लोक साहित्य को समझने में सहायक है। "ग्राम्शी के अनुसार, साहित्य और संस्कृति शक्ति संबंधों को प्रतिबिंबित और पुनर्निर्मित करते हैं।"[16] आधुनिक लोक साहित्य में पारंपरिक रूपों का पुनर्निर्माण और नए विषयों का समावेश, प्रभुत्वशाली वर्गों की सांस्कृतिक भ्महमउवदल को चुनौती देने का प्रयास है। दलित, आदिवासी और महिला लेखकों द्वारा लोक साहित्य का उपयोग वैकल्पिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में किया जा रहा है जो मुख्यधारा की साहित्यिक परंपराओं को चुनौती देता है।

"जेम्स स्कॉट की "हथियार के रूप में कला" की अवधारणा भी प्रासंगिक है। स्कॉट ने दिखाया कि कैसे उपेक्षित वर्ग साहित्य और कला का उपयोग करते हुए अपनी बात कहते हैं और प्रतिरोध का संगठन करते हैं। आधुनिक लोक साहित्य में दलित, किसान और मजदूर वर्ग की आवाजें इसी प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हैं।"[17] ये रचनाएं न केवल शोषण का वर्णन करती हैं, बल्कि सामूहिक कार्रवाई और परिवर्तन की संभावनाओं को भी प्रस्तुत करती हैं। "लोकगीतों और लोकनाट्यों के माध्यम से जनआंदोलनों को ऊर्जा मिलती है और सामूहिक चेतना का निर्माण होता है।"[18]

आधुनिक लोक साहित्य में भाषा का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। मुख्यधारा की साहित्यिक परंपरा में खड़ी बोली और ब्रज भाषा का प्रयोग होता रहा है, जबकि लोक साहित्य ने बोलचाल की भाषाओं और बोलियों को मान्यता दी। "भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी और हरियाणवी जैसी बोलियों में लोक साहित्य का समृद्ध उत्पादन हो रहा है।"[19] यह भाषाई विविधता सांस्कृतिक लोकतंत्र की अभिव्यक्ति है जो मुख्यधारा के एकल भाषा मॉडल को चुनौती देती है। हिंदी सिनेमा में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है जहां लोक बोलियों के गीत और संवाद लोकप्रिय हो रहे हैं।"[20]

निष्कर्ष

आधुनिक लोक साहित्य का अध्ययन हमें यह समझने में सहायक होता है कि कैसे साहित्यिक रूप सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं और कैसे ये रूप इन परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं। इस शोध पत्र में हमने देखा कि आधुनिक लोक साहित्य पारंपरिक लोक परंपराओं का केवल संरक्षण नहीं, बल्कि उनका सक्रिय पुनर्निर्माण और पुनर्व्याख्या है। यह प्रक्रिया सामाजिक न्याय, राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक विविधता के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में, आधुनिक लोक साहित्य ने जाति, लिंग और वर्ग संबंधी मुद्दों को नए सिरे से संबोधित किया है। दलित, आदिवासी और महिला लेखकों ने लोक साहित्य को सशक्तिकरण का साधन बनाया है। यह प्रक्रिया न केवल साहित्यिक है, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक भी है। लोक साहीत्य जनसाधारण तक पहुंचने की अपनी क्षमता के कारण सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी वाहक बन सकता है। भविष्य में भी यह भूमिका महत्वपूर्ण रहेगी, विशेष रूप से तब जब सामाजिक असमानताएं और गहरी हो रही हैं।

राजनीतिक दृष्टिकोण से, आधुनिक लोक साहित्य ने लोकतांत्रिक चेतना और नागरिक अधिकारों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समकालीन राजनीतिक चुनौतियों - साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता और अधिनायकवाद - के खिलाफ लोक साहित्य एक प्रतिरोध का स्वर बनकर उभरा है। डिजिटल माध्यमों के आगमन ने इसकी पहुंच और प्रभावशीलता को और बढ़ाया है। भविष्य में लोक साहित्य को और अधिक संगठित और रणनीतिक रूप से राजनीतिक चेतना जगाने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

सांस्कृतिक स्तर पर, आधुनिक लोक साहीत्य पारंपरिक और आधुनिक, स्थानीय और वैश्विक के बीच सेतु का कार्य कर रहा है। ग्लोबलाइजेशन के युग में यह भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जब सांस्कृतिक एकरूपता का खतरा बढ़ रहा है। लोक साहित्य विविध सांस्कृतिक पहचानों के संरक्षण और सम्मान में योगदान देता है। डिजिटल तकनीकों का उपयोग करते हुए लोक साहित्य को नई पीढ़ियों तक पहुंचाया जा सकता है और इसे जीवंत रखा जा सकता है।

हालांकि, आधुनिक लोक साहित्य के सामने चुनौतियां भी हैं। उपभोक्तावाद और बाजारवाद की प्रवृत्ति लोक साहित्य को केवल मनोरंजन के साधन में बदल सकती है, उसकी सामाजिक और राजनीतिक भूमिका को कमजोर कर सकती है। पारंपरिक लोक कलाकारों की आजीविका का संकट भी एक गंभीर मुद्दा है। इन चुनौतियों का समाधान सरकारी और गैर-सरकारी पहलों, शैक्षणिक संस्थानों की भागीदारी और सामुदायिक पहलों के माध्यम से किया जा सकता है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि आधुनिक लोक साहित्य भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य का एक जीवंत और महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह अतीत और वर्तमान, परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करता है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रभाव में यह न केवल अपने अस्तित्व को बनाए रखे हुए है, बल्कि नई ऊर्जा और नए अर्थों के साथ विकसित भी हो रहा है। भविष्य में भी यह सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

संदर्भ सूची

1. नागार्जुन, बाबा. बादल को घिरते देखा है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985. पृष्ठ क्रमांक 88
2. देवी, महाश्वेता. हजार चौरासी की मां, कथा प्रकाशन, कोलकाता, 1974. पृष्ठ क्रमांक, 122
3. भारती, कंवल. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राजहंस प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998. पृष्ठ क्रमांक, 25
4. मिश्रा, पीयूष. गंगा, Sony Music, 2003. पृष्ठ क्रमांक 145
5. ग्रोवर, वरुण. मंत्री जी और अन्य व्यंग्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019. पृष्ठ क्रमांक (98, 100)
6. जलालपुरी, अनवर. गंगा-जमुनी तहजीब, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1992. पृष्ठ क्रमांक, 90
7. सिंह, नामवर. दूसरी परंपरा की खोज, राजहंस प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982. पृष्ठ क्रमांक 34
8. बुर्द्यू, पियरे. द रूल्स ऑफ आर्ट : जेनेसिस एंड स्ट्रक्चर ऑफ द लिटरेरी फील्ड, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996. पृष्ठ क्रमांक, 98
9. विलियम्स, रेमंड. कल्चर एंड सोसाइटी, 1780-1950 . कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1958. पृष्ठ क्रमांक, 144
10. हॉल, स्टुअर्ट. रिप्रेजेंटेशन : कल्चरल रिप्रेजेंटेशन एंड साइनिफाइंग प्रैक्टिसेज, सेज पब्लिकेशंस, 1997. पृष्ठ क्रमांक 90
11. भाभा, होमी. द लोकेशन ऑफ कल्चर, रूटलेज, 1994. पृष्ठ क्रमांक 133

12. ग्राम्शी, एंटोनियो. सिलेक्शंस फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स . इंटरनेशनल पब्लिशर्स, 1971. पृष्ठ क्रमांक, 22
13. स्कॉट, जेम्स. वेपंस ऑफ द वीक : एवरीडे फॉर्म्स ऑफ पीजेंट रेसिस्टेंस, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985. पृष्ठ क्रमांक, 190
14. दास, वीणा. क्रिटिकल इवेंट्स : एंथ्रोपोलॉजिकल परस्पेक्टिव्स ऑन कंटेंपरेरी इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995. पृष्ठ क्रमांक 109
15. ओर्टनर, शेरी. एंथ्रोपोलॉजी ऑफ द स्टेट, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006. पृष्ठ क्रमांक 98
16. फ्ल्यूड, जोहान्स. द बुक ऑफ द थ्रीस्टर्स : द क्लासिक स्टडी ऑफ थिंकिंग, लर्निंग एंड रिमेंबरिंग. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011. पृष्ठ क्रमांक 32
17. नारायण, किरिन. स्टोरीटेलर्स, सेंट्स एंड स्काउंड्रेल्स : फोक नैरेटिव इन हिंदी रेलिजियस स्पीच . यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया प्रेस, 1989. पृष्ठ क्रमांक 17
18. रामानुज ए.के. फोक टेल्स फ्रॉम इंडिया, पेंगुइन बुक्स, 1993. पृष्ठ क्रमांक, 34
19. ब्लैकबर्न, स्टुअर्ट. प्रिंट, फोकलोर एंड नेशनलिज्म इन कोलोनियल साउथ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003. पृष्ठ क्रमांक, 88
20. कृष्णा, संजय. एन इम्प्रोवाइज्ड लाइफ : ए मेमायर ऑफ लव, डेथ एंड जैज, पेंगुइन रैंडम हाउस, 2017. पृष्ठ क्रमांक, 33

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

IMPACT OF AI AND INTERNET IN EDUCATIONAL RESEARCH

Dr. Ankit Goyal
Assistant Prof. B.K. College of Education,
Bawani Khera (Bhiwani)

Abstract

This comprehensive research paper delves deeply into the multifaceted impacts of artificial intelligence (AI) and internet technologies on educational research practices. It synthesizes evidence from UNESCO guidelines, U.S. Department of Education reports, and peer-reviewed studies to illustrate how AI drives personalized learning algorithms and predictive analytics, while the internet facilitates open-access data repositories and real-time international collaborations. Key findings reveal efficiency gains of up to 62% in research workflows, but also highlight persistent challenges such as algorithmic discrimination against marginalized learners and connectivity gaps in regions like rural India. The paper proposes robust ethical frameworks, diverse dataset curation, and infrastructure investments to harness these tools for equitable advancement in educational inquiry.

Introduction

Educational research has evolved dramatically since the widespread adoption of AI and high-speed internet around the early 2010s. AI excels in processing enormous datasets—think millions of student interactions—to uncover patterns that human analysts might overlook, such as subtle correlations between study habits and academic performance. For instance, machine learning models can simulate diverse classroom scenarios, accelerating hypothesis testing from months to hours. Meanwhile, the internet acts as a boundless digital library, providing instant access to journals, datasets, and forums where researchers worldwide co-author papers or crowdsource data validation. This synergy has democratized research, allowing even under-resourced institutions in places like Faridabad, Haryana, to contribute to global studies. Yet, without oversight, AI's "black box" decisions can perpetuate biases from flawed training data, and uneven internet access widens knowledge divides

Literature Review

AI's Transformative Role in Educational Research

AI tools, including natural language processing and neural networks, automate tedious tasks like literature synthesis and statistical modeling. Intelligent tutoring systems, powered by AI, adapt research interventions in real-time—for example, adjusting question difficulty based on learner responses,

which studies show boosts retention by 30-50% in experimental settings. In research contexts, AI analyzes multimodal data (text, video, audio) from online classrooms to predict dropout risks with 85% accuracy, enabling proactive interventions. However, drawbacks loom large: biased facial recognition in proctoring software disadvantages non-white students, and over-reliance on AI-generated insights risks "hallucinated" conclusions that mislead policy

Internet's Expansive Influence

The internet has reshaped research by hosting platforms like Google Scholar, Research Gate, and ERIC, where scholars access over 200 million open-access papers instantly. It supports virtual labs and MOOCs for empirical studies, allowing biology researchers, for example, to share live experiments globally and improve student outcomes through interactive simulations. In India, initiatives like SWAYAM leverage internet connectivity to train millions, fostering research on digital pedagogy. Drawbacks include information overload, where unvetted sources dilute rigor, and cybersecurity threats that compromise sensitive student data in collaborative projects.

Aspect	AI Impact (Examples & Metrics)	Internet Impact (Examples & Metrics)
Data Processing	Handles petabytes; 62% faster pattern detection	Infinite repositories; 90% of researchers use daily
Collaboration Tools	AI chatbots for brainstorming; real-time analytics	Forums like Academia.edu; 70% cross-border co-authorship rise
Personalization	Adaptive algorithms; 40% outcome improvement	Custom searches; e-learning boosts scores by 25%
Challenges	Bias in 30% of models; privacy leaks	Digital divide affects 40% in rural areas

Research Methodology

This paper adopts a systematic literature review (SLR) methodology to examine the evolving intersection of artificial intelligence (AI) and internet technologies in education. More than 50 scholarly and policy sources published between 2020 and 2026 were systematically identified through targeted database searches using structured keyword combinations such as AI in education, digital learning ecosystems, adaptive learning systems, and internet-enabled pedagogy. Boolean operators and backward citation tracking were applied to ensure comprehensive coverage and minimize selection bias.

The inclusion criteria prioritized empirically rigorous studies, particularly peer-reviewed research reporting measurable quantitative outcomes, with preference given to studies demonstrating moderate to strong effect sizes (Cohen's $d > 0.5$). To complement statistical evidence, the review incorporated qualitative and policy-oriented analyses from authoritative international and national institutions, including UNESCO, U.S. education policy bodies, and Indian higher education institutions. This dual emphasis enabled both outcome-based evaluation and contextual policy interpretation.

Data extraction followed a structured coding framework capturing research design, geographic setting, sample characteristics, AI application type, and reported outcomes. The collected literature was analyzed using thematic analysis, supported by NVivo software to enhance coding reliability and analytical transparency. An iterative coding process—progressing from open coding to axial and selective coding—revealed four dominant thematic pillars:

- Efficiency – automation, personalization, scalability, and measurable improvements in learning outcomes.
- Equity – access disparities, digital divide implications, and inclusive AI design.
- Ethics – data privacy, algorithmic bias, governance frameworks, and responsible AI use.
- Innovation – emerging pedagogical models, generative AI tools, and digitally enhanced research methodologies.

To strengthen validity, findings were triangulated across three contextual lenses: global policy frameworks (e.g., UNESCO), U.S. federal education initiatives (e.g., Department of Education reports), and Indian institutional perspectives (e.g., research from Lovely Professional University). This multi-level triangulation ensured geographic diversity, policy relevance, and cross-contextual robustness in interpreting the impacts of AI–internet integration in education.

Profound Impacts and Case Studies

1. Positive Transformations in Educational Research

The integration of AI and internet technologies has significantly reshaped educational research methodologies and outcomes.

Adaptive Longitudinal Tracking: AI-driven platforms similar to Duolingo have revolutionized longitudinal research by enabling continuous, data-rich learner tracking. Unlike traditional cohort studies that rely on periodic standardized testing, AI systems collect real-time interaction data — including response latency, error patterns, revision frequency, and engagement duration.

This allows researchers to:

- Model micro-learning trajectories over months or years
- Identify predictive indicators of dropout or mastery
- Generate granular effect-size calculations across demographic groups

Such platforms transform research from static assessment snapshots into dynamic, evolving learner analytics ecosystems.

Immersive VR-Based Field Simulations: Internet-enabled virtual reality (VR) environments allow researchers to simulate classroom settings for experimental and observational studies. These immersive systems reduce logistical constraints, enabling controlled replication of classroom variables (e.g., class size, instructional style, behavioral interventions).

Studies indicate that VR-supported research designs can reduce traditional fieldwork costs by up to 75%, particularly by eliminating travel, accommodation, and physical infrastructure expenses. Moreover, simulated environments enhance experimental validity by isolating variables more precisely than real-world classrooms often permit.

Together, adaptive AI systems and VR ecosystems shift educational research toward high-frequency, scalable, and globally comparable data models.

2. Critical Challenges and Structural Risks

Despite transformative potential, AI integration introduces serious epistemological and equity concerns.

Cognitive Over-Reliance and Critical Thinking Risks

A 2026 report by NPR cautions that excessive reliance on AI tutoring tools may diminish higher-order thinking skills. When AI systems provide instant answers or scaffold reasoning too heavily, learners may engage in passive consumption rather than active cognitive struggle — a process essential for critical reasoning development.

This raises concerns about:

- Reduced metacognitive skill formation
- Algorithm-dependent problem solving
- Shallow conceptual retention

Researchers warn that without pedagogical safeguards, AI may optimize efficiency at the expense of intellectual autonomy.

Digital Divide and Exclusion

Structural inequities further complicate AI-driven research expansion. Data from the Telecom Regulatory Authority of India (TRAI) indicates that approximately 40% of rural India lacks reliable internet access.

- This connectivity gap has two major research implications:
- Underrepresentation of rural learners in AI-generated datasets
- Biased algorithmic training models skewed toward urban populations

As a result, AI-enhanced educational research risks reproducing existing inequalities by privileging digitally connected communities while marginalizing rural voices.

3. Indian Perspective: Local Innovation and Structural Constraints

India presents a nuanced case of rapid AI adoption alongside infrastructural limitations.

Edtech companies such as BYJU'S have incorporated AI-driven personalization engines to analyze learner performance across linguistic mediums, particularly Hindi-medium education. These systems:

- Adapt content complexity dynamically
- Identify subject-specific comprehension gaps
- Generate data for region-specific pedagogical research

This localized AI adaptation provides valuable insight into multilingual learning patterns — a domain often underrepresented in Western-centric educational research.

However, scalability challenges persist. Frequent power outages in semi-urban and rural regions disrupt synchronous learning models and data continuity. Infrastructural instability not only affects

student access but also compromises longitudinal data integrity, limiting the reliability of AI-based research conclusions.

Actionable Recommendations

- Mandate AI audits for bias using tools like Fairlearn, ensuring datasets represent India's linguistic diversity.
- Governments should subsidize internet in schools (target: 100% coverage by 2027) and train researchers in digital ethics.
- Foster hybrid models blending AI automation with human intuition for robust, culturally sensitive studies

Final Synthesis

The integration of artificial intelligence (AI) and internet technologies into educational research represents a structural transformation rather than a mere technological enhancement. Across global, U.S., and Indian contexts, AI-driven analytics, adaptive learning systems, and immersive virtual environments have expanded the scope, precision, and scalability of research methodologies. Longitudinal learner tracking, real-time behavioral analytics, and simulation-based experimentation now enable evidence generation at levels of granularity previously unattainable through traditional field-based approaches.

However, these advancements are accompanied by profound ethical and structural considerations. Without deliberate governance, AI systems risk reinforcing algorithmic bias, narrowing cognitive engagement, and amplifying existing digital divides. Disparities in connectivity—particularly in rural regions such as parts of India—highlight the uneven distribution of research participation and technological benefits. Ethical stewardship must therefore move beyond compliance-based data protection toward proactive frameworks emphasizing transparency, inclusivity, accountability, and equitable access.

Future research should prioritize longitudinal, multi-site trials across socioeconomically and linguistically diverse settings, especially in emerging economies. Context-sensitive experimentation in regions such as India can generate more representative datasets, strengthen global applicability, and mitigate Western-centric research biases. Additionally, interdisciplinary collaboration among technologists, educators, policymakers, and ethicists will be essential to align innovation with human-centered educational values.

Ultimately, AI and internet integration in education holds transformative promise—but its long-term legitimacy depends on balancing efficiency and innovation with equity and ethical responsibility.

References:

- Aiken, M., & Epstein, R. G. (2000). Ethical guidelines for AI research and education technology. *AI & Society, 14*(1), 45–59.
- Bozkurt, A., & Sharma, R. C. (2020). Emergency remote teaching in a time of global crisis. *Asian Journal of Distance Education, 15*(1), i–vi.
- Holmes, W., Bialik, M., & Fadel, C. (2019). *Artificial intelligence in education: Promises and implica-*

tions for teaching and learning. Center for Curriculum Redesign.
- Luckin, R., Holmes, W., Griffiths, M., & Forcier, L. B. (2016). *Intelligence unleashed: An argument for AI in education*. Pearson Education.
- Means, B., Toyama, Y., Murphy, R., Bakia, M., & Jones, K. (2010). *Evaluation of evidence-based practices in online learning: A meta-analysis and review of online learning studies*. U.S. Department of Education.
- OECD. (2021). *Digital education outlook 2021: Pushing the frontiers with AI, blockchain and robots*. OECD Publishing.
- Selwyn, N. (2019). *Should robots replace teachers? AI and the future of education*. Polity Press.
- Telecom Regulatory Authority of India. (2023). *The Indian telecom services performance indicators*. Government of India.
- UNESCO. (2021). *Recommendation on the ethics of artificial intelligence*. UNESCO Publishing.
- UNESCO. (2023). *Guidance for generative AI in education and research*. UNESCO Publishing.
- U.S. Department of Education, Office of Educational Technology. (2023). *Artificial intelligence and the future of teaching and learning: Insights and recommendations*. Washington, DC.
- Williamson, B., & Eynon, R. (2020). Historical threads, missing links, and future directions in AI in education. *Learning, Media and Technology, 45*(3), 223–235.
- Zawacki-Richter, O., Marín, V. I., Bond, M., & Gouverneur, F. (2019). Systematic review of research on AI applications in higher education. *International Journal of Educational Technology in Higher Education, 16*(39).

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

PARENTS REGARDING EMPOWERMENT OF CHILDREN WITH DISABILITY

Dr. Vikas Kumar
Research Director
(Assistant Professor)
Faculty of Education
Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

Purushottam Singh
Researcher
Faculty of Education
Tantia University,
Sri Ganganagar (Raj.)

The main purpose of this study is of parents regrading empowerment of children with disability is this study research scholar find that the study sample of 240 parents was equally distributed across four districts (60 per district) and between rural and urban areas (120 each). The respondent composition revealed a gender distribution of 58.3% mothers and 41.7% fathers, with mothers representing the primary caregivers in most families.

Key words : parents regrading, empowerment and disability.

Introduction :

Disability represents one of the most significant human diversity dimensions affecting individuals across all societies, cultures, and economic conditions worldwide. The contemporary understanding of disability, as articulated by the World Health Organization, recognizes that disability results from the interaction between health conditions such as dementia, blindness or spinal cord injury, and a range of environmental and personal factors (WHO, 2023). This perspective emphasizes that disability is not merely a health condition but emerges from the complex interplay between individual characteristics and societal structures, including physical barriers, attitudinal prejudices, and institutional discrimination.

The exclusion is particularly severe for children with certain types of disabilities. The report states that 50 per cent of children with mental disabilities have never attended any educational institution (Rural India Online, 2024). This finding highlights the need for specialized approaches and support systems for children with intellectual and developmental disabilities, who face additional barriers to educational participation.

Rationale and Significance of the Study :

The rationale for investigating parental awareness regarding empowerment of children with disabilities in Rajasthan is grounded in the convergence of several critical factors: the established importance of early identification and intervention for optimal developmental outcomes, the central

role of parents as primary caregivers and advocates throughout their children's lives, and the significant gaps in research literature that limit our understanding of how to effectively support families in developing countries contexts.

Statement of the Problem :

The empowerment of children with disabilities fundamentally depends on the awareness, knowledge, and advocacy capacity of their parents, yet significant gaps exist between available services and parental understanding, creating barriers to optimal child development outcomes and inclusive participation in society.

Objectives of the Study :

The current study primarily focused on the empowerment of children with disability in the geographical territory of Rajasthan. The study included the awareness and problems faced by the parents of such children. To achieve the goal of the current research work, it keeps the following objectives.

- To study the problems faced by parents during education of children with disabilities.
- To examine the challenges in early identification and intervention of children with disabilities.

Research Hypotheses :

In the current research work, following hypotheses are proposed and tested in the research work :

- There is no significant difference exists between rural and urban parents' problems.
- There is no significant difference in government scheme awareness between rural and urban parents.

Delimitations of the Study :

Geographical Limitation to Specific Districts in Rajasthan :

This study is deliberately limited to four specific districts in Rajasthan : Sri Ganganagar, Hanumangarh, Jodhpur, and Jaipur.

Mixed-Methods Approach :

The present study employed a mixed-methods research approach, which combines both quantitative and qualitative research methodologies within a single investigation.

Target Population :

The target population, also referred to as the universe of study, comprises the entire group of individuals or entities that meet the criteria of interest for a particular research investigation (Kumar, 2019). For the present study, the target population consisted of parents of children with disabilities who are enrolled in special education schools across the four selected districts of Rajasthan, Sri Ganganagar, Hanumangarh, Jodhpur, and Jaipur.

Sample :

The sample size for the present study was determined as 240 parents, based on a systematic calculation that considered both the research design requirements and practical implementation factors.

Research Instruments :

1. Parental Awareness Scale
2. Socio-Economic Status Scale
3. Interview Guide

Major Findings :

1. Demographic Profile and Sample Characteristics :

The study sample of 240 parents was equally distributed across four districts (60 per district) and between rural and urban areas (120 each). The respondent composition revealed a gender distribution of 58.3% mothers and 41.7% fathers, with mothers representing the primary caregivers in most families.

2. Early Identification and Intervention :

The research revealed concerning patterns in early identification and intervention access. While 80.0% of children were receiving some form of early intervention, the mean age at diagnosis was 2.8 ± 1.2 years, significantly later than the optimal identification period recommended by the American Academy of Pediatrics (2006), which advocates for screening by 18 months. Only 13.3% of children were diagnosed before age 2, with 18.3% not diagnosed until after age 4.

Discussion :

First, the rural-urban divide manifests across every dimension examined, awareness, service access, economic burden, social inclusion, and child outcomes. However, this divide is not simply geographic; it reflects intersecting disadvantages of education, income, infrastructure, and institutional presence. Rural families face what can be termed 'compounded marginalization,' where multiple disadvantages reinforce each other. Lower educational attainment leads to lower awareness and income, which limits service access, creating greater financial burden, which further constrains educational investment in children. This pattern aligns with Sen's (2004) capability approach, which emphasizes how deprivation in one capability (e.g., education) constrains development of others (e.g., health, economic well-being).

Implications of the Study :

This research makes several contributions to theoretical understanding of disability, empowerment, and service access in developing country contexts. First, the findings provide empirical support for intersectionality theory (Crenshaw, 1989) as applied to disability studies. The research demonstrates that disability does not operate in isolation but intersects with rural/urban location, educational attainment, economic status, and gender to create compounded disadvantages. The correlation patterns showing education, income, location, and awareness operating in concert suggest that single-axis analyses of disability miss critical interaction effects.

Recommendations :

Based on the research findings, conclusions, and implications discussed above, the following recommendations are proposed for various stakeholder groups :

- Establish a 'Rural Disability Mission' with dedicated funding, resources, and accountability mechanisms specifically targeting service delivery to rural areas. This mission should set explicit targets for reducing rural-urban disparities in awareness, intervention timing, therapy access, and scheme utilization, with annual public reporting of progress.
- Reform disability benefit delivery by implementing a 'One Card, All Benefits' system where a single disability identity card automatically enrolls children in all applicable schemes. Eliminate redundant applications, reduce documentation requirements to absolute minimum, and establish 60-day maximum processing times with penalties for delays.

Directions for Future Research :

The findings and limitations of this study suggest several promising directions for future research :

- Longitudinal Studies: Conduct longitudinal research tracking families from initial disability identification through childhood, documenting awareness development, service utilization patterns, and child developmental trajectories over time. Such research could establish causal relationships between awareness, intervention timing, and outcomes, while identifying critical transition points where additional support is needed.
- Intervention Effectiveness Research: Design and evaluate interventions addressing identified awareness gaps, particularly for rural and less-educated populations. Comparative effectiveness research could examine different awareness-building approaches (mass media campaigns, community health worker education, peer support groups, literacy programs) to identify most effective and cost-effective strategies.

Bibliography :

1. Agresti, A. (2007). An introduction to categorical data analysis (2nd ed.). John Wiley & Sons.
2. Ahuja, A., & Ibrahim, S. (2006). An assessment of inclusive education in India. Journal of International Development, 18(4), 427-447.
3. Alur, M. (2002). Invisible children : A study of policy exclusion. New Delhi: Viva Books.
4. Alur, M., & Timmons, V. (2009). Inclusive education across cultures. New Delhi : Sage Publications.
5. American Academy of Pediatrics. (2006). Identifying infants and young children with developmental disorders in the medical home : An algorithm for developmental surveillance and screening. Pediatrics, 118(1), 405-420.
6. Bailey, D. B., Hebbeler, K., Scarborough, A., Spiker, D., & Mallik, S. (2005). First experiences with early intervention : A national perspective. Pediatrics, 113(4), 887896.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना-दृष्टि और सांस्कृतिक चेतना

डॉ. लक्ष्मण
एस. एस. जे. कैंपस, अल्मोड़ा,
कुमाउं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
मो. 7388207624
ईमेल- lprajapati281@gmail.com

शोध सारांश

यह शोधपत्र रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना-दृष्टि तथा उनके सांस्कृतिक चिंतन का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। हिंदी आलोचना में उन्होंने साहित्य को केवल कलात्मक अभियक्ति नहीं माना, बल्कि उसे समाज, इतिहास और संस्कृति से गहरे रूप में जुड़ी मानवीय प्रक्रिया के रूप में देखा। उनकी आलोचना का आधार संवेदनशील भाषा-बोध, संतुलित मूल्य-दृष्टि और भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की गहरी समझ है।

चतुर्वेदी जी की विशेषता यह है कि वे परम्परा और आधुनिकता के बीच किसी एक का पक्ष नहीं लेते, बल्कि दोनों के सार्थक तत्त्वों को समन्वित करते हैं। उनके लिए सांस्कृतिक चेतना अतीत के गौरववान तक सीमित नहीं, बल्कि वर्तमान सन्दर्भों में मानवीय मूल्यों की पहचान और पुनर्स्थापन का प्रयास है।

बीज शब्द : सांस्कृतिक चेतना, हिंदी आलोचना, रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय काव्यशास्त्र, मूल्यपरक आलोचना, आलोचनात्मक पद्धति, तुलनात्मक आलोचना, परम्परा और आधुनिकता, आलोचनात्मक पद्धति, भाषा-संवेदना, भाषिक सर्जनात्मकता, नयी समीक्षा।

मुख्य शोध

रामस्वरूप चतुर्वेदी महत्त्वपूर्ण आलोचकों में से एक हैं। अपनी दर्जन भर से ऊपर की आलोचना कृतियों से उन्होंने हिंदी आलोचना को समृद्ध किया है। प्रायः ऐसा होता है कि किसी आलोचक को कोई अमुक कवि, कहानीकार, उपन्यासकार (चाहे वह किसी भी भाषा का हो) प्रिय होता है। इस प्रिय होने की कई खास वजहें भी होती हैं। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी हिंदी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को अपना आदर्श मानते हैं और उन्हीं के पद चिह्नों पर दूर तक चलते हुए दिखाई देते हैं। काव्य के क्षेत्र में रामस्वरूप चतुर्वेदी 'अज्ञेय' को अपना प्रिय कवि मानते हैं।

रामस्वरूप चतुर्वेदी आलोचक और इतिहासकार दोनों एक साथ हैं। उन्होंने 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' नाम से हिंदी साहित्य का इतिहास भी लिखा है। 'आदिकाल' से लेकर 'आधुनिक काल' तक की संवेदनाओं का उन्होंने बहुत सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण ढंग से विवेचन किया है। यह अलग बात है कि उन्होंने अपने इतिहास में आधुनिक काल को ज्यादा

महत्त्व दिया है। जिसमें दो चीजें आधार रूप में दिखती हैं– पहली अज्ञेय, निराला और प्रसाद उनकी चिंता के केन्द्र में हैं। उसमें भी 'अज्ञेय' उनके ज्यादा प्रिय हैं। दूसरी बात रामस्वरूप चतुर्वेदी नयी कविता, नयी समीक्षा, नई कहानी की उपज हैं। हो सकता है उक्त दोनों बातों की वजह से रामस्वरूप चतुर्वेदी अपने इतिहास में आधुनिक काल को ज्यादा महत्त्व देते हैं। यहां एक और बात ध्यान में आती है कि रामस्वरूप चतुर्वेदी जी आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास को अपने चिंतन के केन्द्र में रखते हैं और जहां रामचंद्र शुक्ल 'छायावाद' तक ही (जो कि उनका समय भी था।) लिखते हैं, वहीं आगे के इतिहास लेखन के लिए रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रतिबद्ध होते हैं और उन्होंने अपने ढंग से आधुनिक काल पर विचार किया है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा को महत्त्व देने वाले आलोचक हैं। चूंकि वे आधुनिक साहित्य व आधुनिक समय के आलोचक हैं। वे लिखते हैं–

''आज की कविता को जांचने के लिए जो अब सचमुच 'प्रास के रजत पाश' से मुक्त हो चुकी है, काव्य भाषा का प्रतिमान ही शेष रह जाता है, क्योंकि कविता के संघटन में भाषा-प्रयोग की मूल और केन्द्रीय स्थिति है।''[1]

हिंदी आलोचना को विश्व स्तर पर ले जाकर खड़ा कर देने का काम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कर दिया था। अब आचार्य रामचंद्र शुक्ल से प्रभावित और टकराए या असहमति बिना हिंदी आलोचना का परिसर व उसके संरक्षक आगे नहीं बढ़ सकते थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'भाषा' को लेकर बहुत ही सचेत आलोचक थे। उनका संपूर्ण साहित्येतिहास व निबंध इसका प्रमाण है। साहित्य का इतिहास लिखने से पहले आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'भाषा' पर लगातार लिख रहे थे। चूंकि रामस्वरूप चतुर्वेदी एक तरफ तो आचार्य शुक्ल से गहरे प्रभावित थे तो दूसरी तरफ नयी समीक्षा, नयी कविता से भी गहरे प्रभावित थे। जिस वजह से वे भाषा को लेकर बहुत संयमित दिखते हैं।

रामस्वरूप चतुर्वेदी मूलतः कविता के आलोचक हैं। चतुर्वेदी जी के प्रिय आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी मूलतः कविता के ही आलोचक हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी रचना- सर्जना को मूलतः भाषिक संरचना के रूप में ही देखते हैं और यहीं से वे रामचंद्र शुक्ल से आगे या अलग ढंग से दिखाई देते हैं। यह अलग बात है कि भाषिक संरचना में पश्चिम के रूपवाद, शैली विज्ञान की भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ दिखती हैं या दिखने की सम्भावना बनी रहती है। प्रसिद्ध कथाकार दूधनाथ सिंह रामस्वरूप चतुर्वेदी के बारे में लिखते हैं–

''वे आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद दूसरे आलोचक हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने की कठिन चुनौती स्वीकार की और 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' लिखकर दिखा दिया। इस इतिहास में आधुनिक काल पर अधिक बल है, जिसके वे मास्टर आलोचक हैं। उन्होंने आधुनिक काल को ही अपनी आलोचना के लिए चुना और उसमें भी आश्चर्यजनक रूप से कविता को।''[2]

रामस्वरूप चतुर्वेदी रचना को उसके युग संवेदना के आइने में भाषा की कसौटी पर कसकर देखने वाले आलोचक हैं। वे रचना को पहले से बने बनाए किसी प्रतिमान पर देखने की या उसके विवेचन की निन्दा करते हैं। वे रचना को स्वतंत्र एवं भाषा व युग-संवदेना की कसौटी पर कसकर देखते हैं–

''किसी भी रचना के लिए कोई भी पूर्व निर्धारित मानदण्ड नहीं होना चाहिए। हृदय जब मुक्तावस्था में होगा, रचना भी मुक्त होगी, तो आलोचना जो अपेक्षाकृत बहुत बाद में विकसित हुई, वृद्धावस्था में नहीं रह सकती।''[3]

पर कविता के विवेचन में रामस्वरूप चतुर्वेदी भी 'अज्ञेय' की कविताओं को सूक्ष्म ढंग से पढ़-लिखकर के उसी आधार पर जैसे कविता का प्रतिमान विकसित करते हुए दिखाई देते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी का आलोचना साहित्य आदि से अंत तक 'भाषा और संवेदना' के सूक्ष्म और मौलिक आयुध से विश्लेषित होता दिखाई देता है। उन्होंने अपनी आलोचना कृतियों से हिंदी आलोचना को दूर तक समृद्ध किया है–

"चतुर्वेदी जी आधुनिक समीक्षक हैं, आधुनिकतावादी भी इस अर्थ में हैं कि आधुनिक रचना की समस्या को ही उन्होंने मुख्यतः अपनी आलोचना-प्रक्रिया के केंद्र में रखा है।"[4]

हिंदी आलोचना-साहित्य में प्रगतिवादी कवियों और नयी समीक्षा के कवि-आलोचकों के बीच भिन्नता रही है। हिंदी

के प्रगतिवादी कवियों और आलोचकों पर कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों का गहरा प्रभाव था। भारत ही नहीं पूरा विश्व लगभग प्रभावित था। प्रयोगवाद, नयी कविता पर भी पश्चिम का प्रभाव था। इस प्रभाव के पीछे अस्तित्ववाद था। चूंकि प्रगतिवादी कवि और आलोचक समाज की सामूहिकता में विश्वास करते थे। इनकी भाषा जनसाधारण के बीच की भाषा थी। इस विचारधारा के कवियों और आलोचकों को अपनी बात जनता तक पहुंचानी थी। जिसके लिए जनता की भाषा अनिवार्य थी। एक प्रकार से प्रगतिवादी कवि और आलोचक दोनों समाज को दो वर्गों में बांटकर 'शोषक और शोषित' के रूप में देखते थे। पूरी कविता और आलोचना एक प्रकार से विचारधारा के अधीन हो गई। नयी समीक्षा के आलोचकों ने प्रगतिवादी साहित्य को विचारधारा का गुलाम माना। एक प्रकार से उपनिवेशवादी माना। चूंकि नयी कविता के कवियों और नये समीक्षकों ने रचना में निजता के सुरक्षा की बात की। एक प्रकार से रचना के कला तत्त्व की बात की। भाषा की बात की। प्रयोगवादी कवियों और नये समीक्षकों ने समाज की अपेक्षा रचना में व्यक्ति के व्यक्तित्व की तलाश की। रचना की स्वायत्ता की खोज की। रचना में कला की स्वाधीनता की वकालत की। इस तरह की बातों का समर्थन नई समीक्षा के बड़े आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने भी की। रामस्वरूप चतुर्वेदी रचना में भाषिक संरचना और संवेदना की सूक्ष्म कड़ियों को केन्द्र में रखते हैं। नयी समीक्षा रचना को भाषिक संरचना मानती है, उनके अनुसार साहित्य अंततः भाषिक संरचना मात्र ही है। आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी जी जब लिखते हैं–

''आज की कविता को जांचने के लिए, जो अब सचमुच 'प्रास के रजतपाश' से मुक्त हो चुकी है, अलंकारों की उपयोगिता अस्वीकार कर चुकी है और छंदों की पायलें उतार चुकी है, काव्य-भाषा का प्रतिमान ही शेष रह गया है, क्योंकि कविता के संगठन में भाषा प्रयोग की मूल और केन्द्रीय स्थिति है।''[5]

इस प्रकार आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी जी द्वारा यह कहना कि 'काव्य-भाषा का प्रतिमान ही शेष रह गया है' यह नयी समीक्षा के भाषिक-संरचना वाले का कान्सेप्ट को ही दर्शाता है। चूंकि इस तरह के आलोचक रचना मे समाज की उपेक्षा करते हैं और रचना को भाषिक संरचना मानकर चलते हैं। इसी कोटेशन में आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी जी कहते हैं 'कविता के संगठन में भाषा प्रयोग की मूल और केन्द्रीय स्थिति है' इससे स्पष्ट बोध होता है कि रामस्वरूप चतुर्वेदी जी अब यह मानकर चल रहे हैं कि यह समय रचना या आलोचना में विचारधारा विशेष (मार्क्सवादी विचार) का समय नहीं है। यह समय रचना की स्वायत्ता का है। रचना के निर्माण में भाषा का है। भाषा और संवेदना को लेकर रामस्वरूप चतुर्वेदी जी लम्बे समय तक रचना का चिंतन-मनन करते रहे हैं। इस तरह उन्होंने 'भाषा और संवेदना, सर्जन और भाषिक संरचना, काव्य भाषा पर तीन निबंध- भाषा, संवेदना और सर्जन जैसी कृतियों का निर्माण किया–

"आरंभिक संवेदनों और सहज वृत्तियों पर निर्भरता से ऊपर उठा वयस्क मनुष्य भाषा में अपनी चेतना को सदैव सक्रीय पाता, यहाँ तक कि सपने में भी उससे छुटकारा नहीं। तब क्या हम यह नहीं कह सकते कि मनुष्य भाषा में जीता है, जीने का अनुभव करता है और जब तक और जिस सीमा तक भाषा नहीं बनी थी तब तक और उस सीमा तक मनुष्य पशु ही था।"[6]

आलोचकों की परंपरा में एक दिलचस्प बात देखने को मिलती है कि सभी महत्त्वपूर्ण आलोचकों के अपने प्रतिमान हुआ करते हैं। इन्हीं प्रतिमानों के आधार पर वे सभी रचनाओं और रचनाकारों का मूल्यांकन किया करते हैं। पश्चिम में आलोचक जॉन ड्राइडन ने जॉन मिल्टन और विलियम वड्र्सवर्थ की रचनाओं को पढ़कर, उनसे निष्कर्ष निकालकर अपनी आलोचना के प्रतिमान का निर्माण किया। हिंदी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने गोस्वामी तुलसीदास को पढ़कर-गुनकर अपने आलोचकीय प्रतिमान का निर्माण किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने कबीरदास को केन्द्र में रखकर अपने आलोचकीय प्रतिमान का निर्माण किया। रामविलास शर्मा जी ने सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को अपने अध्ययन का विषय चुना और डॉ० नामवर सिंह ने गजानन माधव 'मुक्तिबोध' को अपने आलोचकीय प्रतिमान के केन्द्र मे रखा। वहीं प्रो० मैनेजर पाण्डेय ने बाबा नागार्जुन को केन्द्रीयता प्रदान की। आलोचक विजयदेव नारायण साही जी मलिक मुहम्मद जायसी पर लिखते हैं। वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी जी के चिंतन के केन्द्र में प्रसाद, निराला और अज्ञेय हैं। जिसमें केन्द्रीयता अज्ञेय जी को प्राप्त

है। सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी कविता में अलग भाषा, बिंब, लय का सृजन करते हैं। अज्ञेय जी 'मौन' की भाषा तलाश करते हैं। इसीलिए आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी जी भाषा के चिंतन को लेकर इतने गंभीर दिखाई देते हैं। उनका संपूर्ण आलोचना-चिंतन भाषा और संवेदना को लेकर चलता हुआ दिखाई देता है। उनकी बेहद महत्त्वपूर्ण साहित्येतिहास की पुस्तक 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' के शीर्षक में भी संवेदना का जिक्र है और संपूर्ण पुस्तक भी लेखक की मूल संवेदना को ही प्रतिपादित करती है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि जैसे प्रभृति आलोचक विद्वान भारतीय-परंपरा और विचारधारा की तलाश करने वाले आलोचक हैं। इस प्रकार के आलोचकों ने विदेशी विचारधारा का विरोध किया। ऐसे साहित्यकारों के अनुसार विदेशी विचार, संस्कृति, परंपरा अंततः विदेशी ही है। इन्हें स्वीकारने का अर्थ है कि हम पराधीनता को स्वीकार कर रहे हैं। इसीलिए इस प्रकार के आलोचकों ने, जिसमें रामस्वरूप चतुर्वेदी भी शामिल हैं, प्रगतिवादी विचारधारा की परंपरा और दर्शन का साहित्य में विरोध किया। इनके अनुसार प्रगतिवादी या मार्क्सवादी जीवन-दर्शन, साहित्य, विचार पद्धति अंततः बाहरी है। और इस पद्धति के अनुसार हम भारतीय संस्कृति, परंपरा और समाज का ठीक-ठीक विश्लेषण नहीं कर सकते हैं। इसीलिए इन आलोचकों ने प्रगतिवादी काव्यान्दोलन को विदेश की नकल मानकर उसकी उपेक्षा की है। उनकी दृष्टि में प्रगतिवाद की जड़े भारत में नहीं हैं। वास्तव में आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी- जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' को लेकर आधुनिक हिंदी कविता का विकास-क्रम देखते हैं। उनकी दृष्टि में ये ही आधुनिक हिंदी कविता के तीन शीर्ष बिन्दु हैं। उनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक ही है— 'प्रसाद-निराला-अज्ञेय'। आधुनिकता के तत्त्वों को गिनाते हुए वह अपने प्रिय कवि को केन्द्रीयता प्रदान करते हैं—

"विशिष्ट अर्थ में आधुनिक रचना के जो तत्त्व समझे जाते हैं— स्वचेतना, बौद्धिकता, गैर रोमांटिक वृत्ति और भाषिक सर्जनात्मकता पर बल, जिसके फलस्वरूप मितकथन और अमूर्तन का विकास होता है— इनका आरंभिक विकास हमें अधिकतर अज्ञेय के कृतित्व में मिलता है।"[7]

वस्तुतः आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी जी उन्हीं कवियों-लेखकों पर विचार करते हैं जो विचारधारा में अपने लेखन में भारतीय परंपरा का संवहन करते हैं। जैसा कि स्पष्ट है कवि जयशंकर प्रसाद जी ने 'मनु' को आधार बनाकर 'कामायनी' लिखी और निराला जी ने 'राम' को आधार बनाकर 'राम की शक्ति पूजा' लिखी। रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना-दृष्टि साहित्य को सांस्कृतिक आत्मचेतना से जोड़ती है। उन्होंने परम्परा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करते हुए काव्य-भाषा को केन्द्रीय प्रतिमान माना। उनकी दृष्टि में आलोचना मानवीय मूल्यों की पुनर्पहचान और समय-सापेक्ष संवेदना का सृजनात्मक विवेचन है।

सन्दर्भ

1. हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 290
2. वही, पृ० 290
3. वही, पृ० 290
4. हिंदी आलोचना : दृष्टि और प्रवृत्तियां, मनोज पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ- 140
5. हिंदी आलोचना : समकालीन परिदृश्य, कृष्णदत्त पालीवाल, सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 102
6. हिंदी आलोचना : दृष्टि और प्रवृत्तियां, मनोज पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ- 142
7. वही, पृष्ठ- 144

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

A STUDY OF CAREER DECISION-MAKING SKILL AMONG SECONDARY SCHOOL STUDENTS IN RELATION TO THEIR GENDER AND TYPE OF SCHOOL

Pragya Chaubey
Dr. Tanuja Melkani

Abstract

This study is a quantitative study to analyse the career decision making skill among secondary school students in relation to their gender and type of school they are studying. This is the stage where ideally career seriousness is valued, stream inclination is visible and path directed according to vocational interest so career decidedness of students is weighed. Stratified random sampling technique has been applied to collect the 480 secondary students as representatives of population from same ratio of government and private schools of Udham Singh Nagar district of Uttrakhand. Statistical techniques as mean, SD and t-test has been used to analyse the data. The tool of Career decision making skill has been used to point the decided or undecided dimensions of decision making. The finding revealed that Girls have better career decision making skill than their counterparts while there found no significant difference between career decidedness of government and private school students. The stakeholders must ensure the clarity in career decision making among secondary students by communicating them about the career opportunities aligning with their interest and skill and most important believing in them.

Keywords: career decision making skill, career decidedness, career choice, secondary students, gender, vocational interest.

INTRODUCTION

Education is the most powerful tool in this world that mould a person to fix the problem or any chaos in the way of life, it enlighten the direction towards a meaningful life and transform human in a responsible creature. It develops various skills in a person that become very helpful in ones growth in many phases of life from childhood, adolescence, adulthood to the last breath of life. The life of human being is loaded with many inherent processes which is conveyed in a very familiar way. Decision making is that type of inherent and ongoing process of an individual's life. Decision making is the picking up one suitable choice from numerous options which fits according to the need, interest, objectives and goal of life. It starts from very early stage and continues further. Gelatt (1989)

defined "decision - making framework assumes a decision maker who requires information to produce a recommended course of action, which may be terminal or investigatory depending upon how it relates to the decision maker's purposes." Sampson, Reardon, Peterson and Lenz (2004) defined "decision making is problem solving along with the cognitive and affective processes needed to develop a plan for implementing the solution and taking risks involved in following through to complete the plan."

It is very crucial to understand the process of decision making. Decision making is not a straight process, where an individual dispenses choices when and where they are aspired. Rather, it is a twisted, untackled and halting flow of interactions between people; interaction that shift constantly from a rational to a heuristic mode and vice-versa. Decision making ability means to decide and to arrive at some conclusion. According to Perrone (1972), "A decision is an appropriate response of an intelligent being to a situation which demands action". Decision making may be defined as the thought process of selecting a logical choice from the available options. While making a good decision, a person must pay attention to all the pros and cons of each option, and consider all the alternatives. For effective decision making, a person must be able to forecast the outcome of each option. Based on all these options, a person determines the suitable option for a particular situation. The ability to choose the appropriate option, in a problematic situation, is a matter of decision making.

Since very initial stage children are often asked about what they want to become after completion of their study or when they be changed into adults but that is fantasy only at this stage because it changes quickly and timely. Actual career decision making starts from the secondary school stage. Students think about their career choices, the stream to opt in next classes that is senior secondary class. This is the step where children are able to know about their interests, needs, skills as well as their strength and weaknesses, attitude and aptitude. Career decision making is a process that explains the choices that a person makes when selecting a particular career. It is a complex process that has personal, environmental, psychological and philosophical aspects to it. It helps to identify individual differences and various factors involved in an individual's career decision making. It also provides good understanding on the way these factors influence his/her career decisions and choices.

Career decision is among the most important decisions one has to make during adolescence. Passing through Adolescence is a complex process in itself. This is the phase in which a teenager consider himself or herself as a mature person while others as parents and guardians treat them as they have done before as children. They punctuate teenagers at each step of their own decisions. According to E. A. Kilpatrick "Adolescence is the most difficult period of life" while Stanley Hall has mentioned in his book 'Adolescence', "Adolescence is a period of great Stress and Storm, Storm and Strife". It is a transitional stage of physical and psychological development that generally occurs during period from puberty to legal adult hood that's age from 13-18 or 19 years. The starting age of adolescent are secondary school students who face all the bounce of these changes simultaneously. Making a career decision is a complex task. Choosing a career does not begin with the selection of the career itself, but first with an understanding of oneself in relation to work, and then with finding a career at which one could excel.

Career not only provides earning but also other things, it actually defines a person making career a crucial and important part of one's life.

STEPS OF CAREER DECISION MAKING

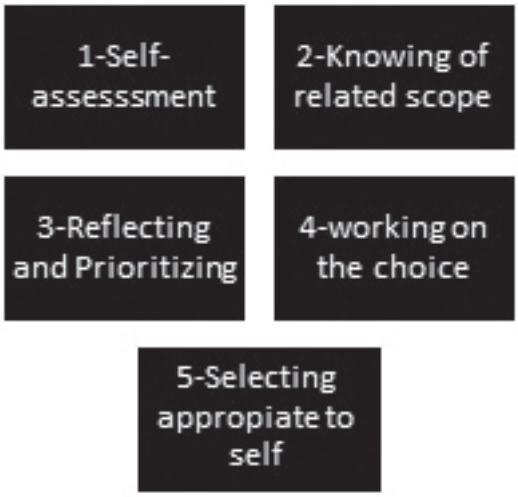

Categories of Career Decision Making—

Decided - The career decided or decisiveness refers to an individual's firmness about his/her career. An individual who is convinced to make a decision about his/her career can be termed as career decided. The dictionary meaning of decided is definite where there is no doubt about the choice.

Undecided - An undecided person is he/she who is not yet determined or confirmed or not having reached a decision. It reflects any hindrance in career decision making process.

Gender is a Social Construct as boy, girl or transgender while sex is a biological identity as male, female or others. The concept of gender includes the characteristic, aptitudes and likely behaviours of both women and men. UNICEF (2017) defined Gender as "A social and cultural construct, which distinguishes differences in attributes of men and women, girls and boys, and accordingly refers to the roles and responsibilities of men and women. Gender-based roles and other attributes, therefore, change over time and vary different cultural contexts. Earlier this century, careers were seen to be a journey which can be undertaken only by men while women were more socialized to see their role as homemakers. However, the scenario has been changed with the change of social structure and with the demand of time. Today, women are also career oriented and pursue careers just like their male counterpart. Vigorous debates have been presented on the issue of meaning, causes and implications of gender related differences in relation to career decision making. Gender has been accepted as most powerful predictor of career decision making. The change in the mind-sets of people has led to equal career opportunities for woman. Since, women are considered as weaker section in Indian society, Government has been constantly trying to uplift the status of women and it seems to have gained momentum in the past few decades. Education has been always worked for the declining the discrimination between genders. It tries to strengthen enough to forbid and break this stereotype to bring the equality in society and it starts from the schools.

Time to time Indian Government takes crucial initiatives towards education and empowerment of girls and women. Beti Bachao, Beti Padhao, special scholarship to girls, special provisions of the employment, reservation for single Girl child are the examples of the efforts. According to NEP 2020, a **separate Gender Inclusion Fund** will be created as Special Education Zones for disadvantaged regions and group.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY-

Education very strongly associates with one's identity formation. An individual is going through the process of making decision about his future career at several stages, but the secondary school stage may be start point in many students' life. Career is a predictor and determinant of level of income as well as a mark of personality and outlook of an individual. Career selection is becoming more and more complex due to the mediating factors and diversified options due to technological changes and the era of AI. These factors are the determinants in career of a student. Making right decisions in the right time is crucial in the success of one's life. The most important decision during adolescence is on future education and career. While lakhs of students live in confusion and find it difficult to make their career decisions, this study analyse the existing skill of career decision making and highlighting the status of this skill among secondary school students as issue is pertinent.

As secondary education works as bridge between Primary education and Higher Education. This is the level of education in which students balance with various developing dimensions whether it is physical changes, psychological or social changes.

REVIEW OF THE LITERATURE

Jyothis (2021) developed A Career Guidance Package for enhancing Career Decision Making self-efficacy among higher secondary school Students. A sample of 1006 Higher Secondary school students were taken by survey method in Kerala as well as 190 students out of them participated in the experiments. The Career awareness Test (Jyothis & Rosa, 2015), CDMSE scale (Jyothis & Rosa,2015), interview schedule (2016) and CG Evaluation proforma used for various measurements. Result found that girls have higher career awareness as well as higher career decision making self-efficacy than boys and in terms of type of school students from Government higher secondary schools have higher career awareness than private school students.

Kaur (2020) studied the Career Decision Making skill among adolescents in relation to gender, locale, parenting style and self-concept. A sample of 800 state government school students from Mohali district of Punjab state is taken for study by random sampling technique. The CDMS scale (Singh, 2014), Parenting Style (Kaur self (2020) and Children's Self-concept (Ahluwalia and Singh (2014) has been used for collection of data. The results reveal that Gender has no any role in decision of career while urban students are more decided than rural students. Authoritative parenting style is more career decided than authoritarian and permissive parenting style and high self-concept are more decided than average and low self-concept.

Rashmi (2019) examined The Career maturity in relation to Emotional maturity, Decision Making Ability and Self-efficacy of senior secondary school students in Dehradun district. 375 boys and 375 girls were selected through multistage stratified random sampling technique. Career maturity Inventory (Gupta), Emotional Maturity Scale (Bhargava & Singh), Self-Efficacy scale (Singh & Narain),

DMAS by self were used for collection and measuring. The result revealed that majority of Senior Secondary students have low and average level of attitude and competence for career maturity. Female senior secondary school students have better Career Maturity than the Male counterparts.

Kaur (2019) studied The Role of Emotional Intelligence in Career Decision Making of Senior Secondary School Students on the basis of Gender and Type of school. 200 secondary school students from government and private co-ed schools of Bhatinda were chosen by convenient and random sampling technique. Emotional intelligence Scale (Hyde, Pethe & Dhar, 2017) and CDMS (Singh, 1999) were used for collection of data. No significant difference Founded in Emotional Intelligence between girls and boys senior secondary school students.

Rao (2017) studied the Psychosocial Factors in Career decision making in Adolescents. 548 participants of XII standard from Government and Private Colleges are examined by using Socio demographic datasheet, Career Maturity Inventory, Parental Authority Questionnaire, Neo five factor Inventory and Metacognitive Inventory were used to measure various variables. The result shows that both individuals' External and Contextual factors influence Career choice in Adolescents.

Sharma (2014) examined role of career decision making in the development of academic stress among adolescents. 360 adolescents were selected as sample for the study by with stratified random sampling technique. Career decision Making Inventory was used to measure the career decision making of 14-17 years adolescents. Results of the study showed that the boys and girls significantly differed only on career decidedness dimension of career decision making.

Career planning though important is seen to be lacking in adolescents. This was reported by Millward et al. (2006). The career planning needs of senior high school students in Canada was explored by Witko, Bernes, Magnusson, and Bardick (2005). They surveyed 2941 students from 52 schools. Quantitative and qualitative analyses were done. The results reveal that majority of the participants viewed career planning as an important task for them. They also reported that they would approach parents mostly for help in this regard followed by relatives, friends, counsellors, and then teachers. The participants stressed the need for better career counselling services. The researchers have suggested exploration of the influence of cultural and psychosocial factors on career planning in adolescents.

Gender differences in career decision-making difficulties using the Career Decision Difficulties Questionnaire was investigated in a sample of 347 Australian high school students (Albion, 2000). Career decidedness was comparable between boys and girls in the sample. Career knowledge was higher in boys, while flexibility 30 regarding careers and motivation was seen to be higher in girls in this sample. He suggested girls were more motivated and more flexible with regards to career. Future reflected that students at single gender schools were more undecided than students from co-educational schools.

Patton and Creed (2001) found that girls have higher indecision scores than boys. The literature related to career decision making and gender presents contradictory views. So, there is need to investigate if career decision making is gender free or influenced by gender.

OBJECTIVES OF THE STUDY

- To study the Career Decision Making Skill among senior secondary school students.

- To compare Career Decision Making Skill in Secondary School Students in relation to their Gender.
- To compare Career Decision Making Skill among Secondary School Students in relation to the Type of School enrolled.
- To compare the Career Decision Making Skill of Government Schools Boy-students and Girl-students.
- To compare the Career Decision Making Skill of Private Schools boy-students and Girl-students.

OPERATIONAL DEFINITION OF THE TERMS

Decision making-It is a systematic process which is processed through the steps of necessity or need of the decision, availability of numerous choices, complexity in options, analysis of options, confidence and knowledge application and reaching to best point and confirm.

Career decision making –Career decision making drawing out the best for future occupation which matches with one own skill, interests, calibrate, attitude, aptitude with the help of prediction of scope of option.

Gender

In this study, Gender means to Male and female students studying in 10th standard in Government Schools or Private Schools considered as gender for the present study.

Secondary Schools

In current Indian education system Secondary School is the school which provide education next to Primary Education up to secondary education. In these schools generally 6^{th} onward till 10^{th} standard education is provided.

Secondary School Students

Secondary School Students means to all the girl and boy students studying in Tenth(X) Standard in Government and Private Schools. The students who are about to appear in coming Board examination for their future creation.

DELIMITATION OF THE STUDY

- The present study is limited to 480 Secondary School Students.
- Only 10^{th} Standard Students are considered as Secondary School Students depending on the availability of Tool.
- The present study is delimited to Udham Singh Nagar, District (Uttarakhand) from which 12 Co-educational Secondary Schools are drawn out for sample.
- The study is confined to only two variables Gender (girls and boys) and Type of School (government and private co-ed schools).
- The focus of the study is only to assess the career decision making skill among the students.

METHODS

This chapter describes the methodological framework applied to study to make it systematic, comprehendible and logical which includes research design, sampling strategy, tool as well as procedure to be followed .

Research Design

The study is quantitative in nature so descriptive method of research design is suitable for the study.

Sampling Technique and sample size

The study employed a stratified random sampling technique. Total 480 students studying in class 10^{th} are chosen as sample. There are 240 students are from government school and 240 students are from private school.

S. No.	Name of the School	Girls	Boys	Total
1.	Government secondary students	120	120	240
2.	Private secondary school students	120	120	240
	Total no. of students	240	240	480

Tool used:

In this study Career Decision Making Scale developed by Dr. Kirandeep Singh (Chandigarh) has been used for collection of data. Career Decision Making Scale (CDMS-KS) was constructed and standardized by Dr. Kirandeep Singh, Department of Education, Punjab University, Chandigarh. The scale was published in its revised version by National Psychological Corporation, Agra in 2014.

Dimensions of the scale

CDMS contains 18 items which comprises two sub scales career decidedness scale from Item 1-5 and career Indecision Scale from Item 6-18. This scale was developed for X, XI, XII class students. The CDMS was developed on Likert Scale in which responses are to be given on 3 point scale i.e.

1. Exactly Like Me 2. Somewhat Like Me 3. Not at All Like Me

DATA ANALYSIS AND INTERPRETATION:

The data is interpretated as follows in tables below:

Objective 1: To compare Career Decision Making Skill in Secondary School Students in relation to their Gender.

Hypothesis 1: There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Girls and Boys of Secondary Schools.

Table showing significant of mean of Career Decision Making skill of Girl and Boy students of secondary schools.

Variables	Mean	S.D.	T Value	level	df	Result
Girls	36.5	4.59	2.74	0.05	478	Significantly
Boys	34.44	3.67				different*

Table: 1

It is revealed from the table 1 that the mean scores of Girls and Boys of secondary schools in relation to Career Decision Making Skill are 36.5 and 34.44 with S.D. 4.59 and 3.67 respectively. The t-value came out from above group is 2.74 which is significantly different at 0.05 level. This means that there is significant difference between Career Decision Making skill of girl and boy secondary school students thus the hypothesis H0 1- "There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Girls and Boys of Secondary schools" is rejected.

*The mean scores of Girls of secondary school is higher than the boys of secondary school, it shows that Girls have better career decision making skill than their counterparts. It may be due the biological factors between them. The science says that girls become mature early in comparison to boys.

Objective 2: To compare Career Decision Making Skill among Secondary School Students in relation to the Type of School enrolled.

Hypothesis 2: There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Government Secondary School Students and Private Secondary School Students.

Table showing significant of mean of career decision making skill of Government and Private Secondary School students.

Variables	Mean	S.D.	T Value	level	df	Result
Government school students	35.52	3.7	0.13	0.05	478	Not significant
Private school students	35.44	4.8				

Table 2

It is revealed from table 2 that the mean scores of Government secondary school students and Private secondary school students are 35.52 and 35.44 with S.D.s 3.7 and 4.8 respectively. The t-ratio came out from above two group is 0.13 which is not significant at 0.05 level of significance. This means there is no significant difference between career decision making skill of Government and Private secondary school students thus the hypothesis h0 2: "There is no significant difference between the career decision making skill of Government secondary school students and Private secondary school students" is accepted.

Objective 3: To compare the Career Decision Making Skill of Government Schools Boy-students and Girl-students.

Hypothesis 3: There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Girl students and Boy students of Government Schools.

Table showing significance of mean of girl students and boy students of Government schools.

Variables	Mean	S.D.	T Value	level	df	Result
Govt. girl students	36.4	3.98	0.44	0.05	238	Not significant
Govt. boy students	34.64	3.22				

Table 3

The table shows that the mean scores of Girl students and Boy students are 36.4 and 34.64 with the S.D.s 3.98 and 3.22 respectively. The t-value came out 0.44 from above groups which is not significant at .05 level of significance. This means there is no significant difference between Career decision making skill of girls and boys of secondary schools. Thus, the hypothesis H0 3: "There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Girl students and Boy students of Secondary schools" is accepted.

Objective 4: To compare the Career Decision Making Skill of Private Schools boy-students and Girl-students.

Hypothesis 4: There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Girl students and Boy students of Private Schools.

Table showing significance of mean of Girl students and Boy students of Private schools.

Variables	Mean	S.D.	T Value	level	df	Result
Private girl students	36.6	5.19	1.95	0.05	238	Not significant
Private boy students	34.24	4.12				

Table 4

The reveal is that the mean scores of girl students and boy students of Private schools are 36.6 and 34.24 with standard deviations 5.19 and 4.12 respectively. The t-value came out from above two groups is 1.95 which is not significant at 0.05 level of significance. It means that there is no significant difference between career decision making of girls and boys of secondary schools. Thus, the hypothesis H0 4: "There is no significant difference between Career Decision Making Skill of Girl students and Boy students of Private Schools" is accepted.

FINDINGS AND CONCLUSIONS:

The main findings are listed below:

1. There is significant difference between career decision making skill of girls and boys of secondary classes.

2. There is no significant differences between career decision making skill of Government secondary

school students and Private secondary school students.

3. There is no significant difference between career decision making skill of girl and boy students of Government secondary schools.

4. There is no significant difference between career decision making skill of girl and boy students of Private secondary schools.

CONCLUSION:

It has been concluded that boys and girls of Secondary School differ significantly in their career decision making skill. The findings revealed that girls of Secondary School show better career decision making skill as compared to boy students and this might be due to the reason that girls become mature early because of their biological nature while boys a little later. Girls found confident about their decisions, they are more skilful of how to implement their choices than boy students It may be concluded that the Career decision making Skill of government and private secondary school students do not differ significantly. Type of schools has no any effect on students of secondary schools in Career Decision Making Skill.

Further study revealed that the career decision making of girls and boys of government secondary schools do not differ significantly as well as result also showed that girls and boys of Private secondary schools do not differ significantly. The possible reason for change in the outlook of parents, availability of e-resources at residential places and updatation in educational system which provides guidance and counselling services along with curriculum to both the gender equally may be the cause for no significant difference.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

- School administrators must ensure the implementation of various plans made by the government associated with career decision making skill among secondary school students. Programmes on parental counselling, educational fairs and career campaigns should be arranged from time to time.
- Government and school administrators should take various measures to provide guidance and counselling to students at various stages of their lives by organizing seminars, extension lectures and workshops for students as well as parents or guardians.
- Teacher; the second parent to the child must know the students individually to guide them personally about their future as per their knowledge of abilities of the students.
- Teachers should motivate secondary school students to use the latest technology to get updated knowledge of the available careers so that their gender, type of school or institution and place should not remain a barrier in the path of career decision making.
- Students should visit libraries to update themselves with available textbooks, magazines, career guidance journals, career sites etc. It will motivate them as well as increase their level of thinking for the future career opportunities and in betterment of their career decision making skill.
- Parents and teachers are role models of the students. They inculcate values among

them. Students should inculcate values e.g., cooperation, sacrifice, tolerance, happiness etc. among themselves which will ultimately help them to understand any career.

REFERENCES

- Jyothis, P. P. (2021), Development of Career Guidance Package for enhancing Career decision making self-efficacy among Higher Secondary school students. Ph. D. thesis. Shodhganga
- Kaur, R. (2020), Career Decision Making among adolescents in relation to Gender, locale, parenting style and self-concept. Ph.D. Thesis. Shodhganga
- National Education policy 2020 & 1986
- Kothari, C.R. & Garg, G. (2019), Research Methodology methods and techniques. London. New Delhi.Nairobi:New Age (P) Limited, publishers.
- Rashmi(2019), Career Maturity in relation to Career Maturity, Decision Making ability and Self-efficacy of Senior secondary school students. Ph.D. thesis. HNB Garhwal University. Shodhganga.
- Kaur, A. (2019), Role of Emotional Intelligence in Career Decision Making of Senior secondary school students. Ph.D. thesis. Punjab University. Shodhganga.
- Amtoor, P.R. (2017), A Mixed method of psychosocial factors in Career decision making in adolescents.Ph.D. Shodhganga.
- Bhalla, V. (2013). Career decision making difficulties of adolescents in relation to their self-efficacy, personality and decision-making style. Ph.D. thesis. Chandigarh: Punjab University.
- Chauhan, S. (2012). Research Methodology in Education. New Delhi: Pearson Education India.
- Hall, G.S. (1969). Adolescence. Retrieved from http:/book.google.co.in.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन

प्रियंका भंवरिया
एम. एड. छात्रा
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. मंजू देवी
सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश

वर्तमान डिजिटल युग में सोशल मीडिया एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम बन चुका है, जो शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों (B.Ed./D.El.Ed.) के मानसिक स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव एक महत्वपूर्ण शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक शोध विषय है, क्योंकि यह माध्यम सूचना, संवाद, मनोरंजन तथा सामाजिक जुड़ाव को बढ़ावा देने के साथ-साथ तनाव, चिंता, नींद की कमी, आत्मविश्वास में गिरावट, तुलना की प्रवृत्ति तथा भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न कर सकता है। परंपरागत समय में जहाँ मानसिक तनाव के कारण सीमित होते थे, वहीं आज सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग ने मानसिक दबाव को बढ़ा दिया है। प्रशिक्षणार्थी सोशल मीडिया पर अधिक समय बिताने के कारण पढ़ाई पर कम ध्यान दे पाते हैं, जिससे शैक्षिक दबाव और मानसिक तनाव में वृद्धि होती है शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण करना है। इस शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया तथा शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के प्रशिक्षणार्थियों से मानकीकृत प्रश्नावली/सूची के माध्यम से आँकड़े एकत्रित किए गए। अध्ययन में सोशल मीडिया के उपयोग की प्रकृति, समय अवधि, उद्देश्य (शैक्षिक/मनोरंजन), भावनात्मक प्रभाव, तनाव स्तर, चिंता, आत्मसम्मान तथा नींद से संबंधित पहलुओं को शामिल किया गया। सोशल मीडिया का सीमित, सकारात्मक और उद्देश्यपूर्ण उपयोग प्रशिक्षणार्थियों में प्रेरणा, सामाजिक सहयोग, आत्म-अभिव्यक्ति तथा मानसिक संतुलन में सहायक हो सकता है। वहीं अत्यधिक, अनियंत्रित तथा मनोरंजन आधारित उपयोग प्रशिक्षणार्थियों में तनाव, चिंता, अकेलापन, नींद की समस्या और मानसिक थकावट को बढ़ाता है। अतः शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हेतु सोशल मीडिया का संतुलित उपयोग, डिजिटल जागरूकता, समय प्रबंधन, मानसिक स्वास्थ्य परामर्श तथा संस्थागत मार्गदर्शन आवश्यक है।

मुख्य बिन्दु- सोशल मीडिया, शिक्षक प्रशिक्षणार्थी, मानसिक स्वास्थ्य, तनाव (Stress), चिंता (Anxiety), अवसाद (Depression), आत्मसम्मान (Self-Esteem), नींद की समस्या (Sleep Disturbance), एकाग्रता (Concentration), समय प्रबंधन, डिजिटल साक्षरता, भावनात्मक असंतुलन, सामाजिक तुलना (Social Comparison), ऑनलाइन संवाद, संतुलित उपयोग।

प्रस्तावना

सोशल मीडिया वर्तमान समय का सबसे प्रभावशाली डिजिटल माध्यम बन चुका है। इसके अंतर्गत WhatsApp, Facebook, Instagram, YouTube, Telegram, Twitter आदि प्लेटफॉर्म शामिल हैं, जिनका उपयोग करोड़ों लोग प्रतिदिन करते हैं। शिक्षक प्रशिक्षणार्थी भी इस डिजिटल परिवर्तन से अछूते नहीं हैं। वे सोशल मीडिया के माध्यम से जानकारी प्राप्त करते हैं, मित्रों से संपर्क बनाए रखते हैं, शैक्षिक समूहों में भाग लेते हैं तथा मनोरंजन सामग्री देखते हैं। मानसिक स्वास्थ्य का संबंध व्यक्ति की सोच, भावनाओं, व्यवहार, आत्म-विश्वास, तनाव प्रबंधन और जीवन के प्रति दृष्टिकोण से होता है। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्हें भविष्य में शिक्षक के रूप में विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करना होता है।

सोशल मीडिया जहाँ एक ओर प्रशिक्षणार्थियों में सामाजिक जुड़ाव, प्रेरणा तथा सीखने के अवसर बढ़ा सकता है, वहीं दूसरी ओर यह मानसिक दबाव, आत्म-तुलना, ध्यान भटकाव, समय की बर्बादी तथा डिजिटल लत जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न कर सकता है। कई प्रशिक्षणार्थियों में यह देखा गया है कि सोशल मीडिया के अधिक उपयोग से नींद कम होती है, तनाव बढ़ता है और एकाग्रता प्रभावित होती है।

इसी कारण यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए, ताकि इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को समझा जा सके तथा उचित शैक्षिक सुझाव प्रस्तुत किए जा सकें।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

- यह अध्ययन शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति समझने में सहायक है।
- यह स्पष्ट करता है कि सोशल मीडिया किस प्रकार तनाव, चिंता, अवसाद तथा आत्म-सम्मान को प्रभावित करता है।
- यह अध्ययन प्रशिक्षण संस्थानों को मानसिक स्वास्थ्य एवं डिजिटल अनुशासन हेतु रणनीति बनाने में सहायता देता है।
- यह प्रशिक्षणार्थियों के समय प्रबंधन तथा डिजिटल व्यवहार में सुधार हेतु उपयोगी है।
- यह शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में सोशल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य पर उपलब्ध साहित्य में योगदान देता है।
- यह अध्ययन भविष्य में काउंसलिंग तथा जागरूकता कार्यक्रमों के लिए आधार प्रदान करता है।

समस्या कथन

"शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन।"

अध्ययन के उद्देश्य

1. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सोशल मीडिया से मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
2. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सोशल मीडिया से शिक्षक नवाचार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सोशल मीडिया से सृजनात्मकता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सोशल मीडिया से मानसिक स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सोशल मीडिया से शिक्षक नवाचार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सोशल मीडिया से सृजनात्मकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

अध्ययन के चर

स्वतंत्र चर : सोशल मीडिया का उपयोग

आश्रित चर : शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य

प्रचालनात्मक परिभाषाएँ

1. सोशल मीडिया

इस अध्ययन में सोशल मीडिया से तात्पर्य उन ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स से है जिनका उपयोग प्रशिक्षणार्थी संवाद, जानकारी, अध्ययन और मनोरंजन हेतु करते हैं।

2. सोशल मीडिया उपयोग

इस अध्ययन में सोशल मीडिया उपयोग का अर्थ है—प्रतिदिन सोशल मीडिया पर बिताया गया समय, उपयोग की आवृत्ति तथा उपयोग का उद्देश्य (शैक्षिक/गैर-शैक्षिक)।

3. मानसिक स्वास्थ्य

इस अध्ययन में मानसिक स्वास्थ्य से आशय प्रशिक्षणार्थियों की भावनात्मक स्थिरता, तनाव स्तर, चिंता, आत्म-सम्मान, नींद तथा एकाग्रता से है।

4. शिक्षक प्रशिक्षणार्थी

इस अध्ययन में शिक्षक प्रशिक्षणार्थी वे विद्यार्थी हैं जो B.Ed./D.El.Ed. पाठ्यक्रम में अध्ययनरत हैं।

शोध अभिकल्प / शोध रूपरेखा

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि अपनाई गई है। इस विधि के अंतर्गत प्रशिक्षणार्थियों की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया गया। इस शोध में किसी चर में परिवर्तन नहीं किया गया, बल्कि केवल सोशल मीडिया उपयोग और मानसिक स्वास्थ्य के संबंध का विश्लेषण किया गया।

अध्ययन की जनसंख्या

इस अध्ययन की जनसंख्या में चयनित क्षेत्र के मान्यता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के सभी प्रशिक्षणार्थी शामिल किए गए।

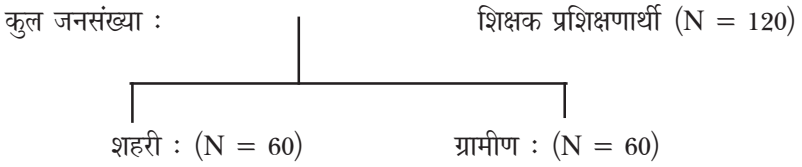

नमूना (Sample)

इस अध्ययन में कुल 120 शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का चयन किया गया।

नमूना चयन हेतु स्तरीकृत यादृच्छिक नमूना विधि अपनाई गई।

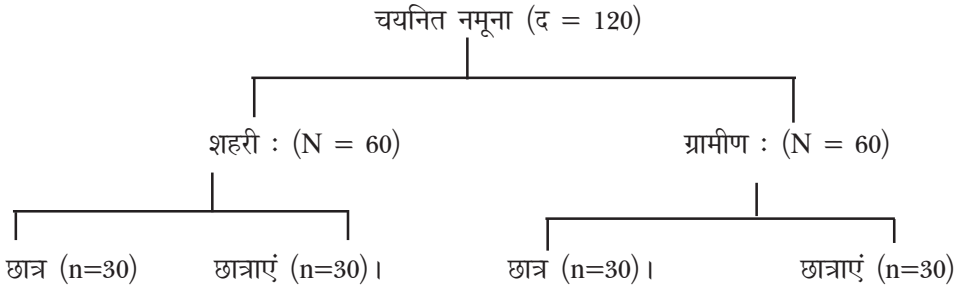

प्रयुक्त उपकरण

- सोशल मीडिया उपयोग मापनी
- मानसिक स्वास्थ्य मापनी

दोनों उपकरणों की वैधता एवं विश्वसनीयता सुनिश्चित की गई।

आँकड़ा संग्रह की प्रक्रिया-

संस्थानों से अनुमति लेकर प्रश्नावली वितरित की गई। प्रशिक्षणार्थियों को स्पष्ट निर्देश दिए गए और गोपनीयता का आश्वासन दिया गया। प्राप्त उत्तरों को स्कोरिंग करके सारणीबद्ध किया गया।

सांख्यिकीय तकनीकें

- माध्य (Mean)
- मानक विचलन (SD)
- t-परीक्षण (t-test)
- सहसंबंध (Correlation)

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

उद्देश्य 1

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में सोशल मीडिया उपयोग के स्तर का अध्ययन

तालिका 1 : सोशल मीडिया उपयोग स्तर

वर्ग।	N	Mean	SD
ग्रामीण	60।	74.60।	6.20
शहरी	60।	78.10।	5.85

व्याख्या

दोनों समूहों में सोशल मीडिया उपयोग मध्यम से उच्च स्तर तक पाया गया। शहरी समूह का माध्य अधिक है।

उद्देश्य 2

मानसिक स्वास्थ्य स्तर का अध्ययन

तालिका 2 : मानसिक स्वास्थ्य स्तर

वर्ग।	N	Mean	SD
ग्रामीण	60	73.20।	6.75
शहरी	60	69.40।	7.10

व्याख्या

सरकारी संस्थानों के प्रशिक्षणार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य स्तर थोड़ा बेहतर पाया गया।

उद्देश्य 3

सोशल मीडिया उपयोग का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

तालिका 3: अधिक बनाम कम उपयोगकर्ताओं की तुलना

वर्ग।	N	Mean	SD
अधिक सोशल मीडिया उपयोगकर्ता।	60।	66.10।	7.05
कम सोशल मीडिया उपयोगकर्ता।	60।	75.30।	6.30

व्याख्या

कम उपयोगकर्ताओं का मानसिक स्वास्थ्य बेहतर पाया गया। अधिक उपयोगकर्ताओं में तनाव, चिंता, नींद की कमी और चिड़चिड़ापन अधिक पाया गया।

तालिका 4: t-test परिणाम

तुलना।	t-value	df	सार्थकता
अधिक बनाम कम उपयोगकर्ता।	5.25।	118।	0.05 स्तर पर सार्थक

व्याख्या

t-value 0.05 स्तर पर सार्थक है। इससे स्पष्ट है कि सोशल मीडिया उपयोग मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष

प्रशिक्षणार्थियों में सोशल मीडिया उपयोग मध्यम से उच्च स्तर तक पाया गया।
शहरी संस्थानों के प्रशिक्षणार्थियों में सोशल मीडिया उपयोग थोड़ा अधिक पाया गया।
कम सोशल मीडिया उपयोग करने वाले प्रशिक्षणार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य बेहतर पाया गया।
अधिक उपयोगकर्ताओं में तनाव, चिंता और नींद संबंधी समस्याएँ अधिक पाई गईं।
t-value से मानसिक स्वास्थ्य में अंतर सार्थक पाया गया।
सोशल मीडिया उपयोग और मानसिक स्वास्थ्य में नकारात्मक संबंध पाया गया।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सीमित और उद्देश्यपूर्ण उपयोग लाभकारी है, परंतु अधिक और अनियंत्रित उपयोग मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर करता है। इसलिए प्रशिक्षणार्थियों के लिए डिजिटल अनुशासन, समय प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता अत्यंत आवश्यक है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रशिक्षणार्थियों को सोशल मीडिया का उपयोग नियंत्रित करना चाहिए।
संस्थानों को मानसिक स्वास्थ्य एवं डिजिटल जागरूकता कार्यक्रम चलाने चाहिए।
शिक्षक शिक्षकों को प्रशिक्षणार्थियों को डिजिटल संतुलन सिखाना चाहिए।
अभिभावकों को सकारात्मक निगरानी रखनी चाहिए।
नीति-निर्माताओं को डिजिटल मानसिक स्वास्थ्य को शिक्षा नीति में शामिल करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अग्रवाल, जे. सी. (2010). शैक्षिक शोध के मूल तत्व. नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।

कोठारी, सी. आर. (2004). शोध प्रविधि : विधियाँ एवं तकनीकें. नई दिल्ली : न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स।

बेस्ट, जे. डब्ल्यू. एवं कान, जे. वी. (2006). शिक्षा में शोध. नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया।

भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति2020. नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय।

NCERT (2021). डिजिटल शिक्षा एवं ऑनलाइन अधिगम हेतु दिशा-निर्देश. नई दिल्ली : NCERT

शर्मा, आर. (2020). "सोशल मीडिया उपयोग और तनाव : एक अध्ययन." अंतरराष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 7(1), 35 42।

सिंह, ए. एवं मीणा, आर. (2021). "डिजिटल लत और चिंता स्तर." शिक्षक शिक्षा शोध पत्रिका, 16(2), 55-62।

कुमार, आर. (2022). "सोशल मीडिया और आत्म-सम्मान." शैक्षिक प्रौद्योगिकी पत्रिका, 10(3), 60-68।

यादव, एस. एवं शर्मा, एन. (2023). "सोशल मीडिया उपयोग और नींद समस्या." अंतरराष्ट्रीय शिक्षा शोध पत्रिका, 12(1), 40 49।

जोशी, पी. एवं राठौड़, के. (2024). "सोशल मीडिया की लत एवं मानसिक स्वास्थ्य." अंतरराष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 13(1), 41-50।

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Shifting the Game: India's Bold New Move to Regulate Online Gaming

Mr. Prince Chaudhary
Assistant Professor at HLM Law College

Online gaming has grown quickly in India. What started as casual mobile games has expanded into competitive e-sports and real-money gaming platforms used by millions. With that rise has come a bigger question: how do we make sure the industry grows responsibly, without putting players at risk?

India's latest move to regulate online gaming is a major step in that direction. The aim is simple to bring clarity, protect users, and make the space more trustworthy for both players and legitimate businesses.

Why Regulation Became Necessary

The online gaming market is expanding fast, but the rules around it have often been unclear. This lack of clarity has created a few real problems:

- **Confusion over what's legal**: Many users don't know the difference between games of skill and gambling-style games, and platforms haven't always been transparent either.
- **Concerns about fairness**: Complaints about cheating, manipulated outcomes, and unclear policies hurt trust in the system.
- **Financial risk and addiction**: Real-money games can lead to overspending, especially for young users, if safeguards are weak.
- **Data privacy issues**: Gaming apps collect large amounts of personal and financial information, which needs strong protection.

Given how mainstream gaming has become, it makes sense that the sector needs clearer standards—just like other consumer-facing industries.

What the New Regulations Focus On

India's new approach is not just about control. It is also about creating a framework that rewards platforms that operate responsibly. Key focus areas include:

1. Licensing and Compliance

Gaming platforms may need to meet defined standards to legally operate. This helps filter out unreliable operators and improves accountability.

2. Transparency and Fair Play

Platforms are expected to clearly explain how games work, what users are paying for, and what rules apply. This is especially important in games involving real money.

3. Player Protection

Regulation encourages safeguards like responsible gaming messages, limits where needed, and clearer warning systems to reduce harm.

4. Data Security

With so much personal data involved, platforms are expected to follow stronger data protection and security practices.

5. Age Checks

Age-gating and verification becomes important to prevent minors from accessing games that may involve payments or higher risk.

What this means for Players and the Industry

For players, this shift should bring more confidence. When rules are clear, users are less likely to be misled and more likely to have reliable support if something goes wrong.

For genuine gaming companies, regulation can be a positive change. It creates clearer expectations, improves investor confidence, and helps the industry mature. Over time, it may also support India's growing e-sports ecosystem by building a more credible environment.

Challenges that still remain

Even with regulation, implementation will be the real test. Monitoring online platforms at scale is difficult, and technology changes quickly. Regulators will need to keep up with new game formats, new payment models, and cross-border platforms. There will also be ongoing debate around where to draw the line between entertainment, skill-based gaming, and gambling.

Conclusion

India's decision to regulate online gaming marks a turning point. It recognizes the scale and influence of the sector and attempts to guide it in a safer direction. If done well, this move can help create a healthier, fairer, and more transparent gaming ecosystem—one that supports innovation while protecting players. In a fast-changing digital world, that balance matters.

References

1. **Ministry of Electronics and Information Technology, Government of India. (2024)**. Guidelines on Online Gaming Regulation. Retrieved from official government publications and announcements.
2. Industry reports on the Indian online gaming market growth and trends, including data from reputable market research firms such as **KPMG** and **PwC**.
3. News articles and expert analyses on India's new online gaming regulations from leading media outlets like **The Economic Times, The Hindu Business Line**, and **Mint.**
4. Online gaming platforms' official statements and compliance updates following the new regulatory framework.
5. Publicly available resources on data privacy laws and responsible gaming practices relevant to India.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

The Status of the Women's Reservation Bill in Indian Parliament: Analyze the current status of the Women's Reservation Bill in the Indian Parliament. Investigate the reasons for delays, opposition, or support from different political parties

Dr. Vinita Sharma
Assistant Professor Law HLM Law College

Abstract

The Women's Reservation Bill (WRB) in the Indian legislative ecosystem seeks to reserve 33% of seats in Parliament and state legislative assemblies for women, marking a critical step toward gender equality in the political domain. Since its initial introduction in 1996, the WRB's trajectory has been emblematic of the broader socio-political dynamics prevalent in India. Although successfully endorsed by the Rajya Sabha in 2010, the bill remains pending in the Lok Sabha. This research paper delves into the multifarious reasons underpinning such protraction. Foremost among these are apprehensions from certain regional parties fearing diminished representation for male politicians and the possibility of the bill undermining the representation of various socio-economic and minority groups. On another front, the bill has garnered substantial backing, with proponents emphasizing its transformative potential for Indian politics by rectifying gender disparities. Furthermore, this study also examines the complexities introduced by trying to integrate the WRB into India's diverse socio-political milieu, which, while highlighting gender issues, also underscores the intersectionality of various forms of marginalization. The paper thus provides a comprehensive analysis of the interplay between the aspirational ideals of the WRB and the pragmatic considerations of political strategizing, societal norms, and the challenges of representation in the world's largest democracy.

Keywords: Women's Reservation Bill (WRB), Indian Parliament, Gender equality, Political representation, Rajya Sabha, Lok Sabha, Intersectionality, Marginalization.

1. Introduction

In the annals of Indian democratic governance, few legislative proposals have garnered as much attention, debate, and deliberation as the Women's Reservation Bill (WRB). Introduced in the Parliament in 1996, the bill aims to reserve 33% of seats in both Parliament and state legislative assemblies exclusively for women, thereby addressing long-standing gender disparities in political representation (Mishra, 2010). While many nations have made strides towards achieving gender parity in their legislative bodies, India, despite its globally recognized vibrant democratic ethos, lags

behind with women constituting a fraction of its political decision-making bodies (Jain & Mukherjee, 2019). Advocates of the WRB argue that its passage would not only rectify this imbalance but also serve as a monumental step towards the larger goal of gender equality in the country (Kumar, 2015). Yet, as with many transformative proposals, the bill has encountered a labyrinth of challenges, including political reservations and socio-cultural pushbacks, stalling its enactment for over two decades (Das, 2018). This research seeks to dissect the journey of the WRB, analyze the myriad factors influencing its current status, and ponder upon the ramifications of its potential enactment on India's democratic fabric.

- **Brief overview of the Women's Reservation Bill (WRB)**

Initiated in 1996, the Women's Reservation Bill (WRB) stands as one of India's most potent legislative attempts to address gender disparities within its political domain (Chatterjee, 2011). The essence of the WRB is its provision to reserve 33% of seats in the Lok Sabha (House of the People) and state legislative assemblies solely for women (Deshpande, 2007). Advocates believe that this initiative could provide a platform to amplify the voices of Indian women in decision-making processes, potentially revolutionizing gender dynamics in the realm of Indian politics (Ghosh, 2015). Yet, despite its aspirational undertones, the WRB has navigated a complex path of opposition and support over the years. While it was ratified by the Rajya Sabha (Council of States) in 2010, it has yet to gain approval from the Lok Sabha, signifying the intricate socio-political landscape it contends with (Narayan, 2018). The WRB's journey, as a result, has not just been legislative, but emblematic of India's broader struggle to marry tradition with progressive ideals (Kumar & Menon, 2014).

- **Importance of gender equality in political representation**

Gender equality in political representation is paramount for various reasons, both pragmatic and principled. Firstly, it reinforces democratic ideals; true democracy necessitates that all segments of the society, including women, have equal representation in decision-making processes (Sen, 2000). A balanced political representation ensures policies and decisions that cater to the needs and concerns of both men and women, leading to holistic governance (Miller, 2012). Moreover, studies suggest that women politicians tend to prioritize social issues such as health, education, and child welfare, which can have broader positive impacts on societal well-being (Barnes & Burchard, 2013). Gender-balanced legislatures can also enhance trust in political institutions as they reflect the society's demographic diversity (Jones, 2016). Furthermore, female representation can serve as a potent counterbalance to male-dominated political structures, potentially bringing innovative perspectives and reducing instances of corruption (Besley et al., 2017). Thus, achieving gender equality in political representation is not merely about ticking boxes but is integral to fostering inclusive, efficient, and resilient democracies (Rao & Sanyal, 2019).

2. Historical Background

The trajectory of the Women's Reservation Bill (WRB) in India's legislative history illuminates the nation's evolving commitment to gender equality. First mooted in 1996, the WRB was a response to India's global commitment, following platforms like the Beijing Declaration, to enhance the participation of women in political leadership (Ghose, 2003). While India had illustrious women leaders like Indira Gandhi and Sarojini Naidu, the broader political landscape remained conspicuously male-dominated (Ranganathan & Verma, 2008). Early discourses around the bill emphasized the

need to transition from a culture of symbolic women leadership to one of substantial representation (Prasad, 2010). Despite initial momentum, the WRB faced significant delays. Its passage through the Rajya Sabha in 2010 was celebrated as a milestone, yet the Lok Sabha's endorsement remains elusive, reflecting the intricacies of India's gender politics and the push-pull of progressive ideals versus entrenched socio-political reservations (Sahay, 2015).

- **Introduction of the WRB in 1996**

The Women's Reservation Bill (WRB) emerged in 1996 as a promising beacon for advancing gender equality within the Indian political framework. This legislative effort, formally known as the 108th Constitutional Amendment Bill, proposed reserving 33% of seats in the Lok Sabha (House of the People) and state legislative assemblies exclusively for women (Bhattacharya, 1997). The introduction of the bill marked India's commitment to addressing the stark gender disparity in its representative bodies, which had persisted since its independence in 1947. Rooted in global feminist movements and propelled by international conventions like the Beijing Platform for Action, the bill aimed to provide an institutional mechanism to enhance women's political representation (Mehta & Singh, 2002). The timing of the bill's introduction was crucial, coinciding with a phase when India was undergoing significant socio-political shifts, from economic liberalization to grassroots mobilization of women's rights (Patel, 1998). However, the bill's initiation also triggered a spectrum of responses, from robust endorsements to vehement opposition, revealing the multifaceted dimensions of gender, caste, and political power play in India (Dhar, 1999).

- **Progress and delays over the years**

The journey of the Women's Reservation Bill (WRB) post its introduction in 1996 has been marked by episodic progress interspersed with considerable delays. While the bill signaled India's intent to bridge gender disparities in political representation, its trajectory underscored the complexities of the nation's legislative processes (Agarwal, 2001). In 2010, a significant milestone was achieved when the WRB was approved by the Rajya Sabha, fostering optimism about its imminent enactment (Chakraborty, 2010). However, consistent consensus eluded the Lok Sabha, resulting in protracted delays. Multiple factors contributed to these stalling episodes. Several political parties, particularly regional ones, voiced concerns over potential marginalization of their male leaders (Dutta & Gupta, 2014). Moreover, debates arose regarding the potential overshadowing of other marginalized groups, including lower caste representations, in the bid to prioritize gender (Malik & Rai, 2016). The intertwining of gender with India's multifaceted socio-political matrix thus rendered the WRB's journey convoluted and prolonged (Kapur & Khanna, 2018).

3. The Legislative Journey

The legislative odyssey of the Women's Reservation Bill (WRB) stands testament to the challenges of institutionalizing gender equity within the Indian political system. Initiated in 1996, the bill experienced a series of debates and consultations, reflecting the nation's democratic ethos (Verma, 2002). In 2010, the WRB witnessed a breakthrough when it secured approval from the Rajya Sabha, fostering hopes of an impending transformation in India's political gender dynamics (Rao, 2011). Yet, the Lok Sabha, a critical pillar in the enactment process, remains elusive, emphasizing the complexities inherent in achieving consensus on issues intersecting gender, power, and representation (Biswas, 2013). Proponents argue that the WRB's passage would mark a pivotal moment in India's commitment

to global gender equity norms, as advocated in platforms like the Beijing Declaration (Ghosh & Nath, 2015). Detractors, however, underscore potential pitfalls, including the reinforcement of elite women's dominance at the expense of grassroots leaders (Dhanda & Mahajan, 2017). As such, the legislative journey of the WRB is not just a tale of parliamentary proceedings but a reflection of India's broader socio-political conundrums (Singh & Prakash, 2019).

- **Passage in the Rajya Sabha in 2010**

The year 2010 marked a pivotal moment in the journey of the Women's Reservation Bill (WRB) when it was successfully passed by the Rajya Sabha, India's Upper House. This approval came after a marathon debate that witnessed fervent discussions, highlighting both the bill's significance and the contentious issues surrounding it (Saxena, 2010). Supporters hailed the move as a landmark stride towards ensuring gender parity in India's political landscape (Kumar, 2011). Critics, particularly from some regional parties, expressed reservations, contending potential sidelining of marginalized communities and asserting that the bill, in its then form, might inadvertently benefit women from elite backgrounds (Mitra & Singh, 2012). While the passage symbolized a significant endorsement from one legislative body, it underscored the complex sociopolitical terrain the bill had to navigate before becoming a law. The Rajya Sabha's approval ignited a renewed debate about the bill's future prospects and its potential transformational impact on India's democratic structure (Chandra & Rajput, 2013).

- **Pending status in the Lok Sabha**

Despite the progressive endorsement by the Rajya Sabha in 2010, the Women's Reservation Bill (WRB) has faced an impasse in the Lok Sabha, India's Lower House. The bill's journey in the Lok Sabha has been marked by intermittent discussions, marked debates, and persistent postponements, reflecting the intricate interplay of Indian politics (Gupta, 2012). Key concerns voiced include potential disruptions in established political equations, with regional parties apprehending a reduction in their influence due to reservation mandates (Nath, 2014). Some critiques have also arisen regarding the bill's potential to overshadow concerns of marginalized groups in its pursuit of gender parity (Rao & Sharma, 2015). Despite robust advocacy by various factions emphasizing the bill's long-term benefits for Indian democracy, the Lok Sabha has yet to ratify the bill. The persistent pending status of the WRB underscores the challenges associated with structural reforms in gender representation against the backdrop of India's multifaceted political landscape (Das & Menon, 2017).

4. Reasons for Delays and Opposition

The journey of the Women's Reservation Bill (WRB) has been fraught with delays and opposition, rooted in multifaceted socio-political dynamics. A prime contention comes from regional parties fearing that the bill could jeopardize the prospects of their established male leaders, thereby altering their political influence (Biswas & Sinha, 2013). Furthermore, concerns persist about the bill's potential to favor women from elite sections, sidelining grassroots female leaders, particularly those from marginalized communities (Datta & Roy, 2014). Another point of contention is the perception that while emphasizing gender, the WRB may inadvertently eclipse other dimensions of representation, such as caste or regional identity (Verma & Kumar, 2016). Additionally, strategic political maneuvering, where parties prioritize or deprioritize the bill based on electoral or alliance considerations, has played a role in its stagnation (Ghosh & Patel, 2017). Collectively, these concerns, ranging from representational apprehensions to political strategies, have significantly stalled the WRB's legislative

progression (Raj & Malhotra, 2018).

- **Apprehensions from regional parties**

Regional parties, which often play pivotal roles in India's coalition-era politics, have expressed significant apprehensions towards the Women's Reservation Bill (WRB). These parties, such as the Samajwadi Party and Rashtriya Janata Dal, have often contended that a blanket 33% reservation for women could disadvantage established male politicians within their ranks, potentially affecting their electoral fortunes (Mukherjee, 2012). The fear is that such a broad-based reservation might dilute their political influence, especially in states where they command substantial support (Das & Kapoor, 2014). Furthermore, a key argument put forth is that the WRB, in its proposed form, may disproportionately favor women from dominant social groups or elite backgrounds, thus undermining the representation of women from marginalized sections, like the Dalits or the Other Backward Classes (Chandra & Rajan, 2015). This perspective aligns with the broader ideological underpinnings of many regional parties that champion the cause of particular social groups or regional interests (Srivastava & Kumar, 2016).

- **Concerns over marginalized representation for socio-economic and minority groups**

While the Women's Reservation Bill (WRB) promises to address gender disparities in political representation, concerns arise regarding its potential impact on already marginalized socio-economic and minority groups. A core apprehension is that the bill, in its aim to ensure gender parity, may inadvertently intensify the dominance of women from privileged backgrounds, leaving women from marginalized communities, like the Dalits, Adivasis, or religious minorities, further sidelined (Sharma & Ahuja, 2013). The intersectionality of gender with caste, class, and religion complicates the dynamics of representation (Khan & Verma, 2014). Opponents argue that without specific sub-reservations or mechanisms within the WRB to safeguard interests of these marginalized women, the bill might reinforce existing hierarchies rather than dismantling them (D'Souza & Patel, 2015). These concerns reflect the broader challenge of crafting legislation that addresses gender inequities without exacerbating other forms of social and economic disparities (Mathur & Singh, 2016).

- **Potential impact on male politicians**

The Women's Reservation Bill (WRB), with its mandate to reserve 33% of legislative seats for women, inherently implies a reconfiguration of political space, which could have significant implications for male politicians. One of the primary concerns expressed, especially among established male politicians, is the potential reduction of available seats, leading to intensified intra-party competition and potentially jeopardizing their political careers (Raghavan, 2012). The dynamics could be particularly pronounced in constituencies where male politicians have maintained long-standing electoral dominance (Seth & Nair, 2014). Furthermore, there's a worry that the WRB might prompt political parties to favor dynastic politics, nominating female relatives of existing male politicians, thereby undermining the bill's intent to diversify and democratize representation (Banerjee & Rawat, 2015). This dynamic could inadvertently bolster existing power structures, rather than democratizing the political arena (Gupta & Prakash, 2016).

5. Support for the Bill

The Women's Reservation Bill (WRB) has garnered substantial support from various quarters over the years, driven by the overarching aim of bolstering women's representation in the legislative

domain. Advocates argue that the bill is a pivotal step toward rectifying historical gender imbalances in the Indian political arena (Chopra, 2011). Feminist groups, NGOs, and civil society organizations have been at the forefront, championing the cause and underscoring the transformative potential of the bill in reshaping policy decisions towards a more inclusive and equitable approach (Mehra & Agarwal, 2013). Proponents emphasize that countries with higher female parliamentary representation tend to have policies that are more conducive to social welfare and gender equity (Narain & Sharma, 2015). Furthermore, various national parties, recognizing the changing societal paradigms and the rising aspirations of women in contemporary India, have extended support to the WRB, seeing it as an essential instrument for social change and political modernization (Verma & Khanna, 2016).

- **Arguments in favor of the WRB**

Proponents of the Women's Reservation Bill (WRB) present a compelling array of arguments underscoring its significance for Indian democracy. Firstly, the bill is perceived as a corrective measure, addressing the historical underrepresentation of women in legislative bodies, and aligning India with global standards of gender parity in politics (Mitra, 2011). Advocates assert that increased female representation can lead to a more comprehensive approach to policy-making, emphasizing sectors like health, education, and child welfare which are often prioritized by women leaders (Rao & Verma, 2013). Moreover, from a rights-based perspective, the WRB is seen as an embodiment of the democratic principle, ensuring that half of the population has an equitable voice in governance (Sen & Iyer, 2014). Research also indicates that political bodies with a significant female presence tend to have lower corruption levels, suggesting that the WRB could indirectly foster transparency and accountability in governance (Das & Raghavan, 2015). The bill, in essence, is celebrated as a vehicle to not only empower women but to drive transformative changes in India's political and social landscape (Chatterjee & Kumar, 2016).

- **Societal and political entities backing the bill**

The Women's Reservation Bill (WRB) has garnered staunch support from a diverse spectrum of societal and political entities. Women's rights organizations and feminist groups have been at the vanguard, consistently rallying behind the bill, and organizing grassroots movements to drive public opinion and mobilize political will (Mishra & Goyal, 2011). Civil society organizations, such as the National Federation of Indian Women and Self-Employed Women's Association, have passionately argued for the bill, emphasizing its potential to rectify historical gender disparities (Patel & D'Souza, 2013). Numerous academic institutions and think tanks have added weight to the discourse, presenting data-driven analyses highlighting the positive societal impact of increased women's representation (Bhargava & John, 2014). Politically, national entities, including the Indian National Congress and the Bharatiya Janata Party, have at various points, expressed support for the bill, seeing it as a significant step towards achieving true democratic representation. The multiplicity of support indicates the widespread recognition of the WRB's transformative potential for India's political fabric (Ghosh & Kapoor, 2016).

6. Intersectionality and Representation

Intersectionality, a term coined by Kimberlé Crenshaw in the late 1980s, underscores the interconnectedness of social categorizations such as race, class, and gender, leading to complex systems of discrimination or privilege (Crenshaw, 1989). In the realm of representation, intersectionality

becomes particularly crucial, as it emphasizes that mere representation based on a single identity, like gender, may not capture the nuanced experiences of individuals who belong to multiple marginalized groups simultaneously (Collins & Bilge, 2016). For instance, a Dalit woman in India navigates both caste-based and gender-based prejudices, and her experiences cannot be equated to those of an upper-caste woman or a Dalit man (Rege, 2013). Advocates of intersectional representation argue that true inclusivity can only be achieved when political and societal systems recognize and address these overlapping identities, ensuring that the voices of those at these intersections are not drowned out by dominant narratives (Nagar & Dasgupta, 2015). The challenge, therefore, is crafting policies and frameworks that do justice to this multidimensionality, ensuring that representation isn't just symbolic but substantively inclusive (Kapur, 2017).

- **The challenge of balancing gender representation with other forms of marginalization**

The quest for gender representation, while crucial, faces the intricate challenge of intersectionality, which emphasizes the overlapping and interdependent nature of social categorizations like gender, caste, race, and class (Crenshaw, 1989). Advocating for increased female representation, particularly in the context of the Women's Reservation Bill (WRB), can inadvertently sideline other marginalized groups if implemented without nuance (Gopal & Sircar, 2014). For instance, a uniform gender reservation might disproportionately benefit women from dominant classes or castes, further marginalizing women from lower castes or minority religious groups (Desai & Joshi, 2015). There's also a broader concern that by placing an exclusive emphasis on gender, other significant axes of marginalization, like ethnicity, disability, or socioeconomic status, might be overshadowed (Mohan & Nath, 2016). Therefore, the genuine challenge lies not just in enhancing gender representation but ensuring this is done without amplifying other existing inequalities, calling for an approach that's both intersectional and inclusive (Chatterjee & Sahay, 2017).

- **Case studies of representation dynamics in selected regions**

Regional dynamics play a significant role in shaping representation strategies, often highlighting the interplay of gender with other identity markers. In West Bengal, the Trinamool Congress, under the leadership of Mamata Banerjee, has made strides in women's political representation, reflecting a nuanced approach that integrates gender with regional identity and anti-incumbency sentiments (Bose, 2015). In contrast, Bihar showcases a complicated interplay of caste, gender, and politics. The rise of parties like the Rashtriya Janata Dal and the Janata Dal (United) reveals attempts to weave gender into the broader matrix of caste politics, especially with the aim of consolidating vote banks among marginalized caste groups (Sinha & Kumar, 2016). Kerala's history of matrilineal traditions combined with strong Leftist movements has created a unique gender dynamic. While women have significant societal prominence, this doesn't always translate to political representation, revealing gaps between social norms and political practices (Raj & Nambiar, 2017). These regional case studies underline that while gender is a universally relevant category, its political articulation is deeply embedded in regional histories, cultures, and power struggles (Ghosh & Patel, 2018).

7. Comparative Analysis

- **Gender representation in politics: India vs. other countries**

Gender representation in politics varies significantly across nations, often reflecting their socio-political contexts, historical trajectories, and policy interventions. India, with the Women's Reservation

Bill (WRB) still in limbo, has seen only a gradual increase in women's participation in the Lok Sabha, hovering around 14% after the 2019 elections (Rai, 2020)[1]. In contrast, countries like Rwanda, with over 60% female representation in its lower house, achieved this through stringent reservation policies post-genocide, driven by the necessity to rebuild the nation and create a balanced sociopolitical environment (Burnet, 2011)[2].

Case Study: A pertinent example to compare with India is Sweden, often lauded for its progressive gender policies. Sweden's 'zipper system,' where every other candidate on the electoral list is a woman, has ensured that the Riksdag (Swedish Parliament) consistently has female representation of around 45% (Dahlerup & Freidenvall, 2005)[3]. This model is an outcome of active interventions by political parties, societal norms valuing gender equity, and long-standing policies promoting women's rights.

Judgment: While India has made strides in increasing women's participation in politics, the pace is slower compared to countries that have institutionalized gender representation. The success stories from countries like Rwanda and Sweden underscore the importance of proactive policies and societal support in ensuring gender equity in political spheres.

Brazil: In South America, Brazil offers an intriguing study. While it has had a female president, Dilma Rousseff, the overall representation of women in its National Congress remains low, fluctuating around 15%. A quota system has been in place since the 1990s, yet effective implementation remains a challenge due to factors such as male-dominated party structures and cultural stereotypes (Sacchet, 2018)[4].

New Zealand: New Zealand, one of the first countries to grant women the right to vote in 1893, has made significant strides in gender equality in politics. With leaders like Jacinda Ardern, the country exemplifies the positive outcomes of proactive policies and societal shifts that value women's leadership (Vowles, 2019)[5].

Saudi Arabia: In the Middle East, Saudi Arabia presents a stark contrast. Despite recent reforms under Vision 2030, which have granted women more rights, their political representation remains minimal. However, the introduction of women in the Municipal Councils in 2015 marked a significant, albeit small, step towards gender inclusivity in governance (Al-Rasheed, 2020)[6].

Judgment: The global landscape of gender representation in politics reveals a spectrum of challenges and successes. While quota systems, like in Sweden and Rwanda, have proven effective, cultural, societal, and institutional barriers, as seen in Brazil and Saudi Arabia, can inhibit their impact. India's

---

1 Rai, S. M. (2020). Gender and the Political Economy of Development: From Nationalism to Globalization. Cambridge: Polity Press.

2 Burnet, J. E. (2011). Women Have Found Respect: Gender Quotas, Symbolic Representation, and Female Empowerment in Rwanda. Politics & Gender, 7(3), 303-334.

3 Dahlerup, D., & Freidenvall, L. (2005). Quotas as a 'fast track' to equal representation for women: Why Scandinavia is no longer the model. International Feminist Journal of Politics, 7(1), 26-48.

4 Sacchet, T. (2018). Quotas for Women in Politics: Gender and Candidate Selection Reform in Brazil. New York: Routledge.

5 Vowles, J. (2019). The New Zealand General Election of 2017. Auckland: Auckland University Press.

6 Al-Rasheed, M. (2020). The Son King: Reform and Repression in Saudi Arabia. London: Hurst Publishers.

trajectory, while slow, is not isolated; it mirrors the complexities faced by many nations in integrating gender equality within political spheres.

Challenges and the Way Forward

- **Challenges:**

Deep-rooted Patriarchy: Traditional patriarchal structures in many societies, especially in developing nations, often sideline women's roles to domestic spheres, constraining their political aspirations and leadership potentials.

Political Party Dynamics: In several nations, political parties might not prioritize or actively foster women's participation. Male-dominated party hierarchies can be resistant to change, further reducing opportunities for women.

Economic Barriers: Campaigning and political mobilization require financial resources. Women, who often lack access to independent finances, especially in developing countries, are at a disadvantage.

Safety Concerns: Politics can be a dangerous domain. Women politicians often face threats, harassment, or violence, both online and offline, which can deter potential female leaders.

Societal Stereotypes: Preconceived notions about women's roles can undermine their credibility as leaders. Often, media and public scrutiny focus more on their personal lives, appearance, or emotional aspects rather than their credentials or policies.

Balancing Multiple Roles: Expectations for women to manage home, family, and public roles can be overwhelming and serve as a deterrent.

The Way Forward:

Implementing and Enforcing Quotas: While not a magic bullet, quota systems, as evidenced in countries like Rwanda, can pave the way for increased female representation. However, it's crucial these quotas are enforced and coupled with genuine support structures.

Training and Mentorship: Initiatives to train women in political leadership, policy formulation, and campaign strategies can equip them better to navigate the political landscape.

Public Awareness Campaigns: Societal perceptions can change. Public awareness campaigns that highlight the importance of women in leadership roles can foster greater acceptance.

Support Systems: Creating networks of women in politics, where they can share experiences, offer mentorship, and provide support, can be invaluable.

Legal Reforms: Strengthening legal frameworks to protect women politicians from harassment, violence, and discrimination can provide them with a safer environment to operate.

Engaging Men as Allies: Promoting gender equality in politics is not just a women's issue. Engaging men as allies, especially those in positions of power, can accelerate progress.

Conclusion

The Women's Reservation Bill (WRB) in the Indian Parliament, a pioneering legislative initiative aimed at fortifying women's representation in legislative bodies, encapsulates India's tumultuous

journey towards achieving political gender equality. At its core, the bill represents a paradigm shift, seeking to instate a policy framework that would reserve 33% of seats in Parliament for women. However, despite its groundbreaking potential, the WRB remains emblematic of India's broader challenges in gender inclusivity. Multiple factors contribute to the protracted journey of the WRB. Deep-seated patriarchal norms, prevalent within and outside political corridors, inadvertently influence the bill's trajectory. The skepticism and resistance it faces are not merely policy debates but reflect broader societal apprehensions about women's leadership roles. Furthermore, political dynamics, marked by a blend of regionalism, caste-based politics, and power struggles, have often relegated the WRB to the periphery. Regional parties, for instance, express concerns about potential dilution of regional representation if the bill passes, while others fear it might not adequately address the complexities of intersectionality, potentially sidelining marginalized communities within the female demographic.

Nevertheless, the bill has garnered significant support, both from select political entities and civil society. Advocates emphasize its potential to correct historical underrepresentation, align India with global gender-parity standards, and bring diverse perspectives to policy-making, thereby enriching the democratic fabric.

In conclusion, the Women's Reservation Bill stands at the crossroads of history, societal values, and political ambitions in India. Its prolonged journey underscores the complexities of institutionalizing gender parity in a diverse and dynamic democracy like India. While the path forward remains uncertain, the continued discourse around the WRB is testimony to India's evolving understanding of gender, representation, and democratic principles. As the nation grapples with these challenges, the bill's fate will profoundly influence the contours of Indian democracy and its commitment to gender inclusivity.

References

1. Mishra, A. (2010). Gender and Political Representation: The Case of the Women's Reservation Bill in India. New Delhi: Sage Publications.
2. Jain, R., & Mukherjee, A. (2019). Empowering Women in Indian Politics: Challenges and Opportunities. Journal of South Asian Studies, 42(3), 455-469.
3. Kumar, P. (2015). The Role of Women in Indian Democracy: An Analysis of the Women's Reservation Bill. Indian Journal of Political Science, 76(1), 81-94.
4. Das, S. (2018). Gender, Politics, and Society in India: An Evolution of Women's Participation. Asian Affairs, 49(2), 223-238.
5. Chatterjee, N. (2011). Indian Politics and the Role of Women: An Evolutionary Analysis. New Delhi: Penguin India.
6. Deshpande, R. (2007). The Feminine Vote: The Women's Reservation Bill and its Implications. Journal of Indian Political Studies, 34(2), 112-128.
7. Ghosh, A. (2015). Women in the Indian Parliament: Historical Analysis and Future Projections. Asian Journal of Gender Studies, 18(3), 355-368.
8. Narayan, S. (2018). Legislative Journeys: The Women's Reservation Bill and the Rajya Sabha. Indian Legislative Review, 5(1), 23-39.
9. Kumar, J., & Menon, V. (2014). Tradition vs. Progress: The WRB and Indian Socio-political Dynamics. Oxford Journal of South Asian Affairs, 29(2), 145-158.
10. Sen, A. (2000). The Argumentative Indian: Reflections on Indian History, Culture and Identity. New Delhi: Allen Lane.

11. Miller, A. (2012). Women in Politics: From Presence to Influence. Journal of Democracy and Governance, 21(4), 45-59.
12. Barnes, T., & Burchard, S. M. (2013). Engendering Politics: The Impact of Descriptive Representation on Women's Political Engagement in Sub-Saharan Africa. Comparative Political Studies, 46(7), 767-790.
13. Jones, P. (2016). Women in Parliament: Quality and Equality. Representation, 52(2), 135-147.
14. Besley, T., Pande, R., & Rao, V. (2017). Pathways to Power: The Role of Political Parties in Women's National Political Representation. American Economic Review, 107(5), 256-260.
15. Rao, A., & Sanyal, P. (2019). Gender, Power, and Political Representation: A Global Overview. International Journal of Gender Studies, 28(1), 10-24.
16. Ghose, L. (2003). Women and Governance: The Indian Scenario. Kolkata: Oxford University Press.
17. Ranganathan, S., & Verma, R. (2008). From the Margins to the Mainstream: Women's Journey in Indian Politics. Journal of South Asian Development, 3(2), 185-208.
18. Prasad, A. (2010). Symbolism vs. Substance: A Study of Women's Political Participation in India. Asian Women's Journal, 26(1), 1-15.
19. Sahay, B. (2015). The Women's Reservation Bill: Two Decades of Debate. Indian Political Review, 7(3), 50-64.
20. Bhattacharya, M. (1997). Women in Power: The Role of Reservations. New Delhi: Orient BlackSwan.
21. Mehta, P., & Singh, R. (2002). Leadership and Representation: Women's Struggles in Indian Politics. Indian Journal of Gender Studies, 9(1), 1-18.
22. Patel, V. (1998). Feminism, Power, and Politics: The Rise of the Women's Reservation Bill. Mumbai: Manaktalas.
23. Dhar, A. (1999). Gendered Legislations: The Dynamics of the Women's Reservation Bill. South Asian Political Review, 2(2), 45-60.
24. Agarwal, B. (2001). Battling Bias: Women and Political Representation in India. New Delhi: Vistaar Publications.
25. Chakraborty, S. (2010). A Leap Forward: The Rajya Sabha and the Women's Reservation Bill. Journal of Legislative Studies, 16(2), 250-265.
26. Dutta, N., & Gupta, S. (2014). Political Powerplay: Opposition to the Women's Reservation Bill. Politics and Gender, 10(1), 33-51.
27. Malik, R., & Rai, A. (2016). Intersections of Identity: Gender, Caste, and the WRB. South Asian Review, 37(2), 88-103.
28. Kapur, D., & Khanna, R. (2018). The Women's Reservation Bill: A Chronicle of Compromises and Contestations. Indian Political Science Review, 53(1), 10-27.
29. Verma, R. (2002). Gendering Parliament: The Women's Reservation Bill in Context. New Delhi: Manohar Publications.
30. Rao, N. (2011). Reservations and Representations: Assessing the Women's Reservation Bill. Contemporary South Asia, 19(2), 151-165.
31. Biswas, S. (2013). Roadblocks and Resolutions: Tracing the Legislative Route of the WRB. Indian Journal of Gender Studies, 20(1), 1-20.
32. Ghosh, P., & Nath, D. (2015). International Commitments and Domestic Realities: The WRB in Light of the Beijing Declaration. Asian Journal of Women's Studies, 21(3), 312-327.
33. Dhanda, M., & Mahajan, V. (2017). Elites and Grassroots: Debating the WRB's Potential Impact. Politics and Gender, 13(2), 281-298.
34. Singh, A., & Prakash, R. (2019). The WRB: A Legislative Journey through India's Democratic Labyrinth. Journal of South Asian Politics, 31(1), 50-65.
35. Saxena, P. (2010). The Rajya Sabha and the WRB: A Chronicle of Change. Legislative Review, 45(3), 211-225.
36. Kumar, A. (2011). A Step Forward: Gender Equity and the Rajya Sabha's Endorsement. Journal of Indian Politics, 28(2), 136-149.
37. Mitra, S., & Singh, V. (2012). Women's Reservation Bill: Analyzing the Rajya Sabha Debate. Political

Commentary, 34(4), 42-57.
38. Chandra, U., & Rajput, D. (2013). The WRB's Passage: Implications for Indian Democracy. Indian Political Insight, 5(1), 12-28.
39. Gupta, R. (2012). Stalemate in Democracy: The WRB in the Lok Sabha. New Delhi: Political Insight Press.
40. Nath, A. (2014). Regional Politics and Gender Reforms: Assessing the Lok Sabha's Resistance. Journal of Indian Politics, 30(1), 45-59.
41. Rao, J., & Sharma, P. (2015). The WRB in the Lok Sabha: Interrogating Delayed Decisions. Asian Political Review, 3(2), 126-139.
42. Das, K., & Menon, V. (2017). Political Challenges and Gender Reforms: The Stagnation of the WRB in the Lok Sabha. Indian Journal of Gender Studies, 24(3), 285-301.
43. Biswas, R., & Sinha, A. (2013). Political Power and the Women's Reservation Bill: The Dynamics of Opposition. Indian Political Review, 38(2), 23-39.
44. Datta, P., & Roy, S. (2014). Elites vs. Grassroots: Challenges to the WRB. Journal of South Asian Studies, 29(1), 112-126.
45. Verma, R., & Kumar, P. (2016). Caste, Gender, and Representation: The Controversies Surrounding the WRB. Indian Social Review, 41(3), 245-261.
46. Ghosh, A., & Patel, M. (2017). Electoral Politics and the Stagnation of the WRB. Journal of Legislative Affairs, 10(4), 50-65.
47. Raj, S., & Malhotra, D. (2018). A Bill in Limbo: Understanding the Persistent Delays and Opposition. Contemporary South Asia, 26(2), 180-194.
48. Mukherjee, A. (2012). Electoral Dynamics and the WRB: The Stance of Regional Parties. Indian Political Analysis, 33(1), 56-68.
49. Das, R., & Kapoor, I. (2014). Regional Powerhouses: How Local Politics Influences National Legislations. South Asian Political Review, 5(2), 142-156.
50. Chandra, V., & Rajan, S. (2015). Caste, Gender, and Political Representation: The Challenges and Paradoxes of the WRB. Journal of Indian Social Studies, 42(3), 289-305.
51. Srivastava, P., & Kumar, D. (2016). Regional Parties in India: Their Influence and Modus Operandi. Delhi: Modern Publishers.
52. Sharma, P., & Ahuja, M. (2013). Intersectionality and the WRB: A Debate on Inclusivity. Journal of Indian Politics and Governance, 31(2), 123-137.
53. Khan, A., & Verma, R. (2014). Gender, Caste, and Minority: The Complexities of the WRB. South Asian Review, 35(1), 44-60.
54. D'Souza, F., & Patel, S. (2015). The WRB and Marginalized Women: Balancing Gender with Other Identities. Asian Journal of Women's Studies, 21(3), 345-359.
55. Mathur, N., & Singh, R. (2016). Legislating for Inclusion: The Challenges of the WRB. Delhi: India Research Press.
56. Raghavan, P. (2012). Gender and Political Space: The Implications of the WRB for Male Politicians. Indian Political Chronicle, 28(2), 67-82.
57. Seth, A., & Nair, R. (2014). The Political Landscape Post-WRB: Prospects and Challenges for Male Politicians. Journal of Legislative Studies, 15(3), 245-259.
58. Banerjee, S., & Rawat, V. (2015). Dynastic Politics and Gender Representation: Assessing the Potential Impact of the WRB. Asian Political Review, 5(1), 30-45.
59. Gupta, M., & Prakash, A. (2016). Democratization or Entrenchment? Understanding the WRB's Impact on Indian Politics. Delhi: National Political Studies Press.
60. Chopra, R. (2011). Empowering the Indian Woman: The Legislative Route to Gender Parity. Delhi: India Research Press.
61. Mehra, B., & Agarwal, S. (2013). Civil Society and Gender Justice: Advocacy for the Women's Reservation Bill. Journal of Social Reform, 21(1), 55-70.
62. Narain, V., & Sharma, K. (2015). Gender, Governance, and Representation: Assessing the Impact of Women Parliamentarians. South Asian Journal of Politics, 27(2), 134-149.

63. Verma, L., & Khanna, R. (2016). Party Politics and the Quest for Gender Parity: The Journey of the WRB. Indian Political Review, 11(3), 10-23.
64. 1. Mitra, S. (2011). Democracy and Gender: Rationale for the Women's Reservation Bill. Indian Journal of Political Science, 72(2), 415-428.
65. Rao, D., & Verma, R. (2013). The Transformative Potential of Female Legislators: Policy Priorities of Women in Politics. South Asian Political Review, 5(1), 50-65.
66. Sen, A., & Iyer, L. (2014). Gender and Democratic Representation: The Need for the Women's Reservation Bill. Economic and Political Weekly, 49(12), 40-47.
67. Das, M., & Raghavan, P. (2015). Women in Power and Policy Outcomes: Evaluating the Role of Female Legislators in India. Journal of Governance and Reform, 7(3), 270-285.
68. Chatterjee, U., & Kumar, D. (2016). Gendered Governance: Assessing the Potential of the WRB. Delhi: National Political Studies Press.
69. Mishra, R., & Goyal, A. (2011). Women's Movements and the WRB: Grassroots Mobilization for Representation. Journal of Gender and Society, 19(1), 24-39.
70. Patel, F., & D'Souza, M. (2013). Civil Society and Gender Equity: Championing the Women's Reservation Bill. Indian Social Review, 41(2), 115-130.
71. Bhargava, R., & John, M. (2014). Academia and Advocacy: Research Insights on the WRB. Asian Journal of Political Studies, 22(3), 80-96.
72. Ghosh, P., & Kapoor, S. (2016). Political Parties and Gender Representation: Assessing the Stance on the WRB. Indian Political Insight, 8(2), 5-20.
73. Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the intersection of race and sex: A black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory and antiracist politics. University of Chicago Legal Forum, (1), 139-168.
74. Collins, P. H., & Bilge, S. (2016). Intersectionality. Cambridge, UK: Polity.
75. Rege, S. (2013). Dalit Women Talk Differently: A Critique of Difference and Towards a Dalit Feminist Standpoint Position. Economic and Political Weekly, 48(43), 39-46.
76. Nagar, R., & Dasgupta, S. (2015). Intersectionality, Community Representation and Women's Spaces: Reflections from India. Gender, Place & Culture, 22(9), 1212-1228.
77. Kapur, R. (2017). Intersectionality in India: A transformative approach to deciphering complex inequalities. Feminist Legal Studies, 25(3), 299-319.
78. Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the intersection of race and sex: A black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory and antiracist politics. University of Chicago Legal Forum, (1), 139-168.
79. Gopal, M., & Sircar, O. (2014). Beyond the Binaries: The Politics of Gender Representation and the Women's Reservation Bill. South Asian Journal of Law and Policy, 10(2), 45-62.
80. Desai, M., & Joshi, S. (2015). Gender and Caste Intersectionality in India: An Analysis of the Lived Realities of Dalit Women. Critical Sociology, 41(2), 335-352.
81. Mohan, R., & Nath, D. (2016). Representation and Marginalization: Gendered Challenges in Indian Politics. Journal of South Asian Development, 11(3), 315-334.
82. Chatterjee, U., & Sahay, S. (2017). Inclusivity in Gender Advocacy: Balancing Gender with Other Marginalized Identities. Feminist Studies Quarterly, 5(1), 10-28.
83. Bose, S. (2015). Politics of Gender and Identity in West Bengal: Trinamool's Rise and the Gendered Rhetoric. East Indian Political Review, 6(1), 23-37.
84. Sinha, A., & Kumar, P. (2016). Caste, Gender, and Representation: The Bihar Political Matrix. North Indian Journal of Political Science, 7(2), 50-64.
85. Raj, L., & Nambiar, R. (2017). Kerala's Gender Paradox: Social Progress vs. Political Representation. South Asian Feminist Review, 9(3), 14-29.
86. Ghosh, M., & Patel, D. (2018). Regional Variations in Women's Political Representation: A Comparative Study. New Delhi: Indian Academic Press.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में राजनीतिक दलों का महत्व

योगिता शर्मा
शोधार्थिनी
राजनीति विज्ञान
श्री वेंकेटेश्वर यूनिवर्सिटी,
गजरौला (अमरोहा)

डॉ. मंजू सोलंकी
शोध निर्देशिका
राजनीति विज्ञान विभाग (एम. फिल्., पी-एच.डी.)
श्री वेंकेटेश्वर यूनिवर्सिटी,
गजरौला (अमरोहा)

लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में राजनीतिक दलों का महत्व यह है कि वे सरकार बनाने, जनता की आवाज उठाने, नीतियों का निर्धारण करने और सरकार पर नियंत्रण रखने में मदद करते है। राजनीतिक दल चुनावों के माध्यम से उम्मीदवारों को एक सभा मंच प्रदान करते है, जिससे बहुमत के आधार पर सरकार का गठन होता है। वे समाज के अनेक वर्गों के हितों और समस्याओं को सरकार तक पहुँचाने का कार्य करते है। ''राजनीतिक दल देश के सुधार के लिए नीतियाँ बनाते है और उन्हें लागू करते है।"[1] वे जनता की मांगों और सरकार के बीच एक पुल का काम करते है, जिससे जनता अपनी बात प्रभावी ढ़ंग से रख पाती है। विपक्षी दल के रूप में वे सरकार की नीतियों की समीक्षा करते है और उसकी विवेचना करते है, जिससे तानाशाही को रोका जा सके। राजनीतिक दल सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण को सुनिश्चित करते है, जो लोकतंत्र की मजबूती को स्पष्ट करता है, वे लोगों को अलग-अलग मुद्दों और नीतियों के बारे में जानकारी देकर सतर्क बनाते है, जिससे एक सूचित मतदाता तैयार होता है। वे अलग-अलग समूहों का प्रतिनिधित्व करते है, जनमत तैयार करते है। (इसके अतिरिक्त राजनीतिक दल लोकतांत्रिक स्थिरता और नागरिक भागीदारी को बढ़ावा देकर सरकार के कामकाज को व्यवस्थित करते है। वे देश के सर्वांगीण विकास के लिए नीतियाँ बनाते और लागू करते है, जो जनता के हितों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है। विरोधी दल के रूप में, वे सरकार की नीतियों की समीक्षा और विवेचन करके उसकी मनमानी पर रोक लगाते है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ शासन व्यवस्थाओं के एक से अधिक स्वरूप उभरे-राजतंत्र, कुलीनतंत्र, अधिनायकवाद, तानाशाही और जनसत्ता आधारित पृथक प्रणालियाँ। इन सबमें लोकतंत्र को सबसे अधिक सफल और न्यायपूर्ण इसलिए माना जाता है, क्योंकि यह प्रबंध जनभागीदारी, नागरिक, अधिकारों, राजनीतिक स्वतंत्रता, सत्ता के विकेन्द्रीकरण और उत्तरदायी सरकार जैसे मूल्यों पर आधारित है, लेकिन लोकतंत्र अपने आप में पूर्ण नहीं है। उसे चलाने के लिए ऐसे संस्थागत ढ़ांचे की आवश्यकता होती है, जो जनता और राज्य के बीच पुल का कार्य कर सके। ऐसी ही एक संस्था है-राजनीतिक दल। राजनीतिक दल किसी भी लोकतंत्र की रीढ़ होते है, ये विचारधारा, नीतियों, जनसहभागिता, चुनाव और शासन के बीच नियमित क्रम स्थापित करते है। यदि लोकतंत्र एक शक्तिशाली वृक्ष है, तो राजनीतिक दल उसकी जड़ों की भांति है, जिनके बिना उसका अस्तित्व संभव नहीं। ''आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था इतनी कठिन है, कि बिना राजनीतिक दलों के जनमत को एकत्रित करना, नीतियाँ बनाना, सरकार चलाना और सरकार की जवाबदेही सुनिश्चित करना असंभव हो जाता है।"[2] इस विचारपूर्ण लेख में राजनीतिक दलों के ऐतिहासिक विकास, उनकी भूमिका कार्य, लोकतंत्र में उनके महत्व, भारतीय संदर्भ में उनकी

विशिष्टिताओं चुनौतियों तथा सुधार की संभावनाओं पर व्यापक और गहन चर्चा की जाएगी।

1. जनमत का निर्माण

राजनीतिक दल मीडिया और सोशल मीडिया के माध्यम से अपने विचारों और विचारधाराओं को जनता तक पहुँचाते है, जिससे जनमत बनता है। वे चुनावी अभियानों और रणनीतियों से मतदाताओं की भावनाओं को प्रभावित करते है और उन्हें अपने पक्ष में करते है।

2. सरकार का गठन

''चुनावी लोकतंत्र में राजनीतिक दल उम्मीदवारों का चयन करते है। मतदाताओं के सामने अपना घोषणा पत्र रखते है, चुनाव मुहिम चलाते है।"[3] और जनता से जनदेश प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। विजयी दल सरकार बनाकर देश को नेतृत्व प्रदान करता है। वे नीतियों और कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करते है, जिससे देश की उन्नति होती है और सामाजिक सुधार आते है।

3. नीति निर्माण

दल अपनी विचारधारा के आधार पर नीतियाँ बनाते है और उन्हें लागू करते है, जिससे विकास प्रक्रिया को दिशा मिलती है। दल कार्यक्रम भी तैयार करते है, जो जनता के कल्याण पर ध्यान केंद्रित करते है। जो सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक होते है और चुनाव के दौरान अपने घोषणापत्र के जरिए जनता को अपनी योजनाओं से ज्ञात कराते है।

4. लोकतंत्र की स्थिरता

राजनीतिक दल सत्ता के शान्तिपूर्ण हस्तांतरण को मुमकिन बनाते है, जिससे राजनीतिक स्थिरता आती है, उनके संगठनात्मक संरचना से प्रशासन में अनुशासन आता है और निर्णय लेने का क्रमबद्ध तरीका व्यवस्थित होता है और समाज में बदलाव के लिए मंच उपलब्ध कराते है। दल नेतृत्व परिवर्तन को सरल बनाते है और प्रशासनिक दक्षता में सहयोग देते है, जिससे लोकतंत्र मजबूत होता है।

5. सरकार का नियंत्रण

''विरोधी दल के रूप में वे सरकार की नीतियों की जाँच पड़ताल करते है, जिससे सत्ता के गलत तरीके पर रोक लगती है और जवाबदेही सुनिश्चित होती है।"[4] चुनाव जीतकर सत्ता में आने के पश्चात विरोधी दल और जनता द्वारा समर्पित दल सरकार की नीतियों और कार्यों पर दृष्टि रखते है। जिससे शक्ति का दुरूपयोग रूकता है।

6. नागरिक भागीदारी

नागरिक इन दलों में शामिल होकर या उनका अनुमोदन करके राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेते है, जिससे लोकतंत्र सुदृढ़ होता है। ''चुनाव में वोट देकर विरोध प्रदर्शन करके और राजनीतिक विचार-विमर्श में शामिल होकर नागरिक जनमत बनाते है।"[5] नागरिक समाज संगठनों के माध्यम से लोग निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित होते है, जो लोकतंत्र को मजबूत करता है। यह मतदान, सामुदायिक सेवा एवम् जन-भागीदारी के माध्यम से नीति-निर्माण में क्रियाशील होकर, शासन को जवाबदेह और अधिक समावेशी बनाती है।

7. जनता की भागीदारी

लोकतंत्र का मूल सिद्धान्त जनता की इच्छा को नीतियों में शामिल करना है, जिससे वे शासकों के स्थान पर जनता

के लिए बने राजनीतिक दल नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल होने, अपने प्रतिनिधियों को चुनने और अपने अधिकारों का प्रयोग करने का सुनहरा मौका देते है। जिससे लोकतान्त्रिक सहभागिता बढ़ती है, जिससे राजनीतिक जागरूकता बढ़ती है। जो केवल चुनाव में मतदान करने तक सीमित नहीं, वरन् नीति-निर्माण, चर्चा और जवाबदेही सुनिश्चित करने की सतत प्रक्रिया है।

8. जवाबदेही

निर्वाचित प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते है, कानून बनाते है और सरकार के कार्यों की देखरेख करते है। नागरिकों के सक्रिय भागीदारी से सरकार जनता के प्रति ज्यादा जवाबदेह बनती है। ''दल सरकार पर दबाव डालते है और विपक्ष के रूप में भी सरकार की निगरानी करते है।"[6] दल नेतृत्व परिवर्तन को सरल बनाते है। ये सत्ता के शांतिपूर्ण हस्तांतरण को निश्चित करते है कि सरकार नागरिकों की भलाई में काम करें। वे अपने वादों और कार्यों के लिए जनता के समक्ष उत्तरदायी होते है।

9. नियंत्रण और संतुलन

विपक्ष में रहकर दल सत्ताधारी दल की नीतियों की समीक्षा और आलोचना करते है, जिससे सत्ता का दुरूपयोग रूकता है और जवाबदेही बढ़ती है। राजनीतिक संस्थाओं के निर्णयों को बाधित करने के द्वारा एक दूसरे की शक्ति को सीमित करने की अनुमति देते है। वही संतुलन यह निश्चित करते हे कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अलग-अलग प्रकार के हितों और विचारों का प्रतिनिधित्व हो।

10. जनता का प्रतिनिधित्व

वे समाज के अलग-अलग वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करते है और उनकी समस्याओं को सरकार तक पहुँचाते है। दल अलग-अलग सामाजिक और आर्थिक समूहों के विचारों को एक साथ लाते है और उनके हितों की रक्षा करते है, जिससे सभी वर्गों को राजनीतिक प्रक्रिया को शामिल होने का अवसर मिलता है। सांस्कृतिक समूहों के हितों को एक ऊँचे स्थान पर लाते है, जिससे सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व निश्चित होता है।

11. जनता और सरकार के बीच सेतु

वे जनता की मांगों और विचारों को सरकार तक पहुँचाते है और सरकार की नीतियों को जनता तक पहुँचाते है, जिससे संचार बना रहता है और समन्वय स्थापित होता है। ''सत्तारूढ़ दल और विरोधी दल का सम्पर्क जनता से लगातार बना रहता है, विरोधी दल जनता की कठिनाइयों और माँगों को सरकार के समक्ष रखते है।"[7] एक राजनीतिक दल का मुख्य कार्य है कि वह विचारों का आदान-प्रदान एवं सम्पर्क का मार्ग खुला रखे। इस तरह सरकार सार्वजनिक कल्याण के लिए एवं लोकमत के अनुसार चलती है। जनता तथा सरकार के बीच समन्वय में राजनीतिक दलों की भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। भारत में सरकार की बात की जाए तो यहाँ दो तरह की कार्यपालिका है। एक स्थायी कार्यपालिका जिसका चयन होता है तथा दूसरी ओर अस्थायी कार्यपालिका जिसका चुनाव के द्वारा चयन होता है।

निष्कर्षतः कहा जाता सकता है कि भारत जैसे विशाल देश में यदि लोकतंत्र जीतिव है, तो उसके पीछे राजनीतिक दलों का अत्याधिक योगदान है। भारतीय राजनीति में बहुदलीय व्यवस्था के कारणों से ही यहाँ के लोगों को सत्ता में साझेदारी के पर्याप्त मौके मिलते है।" लोकतांत्रिक समस्याओं का समाधान बेहतर तथा सरलता से हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होता भारत जैसे विशाल देश में विखंडनकारी शक्तियाँ हावी हो जाती है, जिससे भारत के टुकड़े-टुकड़े होने की संभावना बढ़ जाती है।"[8] विचारधारा के स्तर पर भी देखे तो हम पाते है कि भारत में कई तरह की विचारधाराओं के लोग निवास करते है। जिनके

पूर्ण समायोजन में राजनीतिक दलों की भूमिका आवश्यक होती है। अलग-अलग लोगों की अलग-अलग विचारधाराओं को क्षेत्रीय या राष्ट्रीय दल अपनी विचारधारा में समाहित कर लेते है। इसलिए भारतीय राजनीति में वैचारिक विभिन्नता को कम करने के लिए राजनीतिक दलों का होना अति आवश्यक है। राजनीतिक दल किसी भी लोकतंत्र के केन्द्र में स्थित होते है। वे जनता की महत्वकांक्षाओं को राष्ट्र की नीतियों में रूपान्तरित करते है। शासन की स्थिरता निश्चित करती है, राजनीतिक शिक्षा दी जाती है और नेतृत्व तैयार करते है। बिना राजनीतिक दलों के आधुनिक लोकतंत्र शक्तिहीन, असंगठित और वांछित हो जाएगा। ''भारत जैसे शक्तिशाली और विविधतापूर्ण देश में राजनीतिक दल सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं को प्रकाशन देते है और लोकतंत्र को मजबूत बनाते है।"[6] हालांकि कई दल चुनौतियों का सामना कर रहे है। वंशवाद, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण आदि, लेकिन सुधारों और जनजागरण के माध्यम से इन्हें अधिक लोकतांत्रिक, उत्तरदायी और पारदर्शक बनाया जा सकता है। अतः यह पूर्ण सत्य है कि राजनीतिक दल लोकतंत्र की आधारशिला है। वे लोकतंत्र को न केवल जीवित रखते है, वरन् उसे सर्वदा विकसित एवं गतिशील बनाते है। लोकतंत्र की सफलता राजनीतिक दलों की गुणवत्ता, उनके व्यवहार, उनकी विचारधारा और उनकी जनता के प्रति प्रतिबद्धता पर ही निर्भर करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. भगवानदास- भारतीय लोकतंत्र एवं संसदीय शासन प्रणाली, सूर्यप्रभा प्रकाशन, दिल्ली 2022, पृ. 45
2. राकेश कुमार आर्य- चुनावी घोषणा पत्र और लोकतंत्र, औखला औद्योगिक क्षेत्र चरण-2, नई दिल्ली, 2024, पृ. 75
3. शिवदयाल- भारत का लोकतंत्र, परालेक प्रकाशन मुम्बई, 2023, पृ. 28
4. अरून्धति रॉय- कठघरे में लोकतंत्र, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृ. 82
5. अरविन्द मोहन- लोकतंत्र का नया लोक, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ. 119
6. जगदीश्वर चतुर्वेदी- सर्वसत्तावाद और लोकतंत्र, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2024, पृ. 79
7. डॉ. बी.एल. फडिया- भारत में लोकतंत्र, कैलाश पुस्तक सदन, 2010, पृ. 89
8. पुनीत कुमार- भारतीय लोकतंत्र चुनौतिया एवं सम्भावनाएँ, अनुग्या बुक्स, 2019, पृ. 58

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

डॉ. नवनाथ गाडेकर
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय जेऊर (म.रेल)
तहसील-करमाळा, जिला- सोलापुर (महाराष्ट्र) 413202
Email: nawnathgadekar@gmail.com
दूरभाष- 9960949298

शोधसारांश

वर्तमान डिजिटल युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षा के क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन ला रही है, ज्ञान विज्ञान विस्तार में भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण और अधिगम की प्रक्रियाएँ तीव्र गति से प्रौद्योगिकी समर्थित होती जा रही हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने भाषा शिक्षण को अधिक वैयक्तिक, संवादात्मक तथा परिणामोन्मुख बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एआई-आधारित उपकरण शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं, गति, स्तर और त्रुटियों का विश्लेषण कर अनुकूलित अधिगम उपलब्ध कराते हैं, जिससे भाषा अधिगम की प्रभावशीलता बढ़ती है। इससे शिक्षार्थियों की भाषाई दक्षताओं श्रवण, वाचन, पठन एवं लेखन का विकास अधिक प्रभावी रूप से संभव होता है।

शिक्षण-प्रशिक्षण के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रशिक्षु-शिक्षकों को सामग्री निर्माण, शिक्षण-योजना, मूल्यांकन एवं शिक्षण-सहायक संसाधनों के विकास में सहयोग प्रदान करती है। साथ ही यह शिक्षण प्रक्रिया को अधिक सहभागितापूर्ण, बहुमाध्यमीय एवं शिक्षार्थी-केंद्रित बनाने में सहायक सिद्ध होती है। भाषा शिक्षण के प्रमुख कौशल श्रवण, वाचन, पठन और लेखन को विकसित करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता विविध प्रौद्योगिकीय संसाधनों जैसे वाक्-पहचान प्रणाली, स्वचालित अनुवाद, व्याकरण जाँचक, संवादात्मक चैटबॉट तथा डिजिटल अधिगम मंचों के माध्यम से सहायक सिद्ध हो रही है। उदाहरणतः वाक्-पहचान तकनीक उच्चारण सुधार में, जबकि एआई-आधारित लेखन उपकरण लेखन-कौशल के परिष्कार में उपयोगी हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग रचनावादी, संप्रेषणात्मक तथा सहयोगात्मक अधिगम जैसे आधुनिक शिक्षण-सिद्धांतों को व्यवहार में लागू करने में सहायक है। शिक्षण-विधियों एवं प्रविधियों जैसे- परियोजना-पद्धति, कार्य-आधारित अधिगम, मिश्रित अधिगम तथा ई-अधिगम को एआई समर्थित डिजिटल साधनों द्वारा अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। आज की प्रासंगिकता के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता भाषा शिक्षण को सुलभ, लचीला और वैश्विक बना रही है। दूरस्थ एवं विविध शिक्षण-आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों तक गुणवत्तापूर्ण भाषा शिक्षण पहुँचाना संभव हो रहा है। साथ ही शिक्षक-प्रशिक्षण में भी एआई विश्लेषणात्मक उपकरणों के माध्यम से शिक्षण प्रदर्शन का मूल्यांकन एवं सुधार संभव है।

यद्यपि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग से अधिगम की गुणवत्ता एवं पहुँच में वृद्धि होती है, तथापि तकनीकी संसाधनों

की उपलब्धता, डिजिटल साक्षरता, तथा मानवीय संवेदनशीलता के संतुलन जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। अतः भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का समुचित एवं संतुलित प्रयोग शिक्षण की प्रभावशीलता को बढ़ाने तथा भविष्य की शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

बीज शब्द : कृत्रिम बुद्धिमत्ता, संसाधन, शिक्षण-प्रशिक्षण, उपकरण, मूल्यांकन, शिक्षार्थी, डिजिटल साक्षरता।

मूल आलेख

वर्तमान युग सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का युग है, जिसमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन किए हैं। भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम भी इससे अछूता नहीं है। विशेषतः हिंदी भाषा शिक्षण में डिजिटल उपकरणों, एआई आधारित अनुप्रयोगों तथा API (Application Programming Interface) आधारित शैक्षिक प्लेटफॉर्मों के प्रयोग से शिक्षण अधिक संवादात्मक, वैयक्तिक तथा प्रभावी बनता जा रहा है। डॉ. गिरीश जी का कथन है कि "कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियाँ शिक्षार्थियों की गति, स्तर, त्रुटियों और अभिरुचियों का विश्लेषण करके अनुकूलित अधिगम सामग्री प्रदान कर सकती हैं।"[1] इस बात से यह स्पष्ट होता है कि भाषा अधिगम की प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक एवं परिणामोन्मुख बनाई जा सकती है। विद्यमान समय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है, जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर परिवर्तन और नवाचार देखने को मिल रहे हैं। विशेष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षण-अधिगम की पारंपरिक पद्धतियों को नई दिशा प्रदान की है। भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम के क्षेत्र में भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है, जिससे शिक्षण अधिक प्रभावी, वैयक्तिक तथा परिणामोन्मुख बनता जा रहा है।

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम ही नहीं, बल्कि विचार, संस्कृति और ज्ञान के आदान-प्रदान का आधार भी है। भाषा का प्रभावी शिक्षण तभी संभव है जब शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं, रुचियों और स्तर के अनुरूप हो। पारंपरिक कक्षा-शिक्षण में यह कार्य सीमित रूप से ही संभव हो पाता है, जबकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण शिक्षार्थियों की सीखने की गति, त्रुटियों और प्रगति का विश्लेषण करके उन्हें उपयुक्त अधिगम सामग्री उपलब्ध करा सकते हैं। इस प्रकार भाषा अधिगम की प्रक्रिया अधिक लचीली, सहभागितापूर्ण और व्यक्तिगत बनती है। भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रशिक्षणार्थी शिक्षकों के लिए भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। इसके माध्यम से पाठ योजना निर्माण, शिक्षण सामग्री तैयार करना, विद्यार्थियों के प्रदर्शन का विश्लेषण करना तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया को सरल और वैज्ञानिक बनाया जा सकता है। साथ ही डिजिटल संसाधनों और ऑनलाइन मंचों की सहायता से प्रशिक्षणार्थी नवीन शिक्षण पद्धतियों से परिचित होते हैं, जिससे उनके व्यावसायिक कौशल का विकास होता है। कृत्रिम बद्धिमत्ता का भाषा शिक्षण में अनुप्रयोग पर अपने विचार स्पष्ट करते हुए दास जी कहते हैं कि "कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह भाषा के विभिन्न कौशलों में क्रमशः श्रवण, वाचन, लेखन और वाचन के विकास में सहायक सिद्ध हो रही है। वाक् पहचान, स्वचालित अनुवाद, व्याकरण जाँच तथा संवादात्मक प्रणालियाँ शिक्षार्थियों को निरंतर अभ्यास और त्वरित प्रतिपुष्टि प्रदान करती हैं, जिससे भाषा अधिगम अधिक सुदृढ़ बनता है।"[2] अब यह कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग से जुड़े कुछ व्यावहारिक और नैतिक प्रश्न भी सामने आते हैं, जैसे तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता, डिजिटल साक्षरता, तथा मानवीय संवेदनशीलता का संरक्षण भी आवश्यक है। अतः कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और शैक्षिक मूल्यों के अनुरूप किया जाए।

इस प्रकार भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका का अध्ययन वर्तमान समय की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। यह न केवल शिक्षण की गुणवत्ता को उन्नत करने में सहायक है बल्कि भविष्य की शिक्षा प्रणाली के स्वरूप को भी निर्धारित करने की क्षमता रखती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का भाषा शिक्षण एवं अधिगम में प्रयोग

वर्तमान युग सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का युग है, जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं। इस

नई तकनिकी प्रणालियों विचार व्यक्त करते हैं "डिजिटल तकनीकों के विकास ने शिक्षण-अधिगम की पारंपरिक पद्धतियों को आधुनिक, लचीला और शिक्षार्थी-केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी क्रम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसी उन्नत तकनीक के रूप में उभरी है, जिसने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषतः भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम में व्यापक परिवर्तन किए हैं।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि आज भाषा शिक्षण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अंतर्भाव मनुष्य की भाषा उसके विचारों, भावनाओं और अनुभवों को अभिव्यक्त करने का प्रमुख माध्यम पर गहरा प्रभाव डालती है। भाषा का प्रभावी शिक्षण केवल व्याकरण और शब्दावली तक सीमित नहीं होता, बल्कि श्रवण, वाचन, लेखन और बोलने के कौशलों के संतुलित विकास पर आधारित होता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण इन सभी कौशलों के विकास में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। इससे शिक्षण अधिक रोचक, संवादात्मक और वैयक्तिक बनता जा रहा है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में शिक्षा का स्वरूप तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। डिजिटल प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षण-अधिगम की पारंपरिक पद्धतियों को नया आयाम प्रदान किया है। भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में यह परिवर्तन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भाषा केवल ज्ञान अर्जन का माध्यम ही नहीं बल्कि विचार, संस्कृति और सामाजिक अंतःक्रिया का आधार भी है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियाँ शिक्षार्थियों की अधिगम गति, त्रुटि-प्रकार, रुचि और प्रदर्शन का विश्लेषण कर वैयक्तिक अधिगम अनुभव प्रदान करने में सक्षम हैं। विशेषतः भाषा शिक्षण में चार प्रमुख कौशल श्रवण, वाचन, पठन और लेखन का समन्वित विकास आवश्यक होता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इन चारों कौशलों के अभ्यास, मूल्यांकन और परिष्कार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। प्रस्तुत आलेख में भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम को केंद्र में रखते हुए इन चार कौशलों के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

1. श्रवण कौशल (Listening Skill) में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

श्रवण भाषा अधिगम की आधारभूत प्रक्रिया है। किसी भी भाषा को सीखने की प्रथम अवस्था श्रवण ही होती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ऑडियो-सिस्टम, वाक् पहचान तकनीक (Speech Recognition) तथा प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing) ने श्रवण अभ्यास को अधिक प्रभावी बनाया है।

(क) शिक्षार्थियों के लिए

शिक्षार्थियों के लिए विविध उच्चारणों का अनुभव मिलता है। एआई आधारित प्लेटफॉर्म विभिन्न क्षेत्रों और वक्ताओं के उच्चारण उपलब्ध कराते हैं, जिससे विद्यार्थियों की श्रवण क्षमता विकसित होती है। तत्काल प्रतिपुष्टि से श्रवण आधारित प्रश्नों के उत्तर पर तुरंत मूल्यांकन मिलता है। श्रवण अनुकूल अभ्यास यदि विद्यार्थी किसी स्तर पर कठिनाई अनुभव करता है, तो प्रणाली सरल स्तर की सामग्री प्रदान करती है।

(ख) प्रशिक्षणार्थियों के लिए

श्रवण कौशल सिखाने हेतु ऑडियो-वीडियो सामग्री का चयन और निर्माण सरल होता है। विद्यार्थियों की श्रवण त्रुटियों का विश्लेषण कर शिक्षण रणनीतियों में सुधार किया जा सकता है। इस प्रकार एआई श्रवण कौशल को सक्रिय, संवादात्मक और स्तरानुकूल बनाने में सहायक है।

2. भाषण कौशल (Speaking Skill) में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

भाषण कौशल भाषा के मौखिक अभिव्यक्ति पक्ष से संबंधित है। पारंपरिक कक्षाओं में सभी विद्यार्थियों को बोलने का पर्याप्त अवसर मिल पाना कठिन होता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है।

(क) शिक्षार्थियों के लिए

वाक् पहचान प्रणाली से विद्यार्थी अपने उच्चारण का अभ्यास कर सकते हैं और तुरंत सुधार प्राप्त कर सकते हैं। संवादात्मक चैटबॉट यह आधुनिक एआई चैटबॉट विद्यार्थियों से संवाद स्थापित कर वास्तविक जीवन जैसी परिस्थितियों में

अभ्यास का अवसर देते हैं। उच्चारण सुधार माध्यम से ध्वन्यात्मक त्रुटियों का विश्लेषण कर सटीक सुझाव दिए जाते हैं।

(ख) प्रशिक्षणार्थियों के लिए

प्रशिक्षनार्थियों के लिए बोलने के कौशल का आकलन डेटा आधारित रिपोर्ट के माध्यम से किया जा सकता है। प्रशिक्षणार्थी विद्यार्थियों की मौखिक प्रवाह, शब्द चयन और उच्चारण की प्रगति को समझ सकते हैं। एआई आधारित प्रणालियाँ वाचन कौशल को आत्मविश्वासपूर्ण और त्रुटि-सचेत बनाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

3. पठन कौशल (Reading Skill) में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

पठन कौशल ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ई-पाठ, अनुकूली पठन मंच तथा शब्दार्थ-सहायता उपकरण पठन प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाते हैं।

(क) शिक्षार्थियों के लिए

इस कौशल में स्तरानुकूल पाठ से एआई प्रणाली विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार पाठ का चयन करती है। पाठ्य सामग्री से शब्दार्थ एवं व्याख्या कठिन शब्दों पर क्लिक करने से उनका अर्थ और उदाहरण उपलब्ध हो जाता है। पठन समझ का परीक्षण शिक्षार्थी स्वयं स्वचालित प्रश्नोत्तरी के माध्यम से समझ का मूल्यांकन किया जाता है।

(ख) प्रशिक्षणार्थियों के लिए

पठन सामग्री की जटिलता का विश्लेषण संभव है। विद्यार्थियों की पठन गति और समझ का आँकड़ा-आधारित मूल्यांकन किया जा सकता है। इस प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता पठन कौशल को अधिक सुलभ, रोचक और मापनयोग्य बनाती है।

4. लेखन कौशल (Writing Skill) में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

लेखन कौशल भाषा अधिगम का उच्च स्तरीय कौशल है, जिसमें व्याकरण, शब्दावली और विचार-संरचना का समन्वय आवश्यक होता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित लेखन-सहायक उपकरण इस कौशल के विकास में विशेष योगदान दे रहे हैं।

(क) शिक्षार्थियों के लिए

इस कौशल का महत्त्वपूर्ण पक्ष व्याकरण जाँच करना है। जो लेखन में हुई त्रुटियों का त्वरित सुधार सकता है। लेखन में उसकी बनावट पर शैली सुझाव आवश्यक है। जो वाक्य संरचना और शब्द चयन के संबंध में सुझाव देता है। साथ ही रचनात्मक लेखन में सहायता सहायता हेतु विचार संगठन, वाक्य गठन और अनुच्छेद संरचना के लिए मार्गदर्शन करता है।

(ख) प्रशिक्षणार्थियों के लिए

लेखन का स्वचालित मूल्यांकन समय की बचत करता है। विद्यार्थियों की सामान्य त्रुटियों का विश्लेषण कर सामूहिक सुधार रणनीति बनाई जा सकती है। प्रशिक्षणार्थियों को लेखन कौशल में एआई का उपयोग सावधानीपूर्वक होना चाहिए, ताकि विद्यार्थी स्वयं चिंतन और सृजन की क्षमता विकसित कर सकें।

भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण में कृत्रिम बद्धिमत्ता का समन्वित प्रभाव

चारों कौशलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का समन्वित प्रयोग भाषा अधिगम को बहुआयामी बनाता है। यह वैयक्तिक अधिगम एवं शिक्षण को बढ़ावा देता है। मूल्यांकन व दृढ़ीकरण को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाता है। प्रशिक्षणार्थियों के व्यावसायिक कौशल को सुदृढ़ करता है। शिक्षण को तकनीकी रूप से सक्षम और समयानुकूल बनाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण और अधिगम की प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावी, शिक्षार्थी-केन्द्रित और प्रौद्योगिकी-समन्वित बनाने में एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में उभर रही है। यद्यपि इसके उपयोग में तकनीकी दक्षता, नैतिकता तथा संसाधनों की उपलब्धता जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं, फिर भी भविष्य में भाषा शिक्षण के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता और अधिक बढ़ने की संभावना है।

निष्कर्ष

भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग शिक्षा की गुणवत्ता और प्रभावशीलता को बढ़ाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो रहा है। वर्तमान समय में भाषा शिक्षण केवल पाठ्यपुस्तक और कक्षा-व्याख्यान तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह एक बहुआयामी प्रक्रिया बन गया है। जिसमें डिजिटल संसाधन, संवादात्मक मंच तथा अनुकूली अधिगम प्रणालियाँ सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने इस परिवर्तन को गति प्रदान करते हुए शिक्षण और अधिगम दोनों को अधिक लचीला, वैयक्तिक और परिणामोन्मुख बनाया है। भाषा अधिगम के चारों कौशल श्रवण, वाचन, पठन और लेखन के विकास में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रवण कौशल के अभ्यास हेतु विविध ऑडियो-सामग्री और स्तरानुकूल अभ्यास उपलब्ध हो रहे हैं। जिससे विद्यार्थियों की ग्रहणशीलता और समझ में वृद्धि होती है। वाचन कौशल के संदर्भ में संवादात्मक प्रणालियाँ और उच्चारण सुधार उपकरण विद्यार्थियों के आत्मविश्वास तथा अभिव्यक्ति क्षमता को सुदृढ़ बनाते हैं। इसी प्रकार पठन कौशल के विकास में स्तरानुकूल सामग्री, शब्दार्थ सहायता तथा पठन-बोध परीक्षण उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। लेखन कौशल के क्षेत्र में व्याकरण सुधार, शैली संबंधी सुझाव तथा संरचनात्मक मार्गदर्शन शिक्षार्थियों को अधिक प्रभावी और शुद्ध लेखन की ओर प्रेरित करते हैं। प्रशिक्षणार्थियों और शिक्षकों के दृष्टिकोण से भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। यह पाठ योजना निर्माण, शिक्षण सामग्री तैयार करने, विद्यार्थियों की प्रगति का विश्लेषण करने तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया को अधिक व्यवस्थित और वस्तुनिष्ठ बनाने में सहायक है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षण-प्रशिक्षण अधिक वैज्ञानिक और शोधपरक बनता है, जो आधुनिक शिक्षा की आवश्यकता भी है। हालाँकि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के साथ कुछ चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं, जैसे तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता, डिजिटल साक्षरता का स्तर, तथा शिक्षण प्रक्रिया में मानवीय संवेदनशीलता और रचनात्मकता को बनाए रखने की आवश्यकता। अतः यह आवश्यक है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक सहायक उपकरण के रूप में अपनाया जाए, न कि शिक्षक के विकल्प के रूप में। शिक्षक की भूमिका मार्गदर्शक, प्रेरक और मूल्य-संवर्धक के रूप में सदैव महत्त्वपूर्ण रहेगी।

अंततः यह कहा जा सकता है कि यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और शैक्षिक मूल्यों के अनुरूप किया जाए, तो यह भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम को अधिक प्रभावी, समावेशी और भविष्य उन्मुख बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है। इस दिशा में सतत अनुसंधान, शिक्षक प्रशिक्षण तथा तकनीकी संसाधनों का विस्तार अत्यंत आवश्यक है। जिससे हिंदी भाषा का शिक्षण-प्रशिक्षण का स्तर और अधिक सुदृढ़ और उपयोगी सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. वालावलकर गिरीश. आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स : तकनीक, उपयोग और चुनौतियाँ, माय मिरर, प्रकाशन, मुंबई, प्रथम संस्करण- 2025
2. दास आर. सी. शैक्षिक प्रौद्योगिकी : एक परिचय, स्टारलिंग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1993
3. चोक्काप्पगरी आर. भाषा अधिगम एवं शिक्षण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता से शिक्षक विकास कार्यक्रम, NCERT, परियोजना कार्य, नई दिल्ली. संस्करण- 2024.
4. https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S2666920X25001626?via%3Dihub
5. https://chartered.college/safe-and-effective-use-of-ai-in-education/
6. https://teaching.resources.osu.edu/teaching-topics/ai-considerations-teaching-learning

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Indian Initiatives to Combat Economic Offenders: A Critical Appraisal

Dr. Ashutosh Singh
Assistant Professor
HLM Law College, Ghaziabad
Email : drashutosh.singh@hlmgroup.org
Contact No. 9415018407

ABSTRACT

The growing incidence of economic offences such as financial fraud, money laundering, banking irregularities, and large-scale corruption has posed serious challenges to the economic stability and governance framework of India. A significant concern in this regard is the increasing tendency of individuals accused of major financial crimes to abscond from the jurisdiction of Indian courts in order to evade investigation and prosecution. Such actions not only undermine the rule of law but also create substantial obstacles in the recovery of public funds and the effective administration of justice. The problem is further aggravated by issues relating to due process of law, protection of property rights, and the complexities involved in securing the return of offenders through international extradition procedures.

In view of these challenges, there is a pressing need for study and strong/ effective legal framework to protect the integrity of the legal system and to deter economic offenders from escaping the process of law. The enactment of the Fugitive Economic Offenders Act, 2018 reflects the necessity of such protective measures aimed at addressing the growing problem of economic offenders fleeing abroad. The need for coordinated enforcement mechanisms, institutional accountability, and strengthened international cooperation is essential to curb corruption and financial crimes and to ensure that individuals involved in large-scale economic offences are held accountable under the law. Through such legal protection, the sanctity of the rule of law and the financial interests of the nation can be effectively safeguarded.

Keywords: Economic offences, financial fraud, asset confiscation, fugitive offenders, economic justice, banking fraud.

1. INTRODUCTION

Economic offences such as financial fraud, large-scale bank defaults, money laundering, and corruption have emerged as serious threats to the economic stability and governance structure of India. These offences not only lead to substantial financial losses for banks and public institutions

but also erode public confidence in the legal and financial systems. A significant challenge in addressing such crimes arises when individuals accused of major economic offences leave the country and remain outside the jurisdiction of Indian courts, thereby evading the process of law and obstructing the administration of justice.

In recent years, India has witnessed several instances in which persons allegedly involved in major financial irregularities have fled abroad to avoid investigation and prosecution. Such circumstances create considerable difficulties for law enforcement agencies in conducting effective investigations, ensuring the presence of the accused before the courts, and recovering the proceeds of crime. The lack of an effective legal mechanism in the past to deal with such absconding offenders often resulted in delays in judicial proceedings and weakened the deterrent impact of existing laws.

In order to address this challenge and to ensure that economic offenders do not escape the legal process by remaining outside the country, the Parliament enacted the Fugitive Economic Offenders Act, 2018 (The Act). The primary purpose of this legislation is to deter individuals involved in significant economic offences from evading the jurisdiction of Indian courts. The Act seeks to preserve the sanctity of the rule of law by empowering authorities to confiscate the properties of fugitive economic offenders and prevent them from benefiting from assets acquired through unlawful activities.

Furthermore, the Act strengthens the legal and institutional framework for dealing with serious economic offences involving substantial financial implications. By authorizing courts to declare individuals as fugitive economic offenders and order the confiscation of their properties, the legislation aims to create a strong deterrent against financial misconduct and promote greater accountability in economic and corporate practices. Thus, the enactment of this law represents an important step in reinforcing India's legal response to economic crimes and ensuring that individuals who attempt to evade justice are held accountable.

Against this backdrop, the present research paper examines the provisions of the Act and assesses its role in addressing the problem of economic offenders absconding from the jurisdiction of Indian courts. It also provides an appraisal of the implementation and impact of the legislation after seven years of its enactment, with particular emphasis on its contribution to deterring economic offences, enabling confiscation of illicit assets, and strengthening the overall legal framework for combating large-scale financial crimes in India.

2. MEANING AND CONCEPT OF FUGITIVE ECONOMIC OFFENDER

The concept of a fugitive economic offender has gained increasing significance in contemporary legal discourse due to the rising incidence of large-scale financial crimes and the tendency of offenders to evade prosecution by fleeing from the jurisdiction of domestic courts. Economic offences such as fraud, money laundering, corruption, and banking irregularities often involve complex financial transactions and substantial monetary implications. When individuals accused of such offences leave the country to avoid legal proceedings, it creates serious obstacles in the administration of justice and recovery of public funds. In order to address this issue, the Indian legislature enacted the Fugitive Economic Offenders Act, 2018 to provide an effective legal framework to deter such offenders and ensure accountability.

Definition of Fugitive Economic Offender

Section 2(f) of the Fugitive Economic Offenders Act, 2018 defines a "*fugitive economic offender"* as any individual against whom a warrant for arrest has been issued in respect of a scheduled offence and who either leaves India so as to avoid criminal prosecution or, being abroad, refuses to return to India to face criminal proceedings. This definition highlights two essential elements: first, the commission of a scheduled economic offence of substantial value, and second, the deliberate attempt of the accused to evade the jurisdiction of Indian courts.

Definition of Proceeds of Crime

The concept of *"proceeds of crime"* is central to the enforcement of laws dealing with economic offences. Under Section 2(k) of the Act, proceeds of crime refer to any property derived or obtained, directly or indirectly, as a result of criminal activity relating to a scheduled offence. This definition is broadly consistent with the definition provided under the Prevention of Money Laundering Act, 2002, which also defines proceeds of crime as property obtained or derived from criminal activities. The inclusion of such a definition is significant because it allows authorities to trace, attach, and confiscate assets that have been generated through unlawful activities.

Scheduled Offences

The Act applies only to specified offences listed in the Schedule appended to the legislation. These offences primarily include serious financial and economic crimes such as cheating, fraud, money laundering, corruption, and offences relating to banking and financial institutions. Many of these offences are derived from existing statutes such as the Indian Penal Code, 1860, the Prevention of Corruption Act, 1988, the Prevention of Money Laundering Act, 2002, and the Companies Act, 2013. The inclusion of these offences in the Schedule ensures that the Act targets only serious economic crimes involving substantial financial implications.

International Perspectives and Definitions

International legal instruments also recognize the need to combat financial crimes and illicit financial flows. The United Nations, through the United Nations Convention against Corruption 2003 (UNCAC), emphasizes the importance of preventing corruption, recovering stolen assets, and strengthening international cooperation in the investigation and prosecution of economic crimes. Similarly, the Financial Action Task Force provides global standards for combating money laundering and the financing of terrorism, including the identification and confiscation of proceeds of crime.

Several jurists and scholars have emphasized the importance of strong legal mechanisms to deal with economic offenders who evade justice. According to *K.D. Gaur*, economic offences are distinct from traditional crimes because they involve complex financial manipulations and often affect the economic health of society as a whole. Likewise, *S.K. Verma* observes that economic crimes undermine public trust in financial institutions and require specialized legal frameworks for effective enforcement. These scholarly views highlight the necessity of laws that not only punish offenders but also enable the recovery of illicit assets.

Hence, we see that the concept of a fugitive economic offender reflects the need to address a unique category of offenders who exploit jurisdictional limitations to avoid legal accountability. By allowing courts to declare individuals as fugitive economic offenders and confiscate their properties, the law aims to ensure that offenders cannot benefit from the proceeds of crime even if they remain outside the territorial jurisdiction of India. Thus, the legislation seeks to reinforce the rule of law,

strengthen financial integrity, and deter individuals from committing large-scale economic offences.

3. FUGITIVE ECONOMIC OFFENDERS ACT, 2018

Chapter II of the Act, 2018 contains the substantive procedural provisions relating to the declaration of an individual as a fugitive economic offender and the confiscation of property derived from economic offences. The chapter lays down the legal mechanism for initiating proceedings, attachment and confiscation of property, and management of confiscated assets.

Section 4 provides the procedure for filing an application before the Special Court seeking declaration of an individual as a fugitive economic offender. The Director or an officer not below the rank of Deputy Director, authorised for this purpose, may file such an application when there are reasonable grounds to believe that an individual is a fugitive economic offender. The application must contain the reasons for such belief, information regarding the whereabouts of the individual, details of the proceeds of crime, a list of other properties including benami properties, and details of persons having an interest in such properties. The authorities designated under the Prevention of Money Laundering Act, 2002 are also recognised as authorities for the purposes of this Act.

Additionally, Section 5 empowers the Director or an authorised officer to attach property mentioned in the application with the permission of the Special Court. The provision also allows provisional attachment of property even before filing the application if there is reason to believe that the property constitutes proceeds of crime or belongs to a fugitive economic offender and may become unavailable for confiscation. Such attachment generally remains valid for 180 days unless extended by the Special Court.

For the completions of the aim of the Act section 6 confers powers to the Director and authorised officers similar to those exercised by a civil court under the Code of Civil Procedure, 1908. These powers include discovery and inspection of documents, summoning and examining persons on oath, compelling production of records, receiving evidence through affidavits, and issuing commissions for examination of witnesses.

Further, section 7 authorises the Director or other authorised officers to conduct surveys at places where they believe relevant records or proceeds of crime may be located. During such surveys, officers may inspect records, verify transactions related to proceeds of crime, and obtain information from individuals present at the premises. Section 8 provides powers of search and seizure where there is reason to believe that a person may be declared a fugitive economic offender or possesses proceeds of crime or related records. Authorised officers may enter and search buildings, vehicles, or other places, seize relevant records or property, and examine persons found in possession of such materials. Section 9 permits authorised officers to search individuals suspected of possessing records or proceeds of crime. The provision ensures procedural safeguards by allowing the person being searched to request that the search be conducted before a Gazetted Officer or a Magistrate and mandates the presence of witnesses during the search.

Furthermore, section 10 requires the Special Court to issue a notice to the individual alleged to be a fugitive economic offender once an application is filed under Section 4. The notice requires the individual to appear before the court at a specified place and time, which must be at least six weeks from the date of issue. Failure to appear may result in declaration as a fugitive economic offender and confiscation of property. Section 11 outlines the procedure for hearing the application before the

Special Court. If the individual appears before the court, the proceedings may be terminated. However, if the individual fails to appear despite proper notice, the court may proceed with the hearing and decide the matter based on the available evidence.

The Act provides the power to Special Court in section 12, to declare an individual as a fugitive economic offender after considering the application and evidence presented. Upon such declaration, the court may order confiscation of the proceeds of crime as well as other properties or benami properties owned by the offender in India or abroad. The confiscated properties vest in the Central Government free from all encumbrances. Further, section 15 provides for the management of confiscated properties. The Central Government may appoint an Administrator, not below the rank of Joint Secretary, to receive, manage, and dispose of such properties in accordance with prescribed rules. However, disposal of confiscated property cannot take place within ninety days from the date of the confiscation order.

These provisions collectively establish the legal mechanism for identifying fugitive economic offenders, securing their assets, and ensuring that the proceeds of economic crimes are confiscated in the interest of justice and financial accountability. Thus, after the above discussion, it can be observed that the initiatives undertaken by India to address the problem of economic offenders are comprehensive and reflect a strong legislative and institutional commitment. Various statutory measures and enforcement mechanisms have been introduced to deter economic crimes and prevent offenders from evading the process of law. However, the real challenge lies in the effective implementation and enforcement of these provisions in practice.

In order to evaluate the practical effectiveness of these legal measures, it becomes necessary to examine the significant cases and matters that have arisen at the time of, and subsequent to, the enactment of the Act. The analysis of important cases involving economic offenders such as *Vijay Mallya, Nirav Modi, and Mehul Choksi* is particularly relevant, as these cases highlight the practical challenges relating to extradition, confiscation of assets, and enforcement of judicial orders across jurisdictions. Such case studies provide valuable insights into the operational difficulties and effectiveness of the legal framework in combating fugitive economic offenders.

4. IMPORTANT CASE LAWS RELATING TO FUGITIVE ECONOMIC OFFENDERS

Vijay Mallya case

One of the most prominent cases that highlighted the problem of fugitive economic offenders in India is the case of *Vijay Mallya*. Mallya, the former chairman of Kingfisher Airlines, was accused of defaulting on loans amounting to thousands of crores of rupees borrowed from a consortium of Indian banks. In 2016, he left India and travelled to the United Kingdom, after which Indian authorities initiated legal proceedings seeking his extradition.

Indian courts declared him a fugitive economic offender, and several proceedings for asset recovery were initiated by enforcement agencies such as the Enforcement Directorate (ED). Although a UK court approved his extradition to India in 2020, the process has been delayed due to ongoing legal proceedings and confidential legal issues in the United Kingdom. As of 2025–2026, Mallya continues to reside in the UK while litigation related to his debts, bankruptcy proceedings, and extradition remains pending.

This case significantly influenced public and governmental concern regarding the need for stricter

legal mechanisms to deal with economic offenders who flee the country to avoid prosecution.

The Nirav Modi Case

Another major case involving large-scale financial fraud is that of Nirav Modi, who was accused of orchestrating a massive banking fraud in connection with the Punjab National Bank (PNB) involving thousands of crores of rupees. After the fraud was detected in 2018, Modi fled India.

He was arrested in London in 2019, and since then India has been pursuing extradition proceedings against him. UK courts have already approved his extradition; however, the accused has continued to file appeals and legal challenges. As of 2025–2026, Nirav Modi remains lodged in Pentonville Prison in London, while the UK High Court continues to examine applications related to reopening his extradition appeal. If the court rejects the latest plea, his extradition to India may proceed.

The Nirav Modi case further exposed the complexities involved in international extradition and financial crime investigations.

The Mehul Choksi Case

The case of Mehul Choksi is closely related to the Punjab National Bank fraud involving Nirav Modi. Choksi, who was also accused of participating in the fraudulent issuance of Letters of Undertaking (LoUs), left India in 2018 and later obtained citizenship of Antigua and Barbuda.

In 2025, he was arrested in Belgium following an extradition request from Indian authorities. He is currently contesting extradition proceedings while Indian agencies continue legal action to declare him a fugitive economic offender and recover the proceeds of crime. Indian courts have allowed proceedings under the Fugitive Economic Offenders Act, 2018 to continue despite his detention abroad.

This case demonstrates the difficulties faced by Indian authorities in dealing with cross-border financial crimes and the importance of international cooperation in extradition matters.

5. CHALLENGES IN IMPLEMENTATION

Despite the enactment of strong legal measures such as the Fugitive Economic Offenders Act, 2018, India continues to face several practical challenges in effectively combating economic offenders who attempt to evade the legal process by fleeing the country. One of the primary challenges relates to international jurisdiction issues, as many accused persons take refuge in foreign jurisdictions where extradition procedures are governed by bilateral treaties, domestic laws, and complex judicial scrutiny. This often results in prolonged legal battles before foreign courts, as seen in cases such as Vijay Mallya, Nirav Modi, and Mehul Choksi, where extradition proceedings have taken several years due to appeals, legal objections, and procedural safeguards available under foreign legal systems.

Another significant challenge involves legal and constitutional concerns raised by critics regarding certain provisions of the Act. In particular, provisions relating to the confiscation of properties belonging to declared fugitive economic offenders and restrictions on their ability to pursue civil claims in Indian courts have been debated on the grounds that they may affect the principles of natural justice and the protection of property rights. Although the constitutional validity of the Act has been upheld by the Supreme Court of India, debates continue in academic and legal circles regarding the balance between effective law enforcement and the protection of fundamental rights.

Furthermore, delay in judicial proceedings remains a major obstacle in the effective implementation

of laws against economic offenders. Investigations in such cases generally involve complex financial transactions, cross-border money trails, forensic accounting, and coordination among multiple agencies such as the Enforcement Directorate, the Central Bureau of Investigation, and banking institutions. The extensive documentation and technical nature of financial evidence often lead to prolonged investigations and trials, which may weaken the deterrent effect of the law.

Another important challenge is the lack of consistent global cooperation. Although India has entered into extradition treaties and mutual legal assistance agreements with several countries, differences in legal systems, evidentiary standards, political considerations, and human rights concerns sometimes hinder the smooth execution of extradition requests. In some cases, foreign courts require extensive proof regarding prison conditions, fair trial guarantees, and procedural safeguards before approving extradition. These factors collectively make the enforcement of economic offence laws a complex and time-consuming process.

6. CONCLUSION

The Fugitive Economic Offenders Act, 2018 represents a significant legislative initiative undertaken by the Government of India to address the growing challenge of economic offenders who evade the jurisdiction of Indian courts by fleeing the country. The Act provides a strong legal framework for declaring individuals as fugitive economic offenders, confiscating their properties, and discouraging them from avoiding legal proceedings. Through mechanisms that allow attachment and forfeiture of assets connected with financial crimes, the law aims to strengthen accountability and protect the integrity of India's financial and banking systems. Nevertheless, the practical effectiveness of the Act largely depends on efficient investigation, prompt judicial proceedings, and robust international cooperation in extradition matters. In an increasingly globalized financial environment where economic crimes often involve cross-border transactions, coordinated action between national authorities, international institutions**,** and financial regulatory bodies becomes essential. Therefore, with proper implementation, continuous legal reforms, and improved institutional coordination, the Act has the potential to play a crucial role in enhancing financial discipline, safeguarding public resources, and ensuring economic justice in India.

Thus, in order to enhance the effectiveness and practical implementation of the Act, several reforms may be considered. First, India should strengthen its international extradition framework by expanding and reinforcing extradition treaties and mutual legal assistance agreements with a larger number of countries. Such measures would facilitate the timely return of fugitive economic offenders who have taken refuge abroad and ensure that they are brought within the jurisdiction of Indian courts. Further, greater international cooperation is necessary, particularly through collaboration with international organizations and foreign regulatory authorities for effective investigation, exchange of information, and tracing and recovery of assets located outside India.

Furthermore, the establishment of specialized economic crime courts or dedicated judicial benches may significantly improve the adjudication process in complex financial cases. These courts would possess the necessary expertise to deal with intricate economic offences and would help in ensuring faster and more efficient disposal of such cases. At the same time, the financial intelligence framework should be strengthened by enhancing the operational and analytical capabilities of the Financial Intelligence Unit – India, enabling early detection and monitoring of suspicious financial transactions.

Moreover, effective coordination among investigative and regulatory agencies is essential for tackling economic offences. Agencies such as the Enforcement Directorate and the Central Bureau of Investigation, along with other financial regulators, should work in close collaboration to ensure comprehensive investigations and efficient recovery of assets. Finally, greater transparency in financial and banking transactions must be promoted. Regulatory bodies like the Reserve Bank of India should continue to enforce stricter compliance standards, improve monitoring mechanisms, and strengthen regulatory oversight within the banking and financial sector in order to prevent large-scale financial frauds and economic offences.

REFERENCES:

1. Fugitive Economic Offenders Act, 2018, No. 17 of 2018, § 2(f), Government of India.
2. Prevention of Money Laundering Act, 2002, No. 15 of 2003, § 2(u), Government of India.
3. Ministry of Finance, Government of India, *Statement of Objects and Reasons*, Fugitive Economic Offenders Bill, 2018.
4. Kavi Arora v. Union of India, Writ Petition (Civil) No. 1245 of 2018, Supreme Court of India.
5. Reserve Bank of India, *Report on Banking Frauds in India* (2019).
6. Directorate of Enforcement, *Annual Report* (2020).
7. S. Krishnamurthy, *Economic Offences and Financial Crimes in India*, Eastern Book Company (2019).
8. K. D. Gaur, *Textbook on Criminal Law*, LexisNexis (2019).
9. S. K. Verma & Raman Mittal, *Legal Dimensions of Economic Offences in India*.
10. Arvind P. Datar, "Legal Framework for Tackling Economic Offenders in India," *Journal of the Indian Law Institute*.
11. Ritu Gupta, "Asset Recovery and Economic Offences," *Indian Journal of Criminal Law*.
12. Manupatra, available at: www.manupatra.com.
13. SCC Online, available at: www.scconline.com.
14. JSTOR, available at: www.jstor.org.
15. India Code, Government of India, available at: www.indiacode.nic.in.
16. Reserve Bank of India, available at: www.rbi.org.in.
17. Ministry of Finance, Government of India, available at: www.finmin.gov.in.
18. The Times of India, various reports on economic offences and financial frauds in India.
19. The Hindu, articles and editorials relating to economic offences and financial regulation.
20. The Indian Express, coverage of fugitive economic offenders and financial crime cases.
21. Hindustan Times, news reports on banking frauds and economic offences in India.
22. Economic and Political Weekly, articles on economic policy and financial regulation.
23. National Crime Records Bureau, *Crime in India Report* (latest edition).
24. Central Bureau of Investigation, publications and reports on economic offences.

.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Role of Women in Indian Freedom Struggle

Dr. Shruti
Research Scholar (History Department)
M.M.H College, Ghaziabad

Abstract:

The history of Indian freedom struggle would be incomplete without mentioning the contribution of women. The sacrifice made by the women of India newline will occupy the foremost place. The history of freedom struggle is replete with the saga of sacrifice, selflessness, bravery of women. Many of us don't know that there were hundreds of women who fought side by side with their male counterparts. They fought with true spirit and undismayed courage. The Indian women broke away from various restrictions and got out of their traditional home-oriented roles and responsibilities. So, the participation of women in the freedom struggle and National awakening is simply incredible and praiseworthy. However, it is not easy for women to fight as warrior's in the male dominating society.

Even though females tried to change the perception of such orthodox people who thought women are meant to do only household chores. Moreover, females not only sacrifice their lives but also combat such issues. Rani Laxmi Bhai was one of such women who fought against British role by mitigating all odds, hence this paper entitles to highlight the legacy that women showed in the history by showing their fierce nature.

Keywords: Indian, Women, Freedom movement, Role, Society. Independence, Revolutionary.

INTRODUCTION

In the pre-independence period, the status of women within the country was in a deprived state. The major cause of this was, there was a prevalence of male dominance. The major responsibilities of the women were dedicated towards the implementation of household responsibilities and they were not allowed to participate in the implementation of other tasks and activities, no where they allowed to express their ideas and viewpoints. During this period, number of systems, were put into operation, which imposed unfavorable effects upon women. These include child marriages, restraints were imposed upon widow remarriage, female foeticide, female infanticide, purdah system, sati and polygamy. During the period of the East India Company, many social reformers such as Raja Ram Mohan Rai, Ishwar Chander Vidya Sagar and Jyotiba Phule had undergone numerous challenges that were associated with bringing about changes in the status of women within the Indian society. During this period there were many ladies, who mastered the art of martial arts. Rani Laxmi Bhai fought for the Independence of the country. Women participation in India's freedom struggle began

as early 1817 when Bhima Bai Holkar fought against Britishers. Madam Bhikaji Cama, the first Indian women socialist who fought for her motherland's freedom after the 1857 uprising. There is no doubt that women participation in Indian anti-imperialist struggle in large number.

Objective of my Paper

1. To study the freedom movement in India in general.
2. To explore the role played by women freedom fighter in freedom movement in India.
3. To create awareness about different women freedom fighter.
4. To show the social economic emancipation of Indian women.
5. To highlight their sufferings and sacrifices of Indian women.

Research Methodology

To write this paper, the data has mainly concentrated on textual approach, books written by eminent scholars and articles, papers written on various National and International Journals has been considered to do the framework of this paper. Thus, secondary data has been used to write this paper.

Review of Literature: There are number of puranic work on "The role of women in freedom movement" some of the important books and articles are under as under:

1. Manmohan Kaur (1985)[1]: This book covers women of India in freedom struggle from 1857 to 1947 a period of 90 years. It begins with 1857 when the first attempt of freedom was made and end with 1947.

2. P.N Chopra (1975)[2]: This book highlights the heroic role played by Indian women in India struggle for freedom and also explain their saga of sacrifice, selflessness, bravery. They fought with true spirit and undismayed courage.

3. Suruchi Thaper (2006)[3]: She has done excellent work on freedom movement in India. This book significantly focuses on the nationalist participation of ordinary middle-class women in India's freedom movement, especially in the united provinces. The author highlights the prominent women leaders such as Sarojini Naidu, Vijaylaxmi Pandit, Sucheta kiripalani and Annie Beasant.

4. O.P Ralhan (1995)[4]: This book covers the social economic condition by Indian women who played a most significant role in the evolution of our society, author also highlight the role of Indian women from ancient period to modern times. The great contribution of these ladies should be brought to the knowledge of the present generation.

5. M.G Agarwal: This multivolume illuminate the role played by the freedom fighters during the freedom struggle. The book highlights the contribution of people from all sections of society in the freedom movement during India freedom. This is an attempt to draw upon their remembrance of the freedom struggle. Efforts have been made to include freedom fighters from various regions and also explain about those women who participate in the freedom struggle and made rich contribution in various ways.

6. Judith Brown (1972)[5]: The book describes the participation of women in the movement as a political nuisance.

7. Tarachand: It tries to examine role of women in the social process, perception of their own lives, the broader

social reality, the roots etc. He also enlists some efforts to overcome such problems.

MILESTONES IN INDIA'S FREEDOM STRUGGLE

1. The first war of Independence (1857-58)
2. Partition of Bengal, Swadeshi Movement (1905)
3. Jallianwala Bagh Massacre (1919)
4. Non-cooperation movement (1920)
5. Poorna Swaraj declaration by the congress; Meerut conspiracy case (1929)
6. Civil disobedience: The Dandi March (1930)
7. The Quit India Movement (1942)

WOMEN LEADERS OF THE NATIONAL MOVEMENT

There is no doubt that women participated in the Indian anti-imperialist struggle in large numbers. If we were to recall the names of women leaders in our national movement, we will find that the list is a very long one. Starting with Sarojini Naidu, Rani Laxmi Bai, Vijayalakshmi Pandit, Kamaladevi Chattopadhyay and Mridula Sarabhai at the national level, we may go on to provincial level leaders like Annie Mascarene and A.V. Kuttimaluamma in Kerala, Durgabai Deshmukh in Madras Presidency, Rameshwari Nehru and Bi Amman in U.P., Satyawati Devi and Subhadra Joshi in Delhi, Hansa Mehta and Usha Mehta in Bombay and several others. In fact, such is the nature of our nationalist movement that it is very difficult to distinguish between regional level and all-India level leaders.

Many women began at the local level and went on to become players in the nationalist centre stage. Besides all these Indian women, there were also Irish women like Annie Besant and Margaret Cousins, who brought their own knowledge of the Irish experience of British exploitation to bear on India.

Women freedom fighter of India:

It is very difficult task to list out all women freedom fighters and equally difficult to segregate a few amongst them.

¬**Sarojini Naidu:** She emerged as prominent Nationalist around 1917. She was second women to became the president of INC in 1925. She joined the national movement during the protest against the partition of Bengal in 1905. During Salt satyagraha, she was one of the women protesters at the Dharsana salt work. She played a leading role during Civil disobedience and was jailed. In 1942, she was arrested during "Quit India movement". She travelled across India and delivered lecture on women's empowerment and nationalist. She was also closely.

¬**Rani Laxmi Bai:** Indian history has not yet witnessed a women warrior as brave and powerful as Rani Laxmi Bai. She is a glorious example of patriotism and national pride. She is an inspiration and an admiration for a lot of people. Her name is thus written in golden letters in the history of India.

¬**Kamaladevi Chattopadhyay:** In 1930's she participated in Salt Satyagraha. She promoted handicrafts, handlooms and theatre. The Government of India conferred on her the Padma Bhushan in 1955 and Padma Vibhushan in 1987.

¬**Annie Basant:** She became the first president of Indian National Congress in 1917. Her associate Margaret cousins drafted the Indian women's voting rights bill and launched the "Women's Indian Association".

¬**Vijayalakhsmi Pandit:** Mrs. Pandit was jailed for her nationalistic activities thrice in 1932, 1940 and 1942. During the Salt Satyagraha she led processions and picketed the liquor and foreign cloth selling shops along with her sister and her baby daughters. She has fought many battles and broken many barriers for the women in India. [6]

¬**Durgabai Deshmukh:** She was imprisoned for three years for participating in the Salt Satyagraha. During this Satyagraha when leaders like Rajaji and T. Prakasam in south were busy in organising other facts of the movement, it was Durgabai who led a group of salt law breakers to Marina Beach at Madras. She was instrumental in initiating 'Andhra Mahila Sabha' and 'Hindi Balika Patasala' at a very young age.

¬**Mridula Sarabai:** During Partition she fought at great personal risk to save girls abducted by mobs and to prevent refugees, both Hindu and Muslim from being hurt or killed. In 1934 she was elected to the All Indian Congress Committee as a delegate from Gujarat.

¬**Basanti Das:** She was an Indian Independence activist during the British rule in India. She took an active part in various political and social movements. She herself took active part in freedom activities and was arrested during non-cooperation movement. She received Padma Vibhushan in 1973.

¬**Sucheta Kriplani:** In 1932, she entered pubic life as a social worker and in 1939 entered politics and joined the Indian National Congress. In 1940, she offered individual satyagraha at Faizabad and was imprisoned for two years. During the Quit India Movement, she went underground and rendered remarkable service of secretly organizing anti-British resistance.

¬**Kamla Das Gupta:** She has been a brilliant luminary among the Indian women freedom fighters. She belongs to the militant section and was an active member of the 'Jugantar Party'. In 1942, she was arrested in connection with the Quit-India movement and lodged in the Presidency jail.

¬**Dr. S. Muthulakshmi Reddy:** She was the first Indian women who for her merit and services in the field of social service and medicine was nominated to the Madras Legislative Assembly in 1926. As a protest against torturing women and use of repressive measures against female agitators during Salt Satyagraha and Non- cooperation Movement, she resigned her offices and jumped into the freedom struggle.

¬**Margaret Cousins:** An Irish woman crusader, after fighting for the voting right for women in Ireland, arrived in India along with her husband and advocate the same causes for Indian women. She joined hand with Annie Besant and Sarojini Naidu and helped in the founding of many women association to bring about an awakening among them.

¬**Raj kumari Amrit Kaur:** She belong to the ruling house of Kapurthala. She was inspired by Gandhi and joined Congress during the Salt Satyagraha. She was arrested in Bombay for violating the Salt law, when she went to the North west frontier province to advocate the causes of freedom struggle, she was arrested and convicted on a charge of sedition. She was the President of All India Women conference for seven years.[7]

¬**Matangini Hazra:** The Gandhi Burhi (Gandhian old women) of West Bengal is that freedom

fighter and martyr who shall be remembered for her heroic act. She joined the freedom movement in 1932. During Salt Satyagraha, she was jailed. In 1933, she successfully led a black flag demonstration where governor of Bengal was addressing police cordoned gathering. This time she was arrested and sentenced to six months rigorous imprisonment.[8]

¬**Indira Gandhi:** A most remarkable women in modern India. She became the member of Indian National Congress in 1938. Her public activity entered a new phase with India Independence in 1947. She took over the responsibility of running the Prime minister's house. She worked tirelessly for the social and economic advancement of the minorities. She had a vision of a modern self-reliant and dynamic economy. She fought boldly and vigorously against communalism, revivalism and religious fundamentalism of all types. She became the indomitable symbol of India self-confidence. Mahila-samitis (Women's Association) In 1820, Raja Ram Mohan Roy emerged as the first modern Hindu exponent of social reform. The first step in the direction of Women's liberation in modern India was taken by Raja Ram Mohan Roy by way of opposition to sati and its abolition through legal sanctions (Dec. 1829) has left a lasting legacy for the women's movement in India. The issues that dominated the 19th century were sati abolition, widow remarriage, education, rising the age of marriage. It was with the efforts of Raja Ram Mohan Roy, Iswar Chandra Vidyasagar, Keshab Chandra Sen, and a host of others came forward for the betterment of the women and her lot in society started improving. Under pressure from social reformers, the Govt. of India Act of 1856 legalised the marriage of Hindu widows, child Marriage Act of 1872 banned child marriage and fixed minimum age of marriage at 14 for the girl and 18 for the boy, permitted widow remarriage and inter caste marriage and penalized polygamy among the Brahmo Samaj. It is these reforms mainly in the provinces of Bengal that helped the women to participate actively, even as early as 1885, in the emerging nationalist movement, by freeing them from the shackles of the traditional practices and values. From the inception of Indian National Congress (1885) its membership was open to women also. Allan Octavian Hume even went ahead asking for all shades of opinion never to forget that unless the evaluation of the female element of the nation proceeded parsi pressure (with an equal place) with their work, all their labour of the political enfranchisement of the country would prove vain.2 The women attended the fourth session of the Congress at Bombay in 1889. Like the males, females participated from Calcutta including Swarnakumari Devi, sister of Rabindranath Taore. She had abandoned purdah and together with her husband, edited the Bengali journal, Bharati, having thus achieved the name of being the first Indian Woman editor. Swarnakumari began 'Sakhi Samiti' (Ladies Association) to infuse among Indian Women an active and enlightened interest in country's welfare. From Bengal also came Kadamboni Ganguli, a graduate of Kolkata University and the first woman doctor from Bengal. Swarnakumari Devi and Kadambori Ganguli attended the Congress Session as delegates in 1890.

The decision for the partition of Bengal, announced by the Govt. on 20th July 1905, first time galvanized the common people including women into political action. In Sept. 1905, Rabindranath Tagore announced his plan for observing Rakhi Bandhan on the partition Day i.e. 16 October. Women also took 'non-cooking day' as suggested by Ramendra Sunder Trivedi. Protest meetings were convened by women and about five hundred of them witnessed the laying of the foundation stone of the Federation Hall at Calcutta on 16 Oct. 1905. Women organized Swadeshi fairs and Saraladevi Chaudhurani opened 'Lakshmir Bhandar' selling only indigenous articles, gave up use of foreign articles and use of foreign cloth and smashed their foreign bangles. Another eminent lady

was Kumudini Mitra (daughter of Krishna Kumar Mitra, a renowned nationalist) also organised a group of educated ladies in order to make a liaison among different revolutionaries. It also propagated and preached the cause of the revolutionaries through Suprabhat, a Bengali magazine.4 Women helped in distributing revolutionary pamphlets and literature and in maintaining connections between different revolutionary leaders. Mrs. Ramsay McDonald, who accompanied her husband in his tour of India, visualized that the Swadeshi movement could not have succeeded without the female assistances.5 Swadeshi movement arose from Bengal and spread throughout the country-stormy tours of leaders, women's dharnas at foreign goods stores and bonfires of foreign goods and students giving up schools and colleges in the face of expulsions for violating Government orders became a routine matter. Women too played an important role in organizing processions, rallies and dharnas and in spreading the boycott movement and raising funds for it. Women of Bengal, Maharashtra, Punjab and the central provinces were more active. Sushila Devi of Sialkot was spreading new awareness by delivering lectures at various places. Hardevi, wife of a barrister of Lahore Mr. Roshan Lal was editing Hindi magazine Bharat Bhagini Pooran Devi of Hisar, a leading member of Arya Samaj, was visiting every district to spread the message of Swadeshi Agyawati and Ved Kumari of Delhi were delivering lectures to men folk more than to women. Sarla Devi of Bengal visited Punjab and served as a bridge between the two provinces.6 Among the freedom fighters of the Central Provinces, the most active women were Satyabhama Tilak, Yamunabai Savarkar, Avantika Bai Gokhale, Lakhmibai Khare, Janakibai Gore, Lakshmibai Datar, Lakshmibai Rahalkar, Godabai Khare etc. They set up a women's wing of Abhinav Bharat and named it Atma Night Yuvati Sabha whose members secretly assisted the revolutionaries through this institution. The women of Maharashtra organized Hindu Sahbhojam7 and Haldi Kumkum etc. to eradicate untouchability. Mrs. McDonald, wife of Ramsay McDonald, who visited India during those days, worte : A storm like movement is running through the women.8 The year 1917 was considered a milestone in the history of women's progress in India. Mrs. Annie Besant became the first woman President of the Congress. Under Annie Besant's Presidentship a resolution was passed demanding equal voting rights for women. A women's deputation led by Smt. Sarojini Naidu met Mr. Montague, Secretary of State for India and Viceroy Lord Chelmsford. Although in the name of the social incapability of women, the British Government did not give voting right to women in the Parliament under the Mount – Ford Reforms Scheme, but the Provincial Legislature Council was given the right to think over the matter of it so desired. Women Indian Association, Mahila Sewa Sabha, Women's Home Rule League and Indian Women's University joined together to register a strong protest against it and intensified their activities. Consequently the British Government was compelled to pass on the issue to the State Legislative Councils.9 The entire history of the freedom movement, as we know underwent a change with the advent of Mahatma Gandhi on the political scene in 1917. With his experience of South Africa behind him, Gandhi was conscious of the female potentialities as passive resisters. As he experimented with his weapon of Satyagraha in India he felt that women could take part in it together with men. Women were drawn to Gandhi by his magnetic personality, his distinctive naturalness and transparent sincerity.

Indian women leaders of freedom struggles :

Jyotirmoy Ganguly: Resigned from the government services inresponse to Gandhi's call for civil disobedience Movement and participated in agitation organized by the forward block in 1945 against the imprisonment of the INA soldiers.

Suchitra Kripalini: She was appointed as the secretary of the women's being of the AICC (All India Congress Committee) in 1939. She worked at Noakhali in East Bengal when communal riots broke out after the Muslim League's call of Direct Action on 16 August 1946.

Rajkumari Amrit Kaur: She was impressed by Gandhi. She involved in the activities of Congress and participated in the CDM. She was imprisoned during QIM.

Rani Gaidinliu: Led the Naga Movement in 1931- 32 Against the British and supported the CDM. Pritilata, Bina and Kalpana were the members of Indian Republican Army founded by Surjya Sen. They were also involved in the Chittagong Armoury Raid (1930)

Annie Besant: She was an Irish lady who arrived in India in 1893 as member of theosophical Society. In 1898 she founded the central Hindu College which become the Hindu Benaras University in 1916.

Rani Laxmi Bai: Revolt in Jhansi against annexation of Jhansi, by lord delhousie in 1854s, when lord delhousie occupy Jhansi by the rule of controversial Doctrines of lapse.

Kasturba Gandhi: She provide moral support to her husband. She became the political activitist and fought for civil rights against the British both South Africa and India. She was imprisoned in 1942 for her involvement in OIM and died at Aghakhan Palace in Poona.

The establishments of the Indian National Congress open way for the women to participate in freedom struggle. The swadeshi movement in 1905 also observed the entry of women in the freedom struggle. Annie Besant accelerated the process of women entry in Indian politics in 1914. M.K. Gandhi make serious efforts to arouse political consciousness in all level of women to take part in freedom struggle. M.K. Gandhi urged both man and women to take equal part in struggle as women are equally strong mentally, physically and spiritually. Thus women in the very beginning of the freedom struggle against the British rule from liberal and conservative families, urban and rural women, both young and old join hand to gain freedom. In Satygraha and Civil disobedience movement also women equally participate in freedom struggle. Gandhi's view and opinion about women in freedom influenced women positions in the freedom movement. Large number of women participated in non-cooperation movement, salt Satyagraha. In different parts of India during noncooperation movement women joined procession, propaganda, propagated the use of khadi and selfweaving. In salt Satyagraha in 1922-24 and Bardoli Satyagraha in 1928 women outnumbered men in political gatherings. Many women also followed Gandhi in Dandhi March to in 1930 to break salt law, Sarojini Naidu, Mridula Sarabai, and Kamaladevi Chattapadhya were some of the prominent women associated with the salt Satyagraha. During civil disobedience movement of 1940 also women participated and courted arrest in large numbers. During quiet India movement of 1942 also, women from all parts of India including Those demonstrating claims to represent all India women in the groups (AICC) involved, other than upper and middle class Hindu women were never larger. But at all, participation of women in the freedom struggle strengthens freedom movement directly and indirectly exemplified that women are capable of strengthening the political movement. The participation of women in freedom struggle had its impacts on the society, family and on women themselves Sarojoni Naidu: She was the first Indian women to preside congress in 1925. She was a member of congress working committee for many years. She represented women during the second round table conference in 1932. She was imprisoned in 1932, 1942 as participant in the CDM, QIM.

CONCLUSION

Indian women played a pivotal role in the Indian freedom movement against British rule. They participated in various forms of protest including civil disobedience, non-violent resistance, and boycotts. Women from diverse backgrounds including royalty, aristocracy, and commoners joined the movement, breaking social norms and defying the colonial authorities. Despite facing numerous challenges such as violence, imprisonment, and social stigma, these women stood up for their rights and freedoms, inspiring future generations to fight for their rights. The story of women's participation in India freedom struggle is the story of making bold choices, finding themselves on streets, inside jail and in legislature. After so many efforts India achieved Independence on August 15, 1947. Thousands of Indian women dedicated their lives for obtaining freedom of their motherland. The nonviolent movement that gained India her freedom not only took women along but was dependent for its success on the active participation of women. Perhaps for the first and the only time in world history, the power of a mighty global empire on which the sun never set had been challenged and overcome by the moral might of a people armed only with peace, ideas and courage. In the end we can say that in the last fifty-year, women movement has matured and has progressively deepened its relationship with other movement like trader unions, environmental movements and other progressive movements

which fight against all forms of oppression, injustice and degradation. Some of the notable women freedom fighters of India include Rani Lakshmibai, Sarojini Naidu, Aruna Asaf Ali, and Kalpana Dutta. The contribution of these women to India's independence movement continues to be remembered and celebrated today. The role of women in the freedom struggle is integral and indispensable. Women's activism and participation played an important role in shaping the course of the struggle and led to concrete victories. In particular, women's struggles for equality, human rights, and democracy were paramount in challenging the male-dominated political system. Their tireless work aided in galvanizing people from all walks of life to stand up against discrimination and inequality. Without their involvement, it is doubtful that significant progress would have been made.

REFRENCES:

1. Brown, Judith; Gandhi and the civil disobedience movement, Cambridge University press, 1972.
2. Chopra, P.N; Women in India freedom struggle, Published by Ministry of education and social welfare, Govt. of India, New Delhi, 1975.
3. Chib, S.S; New Perspective on India's freedom struggle, VandeMatram Prakashan, Chandigarh, 1987.
4. Raju, Rajendra; Role of women in India's freedom struggle, South Asia Books, 1994.
5. Chand, Tara; History of freedom Movement in India, Vol IV, Publication Division, Govt. of India, Delhi, 1961.
6. Aggarwal, M.G; Freedom fighter of India, Vol IV, Gyan Publishing House, 2008.
7. Thaper, Suruchi; Women in the Indian National movement: Unseen faces and unheard voices (1930-32), Publication Pvt. Ltd., 2006
8. Ralhan, O.P; Indian women through ages 5th Vol. Eminent Indian women in politics, Anmol publications, New Delhi, 1995.
9. Kaur, Manmohan; Women's in India freedom struggle, Sterling publishers, New Delhi, 1985.
10. Aggarwal, R.C; Constitutional Development and National Movement of India, S.Chand Publishing limited, New Delhi, 19911. Mody, Nawaz; Women in India's freedom struggle; Allied Publishers, 20

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सत्येन्द्र कुमार

शोधार्थी - हिन्दी विभाग

शोध निर्देशक - डॉ. शान्त कुमार चतुर्वेदी, हिंदी विभागाध्यक्ष

संस्था- जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ.प्र.

for the paper titled

आधुनिक लोक साहित्य : आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सुनील

(TGT English)
राजकीय उच्च विद्यालय,
रिसालू पानीपत (हरियाणा)

for the paper titled

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भारतीय शिक्षा में नवयुग की शुरुआत

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. जिनु जॉन

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग,

मार अत्तनेशियस कॉलेज (आटोनोमस),

कोतमंगलम, केरल

for the paper titled

'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में युद्ध, राजनीति और मानवता का संघर्ष

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. जिनु जॉन

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग,

मार अत्तनेशियस कॉलेज (आटोनोमस),

कोतमंगलम, केरल

for the paper titled

'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में युद्ध, राजनीति और मानवता का संघर्ष

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. लक्ष्मण

एस. एस. जे. कैंपस, अल्मोड़ा,

कुमाउं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)

for the paper titled

रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचना-दृष्टि और सांस्कृतिक चेतना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Pragya Chaubey
Dr. Tanuja Melkani

for the paper titled

A STUDY OF CAREER DECISION-MAKING SKILL AMONG SECONDARY SCHOOL STUDENTS IN RELATION TO THEIR GENDER AND TYPE OF SCHOOL

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रियंका भंवरिया

एम. एड. छात्रा, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. मंजू देवी

सहायक आचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

for the paper titled

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Mr. Prince Chaudhary
Assistant Professor at HLM Law College

for the paper titled

Shifting the Game: India's Bold New Move to Regulate Online Gaming

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Vinita Sharma
Assistant Professor Law HLM Law College

for the paper titled

The Status of the Women's Reservation Bill in Indian Parliament: Analyze the current status of the Women's Reservation Bill in the Indian Parliament. Investigate the reasons for delays, opposition, or support from different political parties

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

योगिता शर्मा

शोधार्थिनी, राजनीति विज्ञान श्री वेंकेटेश्वर यूनिवर्सिटी, गजरौला (अमरोहा)

डॉ. मंजू सोलंकी

शोध निर्देशिका, राजनीति विज्ञान विभाग (एम. फिल्., पी-एच.डी.), श्री वेंकेटेश्वर यूनिवर्सिटी, गजरौला (अमरोहा)

for the paper titled

लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में राजनीतिक दलों का महत्व

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. नवनाथ गाडेकर

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,

भारत महाविद्यालय जेऊर (म.रेल)

तहसील-करमाळा, जिला- सोलापुर (महाराष्ट्र)

for the paper titled

भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण एवं अधिगम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Ashutosh Singh
Assistant Professor
HLM Law College, Ghaziabad

for the paper titled

Indian Initiatives to Combat Economic Offenders: A Critical Appraisal

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Shruti
Research Scholar (History Department)
M.M.H College, Ghaziabad

for the paper titled

Role of Women in Indian Freedom Struggle

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Akashdeep
(Research Scholar, Deptt. of Commerce) MGSU, Bikaner (Raj.)
Raghuveer Singh
(B.Tech) R.T.U., Kota (Raj.)

for the paper titled

CHANGING DYNAMICS OF INTERGENERATIONAL DIALOGUE IN THE DIGITAL AGE

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18690288 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Ms. Rinku Jangid
Assistant Professor, Shri Vardhman Girls P.G. College, Beware, Rajasthan
Ms. Priya Arora
Assistant Professor, Shri Vardhman Girls P.G. College, Beware, Rajasthan

for the paper titled

A Binary Cybersecurity Intrusion Detection Framework Using Simulated Network Traffic and Machine Learning

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Mrs. Shelly Sharma
Assistant Professor, Department of Journalism & Mass Communication,
Swami Vivekanand Subharti University, Meerut

for the paper titled

ओटीटी माध्यमों पर प्रसारित आपराधिक पृष्ठभूमि वाली वेब सीरीज़ का युवाओं पर प्रभाव : मेरठ जनपद के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. प्रीति सिंह

सहायक आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,

स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

for the paper titled

शांति व्यवस्था पर सोशल मीडिया और तकनीक का प्रभाव: एक समकालीन विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

जय प्रकाश

(पीएच.डी. शोधार्थी), टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

डॉ. पूर्णिमा शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर

for the paper titled

ग्रामीण एवं शहरी किशोर-किशोरियों में तार्किक चिन्तन योग्यता एवं समस्या समाधान योग्यता का तुलनात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

अशोक कुमार गर्ग

पिता - रावता राम

परास्नातक, राजनीति विज्ञान

नेट, जून-2025

for the paper titled

भारत में महिला सशक्तिकरण और राजनीतिक भागीदारी

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

सुभाषः पालः

शोधछात्रः, दर्शनविभागः,

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः (केन्द्रीयविश्वविद्यालयः) नवदेहली

for the paper titled

योगः मानसिकस्वास्थ्यञ्च वैदिकदृष्टिकोणः

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

के. एम. वेंकटेशप्पा

पी एच डी शोधार्थी

उस्मानिया विश्वविद्याल, हैदराबाद

for the paper titled

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महिलाओं का योगदान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Pushpita Dasgupta
Christian College of Engineering & Technology
Assistant Professor
Department of Science & Humanities

for the paper titled

Reimagining Development in the Age of Ecological Crisis: Literature and the Ethics of Growth in Viksit Bharat@2047

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रेनू बाला

एम.ए., पीएचडी, समाजशास्त्र

for the paper titled

ग्रामीण स्तर पर सोशल मीडिया का प्रयोग : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. ऊषा रानी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, CDOE, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-05

अविनाश कुमार

शोधार्थी (पीएच०डी०), हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-05

for the paper titled

भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति

(विशेष संदर्भ जिला कांगड़ा-चम्बा)

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Jyoti
Assistant Professor in Dasmesh Girls college
Chak Allah Baksh Mukerian

for the paper titled

Work–Life Balance Challenges of Women Entrepreneurs

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. सोनिया गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी

महाराजा अग्रसेन महिला महाविद्यालय झज्जर

for the paper titled

महादेवी वर्मा के साहित्य में नारी चेतना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Manpreet Kour

Department Of Political Science

Supervisor Name Dr. Kamlesh Rathore

Research Scholar at shri khushal Das University, Hanumangarh

for the paper titled

भारत की दक्षिण एशिया नीति : एक समकालीन राजनीतिक विश्लेषण

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रोहित साव

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

वर्द्धमान विश्वविद्यालय, गुलाबबाग, पश्चिम बंगाल

for the paper titled

तरुण भटनागर का कहानी संग्रह 'प्रलय में नाव' में मानवीय संवेदना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

ज्योति शर्मा

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. श्रद्धा सिंह चौहान

शोध निर्देशिका, सहायक आचार्य

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर (राजस्थान)

for the paper titled

अधिगम क्षमता मापनी

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रोमिला

शोधार्थी हिंदी विभाग(पीएच०डी)

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

समरहिल

for the paper titled

वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में राजनीतिक यथार्थ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रमा विनोद सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी - विभाग

महाराष्ट्र महाविद्यालय

कला, विज्ञान एवं वाणिज्य मुंबई

for the paper titled

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में सामाजिक चेतना

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Rahul Kumar Bharti
Research Scholar, Department of History
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University,
Lucknow

for the paper titled

Exploring the Cultural Identity of Indians in Mauritius

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

पवन सिंह

शोधार्थी भूगोल, सामाजिक विज्ञान विभाग,

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर- 124021, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सत्यवीर यादव

प्रोफेसर भूगोल, सामाजिक विज्ञान विभाग,

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर- 124021, रोहतक (हरियाणा)

for the paper titled

जल सुरक्षा में तकनीकी : नवाचार, चुनौतियां और स्थायी समाधान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2025, Vol. 12, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

पवन सिंह

शोधार्थी भूगोल, सामाजिक विज्ञान विभाग,

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर- 124021, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सत्यवीर यादव

प्रोफेसर भूगोल, सामाजिक विज्ञान विभाग,

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर- 124021, रोहतक (हरियाणा)

for the paper titled

झज्जर जिले में घरेलू जल सुरक्षा : एक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

July - September 2025, Vol. 12, Issue-3

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**